Dr. C.V. Raman University
Kargi Road, Kota, BILASPUR, (C. G.),
Ph. : +07753-253801, +07753-253872
E-mail : info@cvru.ac.in | Website : www.cvru.ac.in

Introduction to sociology

Institute of Open and Distance Education

Faculty of Arts

Introduction to Sociology

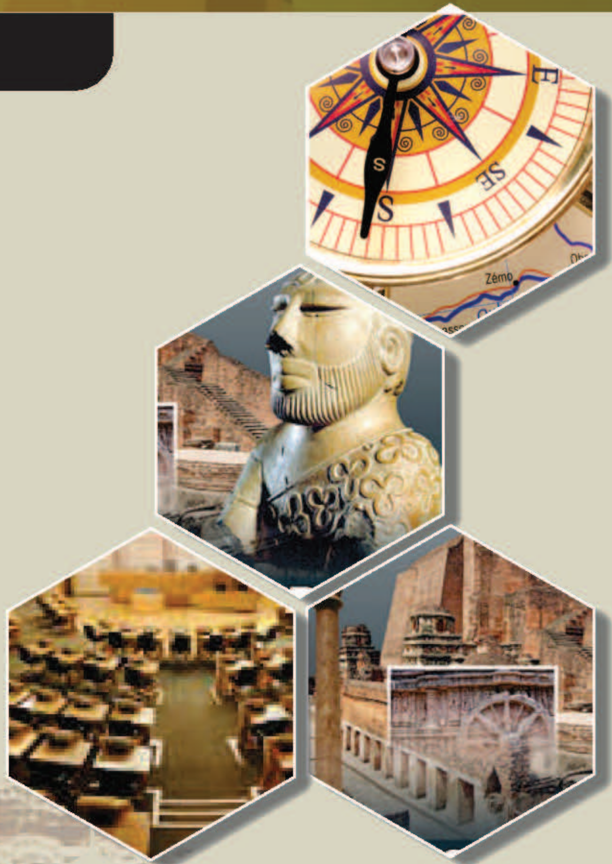

1BA5

DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY

Chhattisgarh, Bilaspur

A STATUTORY UNIVERSITY UNDER SECTION 2(F) OF THE UGC ACT

1BA5

Introduction to sociology

1BA5
Introduction to sociology

Credit- 4

Subject Expert Team

Dr Kajal Moitra, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh
Dr Mahesh Shukla, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh
Dr Reena Tiwari, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh
Dr Ram Ratan sahu, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh
Dr Anju Tiwari, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh
Dr. Sandhya Jaiswal , Dr. C. V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

---

Course Editor:

Dr Ramsiya Charmkar, Assistant Professor Department of Political Science Humanities and liberal arts, Rabindranath Tagore University, Bhopal, M.P.

Unit Written By:

---

1. Dr. Richa Yadav

(Professor, Dr. C. V. Raman University)

2. Dr. Reena Tiwari

(Associate Professor, Dr. C. V. Raman University)

Warning: All rights reserved, No part of this publication may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the publisher.

Published by: Dr. C.V. Raman University Kargi Road, Kota, Bilaspur, (C. G.), Ph. +07753-253801,07753-253872 E-mail: info@cvru.ac.in, Website: www.cvru.ac.in

इकाई   इकाई का नाम   पृष्ट संख्या

अनुक्रमणिका

ब्लॉक -I

इकाई -1	समाजशास्त्र की प्रकृति	1
इकाई -2	समाजशास्त्र का अर्थ	37
इकाई -3	समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य	52
इकाई - 4	समाजशास्त्र एवं सामाजिक विज्ञान	65

ब्लॉक -II

इकाई – 5	समाजशास्त्रीय अध्ययन का वैज्ञानिक एवं मानवीय उन्मुखीकरण	88
इकाई – 6	समाज एवं समुदाय	108
इकाई – 7	समिति एवं संस्था	136
इकाई – 8	समूह	159

ब्लॉक -III

इकाई – 9	सामाजिक संरचना	188
इकाई – 10	प्रस्थिति एवं भूमिका	198
इकाई – 11	परिवार	222
इकाई – 12	धर्म	248

ब्लॉक -IV

इकाई – 13	शिक्षा	274
इकाई – 14	समाज एवं संस्कृति	293
इकाई – 15	समाजीकरण	323
इकाई – 16	सामाजिक नियंत्रण-आदर्श एवं मूल्यसमाजीकरण	343

ब्लॉक - I

इकाई -1

समाजशास्त्र की प्रकृति

(NATURE OF SOCIOLOGY)

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 समाजशास्त्र की प्रकृति (NATURE OF SOCIOLOGY)

1.4 समाजशास्त्र की वैज्ञानिक प्रकृति पर आपत्तियाँ

(Objections Against Scientific Nature of Sociology)

1.5 बीरस्टीड के अनुसार समाजशास्त्र की वास्तविक प्रकृति

(Real Nature of Sociology According to Bierstedt)

1.6 स्वरूपात्मक सम्प्रदाय (Formal School)

1.7 समन्वयात्मक सम्प्रदाय (Synthetic School)

1.8 समाजशास्त्र की विषय-सामग्री (Subject-Matter of Sociology)

1.9 समाजशास्त्र की सीमाएँ (Limitations of Sociology)

1.10 सार संक्षेप

1.11 मुख्य शब्द

1.12 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

1.13 संदर्भ ग्रन्थ

1.14 अभ्यास प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

वर्तमान युग विज्ञान का युग है। हर ज्ञान घटना और परिस्थिति को वैज्ञानिक मापदण्ड पर नापने का प्रयास किया जाता है। जो ज्ञान, घटना और परिस्थिति

विज्ञान-सम्मत है, वैज्ञानिक मापदण्डों पर खड़ी है, उसे ही सत्य माना जाता है। जब किसी भी विज्ञान की प्रकृति पर विचार किया जाता है तो इसका तात्पर्य यह होता है कि उस विज्ञान के अध्ययन की पद्धति अथवा तरीका वैज्ञानिक है अथवा नहीं? उस विज्ञान में जिस घटना अथवा परिस्थिति की विवेचना की जाती है, वह विज्ञान की कसौटी पर सही है या नहीं? सभाजशास्त्र की प्रकृति के अन्तर्गत हम यह जानने का प्रयास करेंगे कि इसके अध्ययन की पद्धतियों अथवा तरीके वैज्ञानिक हैं अथवा नहीं ?

समाजशास्व तुलनात्मक रूप से एक नया विज्ञान है। नया विज्ञान होने के कारण समाजशास्त्र की प्रकृति के बारे में विवाद का होना नितान्त ही स्वाभाविक है। पिछली शताब्दियों में समाजशास्त्र में जो सबसे अधिक चर्चा का विषय बना, वह था इसकी प्रकृति के बारे में। समाजशास्त्र की प्रकृति को लेकर तीन प्रकार की विचारधाराओं पर चर्चा हुई-

समाजशास्त्र विज्ञान है,

समाजशास्त्र कला है, तथा

समाजशास्व विज्ञान तथा कला दोनों ही है।

समाजशास्त्र की प्रकृति को समझे बिना इसकी विज्ञान की अवधारणा को समझना अत्यन्त ही कठिन कार्य है। विज्ञान को प्रमुख रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(a) प्राकृतिक विज्ञान (Natural Science), और

(b) सामाजिक विज्ञान (Social Science)

1 कुछ समाजशास्त्री इसे यथार्थ और प्राकृतिक विज्ञान नहीं मानते हैं। उनका कहना है कि समाजशास्त्र प्राकृतिक विज्ञानों (भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र) से भिन्न है। यही कारण है कि इसे पदार्थ विज्ञान नहीं कहा जा सकता है। कुछ विद्वान ऐसे भी हैं, जो समाजशास्त्र को प्राकृतिक विज्ञानों की भाँति यथार्थ और वास्तविक विज्ञान मानते हैं। कुछ विद्वान् समाजशास्त्र को सीमित दायरे में कला और विज्ञान का समन्वयात्मक विज्ञान मानते हैं। विद्वानों में समाजशास्त्र की प्रकृति के सम्बन्ध में इन भ्रांतियों के बारे में बीरस्टीड ने लिखा है कि-

"सामाजिक घटनाओं में कुछ भी कृत्रिमता, तिलक्षणता या अलौकिकता नहीं है। सामाजिक घटनाएँ उतनी ही प्राकृतिक है, जितनी की चुम्बक की आकर्षण शक्ति पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण या विद्युत शक्ति और एक नगर उतना ही प्राकृतिक है, जितना की वाल्मीकि।"

विद्वानों में समाजशास्त्र की विषयवस्तु और प्रकृति को लेकर कितना ही मतभेद क्यों न हो, इतना निश्चित है कि समाजशास्व प्राकृतिक विज्ञानों से भिन्न है। हाँ, इतना अवश्य है कि समाजशास्त्र की घटनाओं के अध्ययन में वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग किया जाता है। प्राकृतिक विज्ञानों से भिन्न समाजशास्त्र की प्रकृति के बारे में बाटोमोर ने लिखा है कि "प्राकृतिक विद्वानों और समाजशास्त्र में इतना ही अन्तर है कि प्राकृतिक विज्ञान किसी तथ्य की कारण सम्बन्धी व्याख्या करते हैं जबकि समाजशास्त्र का उद्देश्य अर्थ का विवेचन करना तथा उसे समझना है।"

समाजशास्त्र की प्रकृति के वैज्ञानिक होने के विवाद में चलने से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि आखिर विज्ञान क्या है?

आधुनिक मानव अधिक बौद्धिक अधिक तार्किक है। वह हर एक वस्तु को विज्ञान और तर्क की कसौटी पर कसना चाहता है। यही बात समाजशास्त्र के सम्बन्ध में लागू होती है। समाजशास्त्र के बारे में भी ऐसे ही प्रश्न किये जाते हैं कि समाजशास्त्र विज्ञान है या नहीं? समाजशास्त्र की अध्ययन पद्धति वैज्ञानिक है या नहीं? इन प्रश्नों के सम्बन्ध में समाजशास्त्रियों में मतभेद हो सकते हैं, किन्तु इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि समाजशास्त्र विज्ञान है। इस कथन की पुष्टि के लिए अनेक प्रकार के तर्क दिये जा सकते हैं। सबसे पहले यह जान लेना आवश्यक प्रतीत होता है कि विज्ञान क्या है? और फिर यह देखना कि समाजशास्त्र की पद्धतियों में और विज्ञान की पद्धतियों में समानता है या नहीं? तभी समाजशास्त्र के सम्बन्ध में निश्चित रूप से यह कहा जायेगा कि समाजशास्त्र विज्ञान है या नहीं?

आधुनिक युग में विज्ञान शब्द सर्वत्र और सर्वाधिक प्रचलित है। हमारा दैनिक जीवन विज्ञान से अत्यधिक प्रभावित है। भोजन, वस्त्र, निवास तथा अन्य अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति विज्ञान के माध्यम से की जाती है। सामाजिक

जीवन विज्ञान से अत्यधिक प्रभावित है। व्यक्ति परिवार, पड़ोस, शिक्षण संस्थाएँ, आर्थिक संस्थाएँ और राजनैतिक संस्थाएँ विज्ञान के प्रभाव से वंचित नहीं हैं। विज्ञान के सम्बन्ध में अनेक गलत धारणाएँ है। कुछ लोग यांत्रिकी (Mechanism) को विज्ञान मानते हैं, तो कुछ लोग प्रौद्योगिकी (Technology) को। कुछ लोग विज्ञान का सम्बन्ध प्रयोगशाला पद्धति से लगाते हैं। परन्तु ये धारणाएँ उचित नहीं है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्नलिखित बिंदुओं को समझ पाएंगे:

1. विज्ञानात्मक प्रकृति: समाजशास्त्र एक विज्ञान है, जो अनुभवजन्य तथ्यों और वैज्ञानिक विधियों पर आधारित है।

2. मानव-केंद्रित अध्ययन: यह मानव समाज, उसके व्यवहार और अंतःक्रियाओं का अध्ययन करता है।

3. सामाजिक संबंधों का अध्ययन: यह सामाजिक संस्थाओं, समूहों और प्रक्रियाओं पर केंद्रित होता है।

1.3 समाजशास्त्र की प्रकृति (NATURE OF SOCIOLOGY)

वर्तमान युग विज्ञान का युग है। हर ज्ञान घटना और परिस्थिति को वैज्ञानिक मापदण्ड पर नापने का प्रयास किया जाता है। जो ज्ञान, घटना और परिस्थिति विज्ञान-सम्मत है, वैज्ञानिक मापदण्डों पर खड़ी है, उसे ही सत्य माना जाता है। जब किसी भी विज्ञान की प्रकृति पर विचार किया जाता है तो इसका तात्पर्य यह होता है कि उस विज्ञान के अध्ययन की पद्धति अथवा तरीका वैज्ञानिक है अथवा नहीं? उस विज्ञान में जिस घटना अथवा परिस्थिति की विवेचना की जाती है, वह विज्ञान की कसौटी पर सही है या नहीं? सभाजशास्त्र की प्रकृति के अन्तर्गत हम यह जानने का प्रयास करेंगे कि इसके अध्ययन की पद्धतियों अथवा तरीके वैज्ञानिक हैं अथवा नहीं ?

समाजशास्व तुलनात्मक रूप से एक नया विज्ञान है। नया विज्ञान होने के कारण समाजशास्त्र की प्रकृति के बारे में विवाद का होना नितान्त ही

स्वाभाविक है। पिछली शताब्दियों में समाजशास्त्र में जो सबसे अधिक चर्चा का विषय बना, वह था इसकी प्रकृति के बारे में। समाजशास्त्र की प्रकृति को लेकर तीन प्रकार की विचारधाराओं पर चर्चा हुई-

(1) समाजशास्त्र विज्ञान है,

(2) समाजशास्त्र कला है, तथा

(3) समाजशास्व विज्ञान तथा कला दोनों ही है।

समाजशास्त्र की प्रकृति को समझे बिना इसकी विज्ञान की अवधारणा को समझना अत्यन्त ही कठिन कार्य है। विज्ञान को प्रमुख रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(a) प्राकृतिक विज्ञान (Natural Science), और

(b) सामाजिक विज्ञान (Social Science) 1

कुछ समाजशास्त्री इसे यथार्थ और प्राकृतिक विज्ञान नहीं मानते हैं। उनका कहना है कि समाजशास्त्र प्राकृतिक विज्ञानों (भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र) से भिन्न है। यही कारण है कि इसे पदार्थ विज्ञान नहीं कहा जा सकता है। कुछ विद्वान ऐसे भी हैं, जो समाजशास्त्र को प्राकृतिक विज्ञानों की भाँति यथार्थ और वास्तविक विज्ञान मानते हैं। कुछ विद्वान् समाजशास्त्र को सीमित दायरे में कला और विज्ञान का समन्वयात्मक विज्ञान मानते हैं। विद्वानों में समाजशास्त्र की प्रकृति के सम्बन्ध में इन भ्रांतियों के बारे में बीरस्टीड ने लिखा है कि-

"सामाजिक घटनाओं में कुछ भी कृत्रिमता, तिलक्षणता या अलौकिकता नहीं है। सामाजिक घटनाएँ उतनी ही प्राकृतिक है, जितनी की चुम्बक की आकर्षण शक्ति पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण या विद्युत शक्ति और एक नगर उतना ही प्राकृतिक है, जितना की वाल्मीकि।"

विद्वानों में समाजशास्त्र की विषयवस्तु और प्रकृति को लेकर कितना ही मतभेद क्यों न हो, इतना निश्चित है कि समाजशास्व प्राकृतिक विज्ञानों से भिन्न है। हाँ, इतना अवश्य है कि समाजशास्त्र की घटनाओं के अध्ययन में वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग किया जाता है। प्राकृतिक विज्ञानों से भिन्न समाजशास्त्र की प्रकृति के बारे में बाटोमोर ने लिखा है कि "प्राकृतिक विद्वानों

और समाजशास्त्र में इतना ही अन्तर है कि प्राकृतिक विज्ञान किसी तथ्य की कारण सम्बन्धी व्याख्या करते हैं जबकि समाजशास्त्र का उद्देश्य अर्थ का विवेचन करना तथा उसे समझना है।"

समाजशास्त्र की प्रकृति के वैज्ञानिक होने के विवाद में चलने से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि आखिर विज्ञान क्या है?

आधुनिक मानव अधिक बौद्धिक अधिक तार्किक है। वह हर एक वस्तु को विज्ञान और तर्क की कसौटी पर कसना चाहता है। यही बात समाजशास्त्र के सम्बन्ध में लागू होती है। समाजशास्त्र के बारे में भी ऐसे ही प्रश्न किये जाते हैं कि समाजशास्त्र विज्ञान है या नहीं? समाजशास्त्र की अध्ययन पद्धति वैज्ञानिक है या नहीं? इन प्रश्नों के सम्बन्ध में समाजशास्त्रियों में मतभेद हो सकते हैं, किन्तु इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि समाजशास्त्र विज्ञान है। इस कथन की पुष्टि के लिए अनेक प्रकार के तर्क दिये जा सकते हैं। सबसे पहले यह जान लेना आवश्यक प्रतीत होता है कि विज्ञान क्या है? और फिर यह देखना कि समाजशास्त्र की पद्धतियों में और विज्ञान की पद्धतियों में समानता है या नहीं? तभी समाजशास्त्र के सम्बन्ध में निश्चित रूप से यह कहा जायेगा कि समाजशास्त्र विज्ञान है या नहीं?

आधुनिक युग में विज्ञान शब्द सर्वत्र और सर्वाधिक प्रचलित है। हमारा दैनिक जीवन विज्ञान से अत्यधिक प्रभावित है। भोजन, वस्त्र, निवास तथा अन्य अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति विज्ञान के माध्यम से की जाती है। सामाजिक जीवन विज्ञान से अत्यधिक प्रभावित है। व्यक्ति परिवार, पड़ोस, शिक्षण संस्थाएँ, आर्थिक संस्थाएँ और राजनैतिक संस्थाएँ विज्ञान के प्रभाव से वंचित नहीं हैं। विज्ञान के सम्बन्ध में अनेक गलत धारणाएँ है। कुछ लोग यांत्रिकी (Mechanism) को विज्ञान मानते हैं, तो कुछ लोग प्रौद्योगिकी (Technology) को। कुछ लोग विज्ञान का सम्बन्ध प्रयोगशाला पद्धति से लगाते हैं। परन्तु ये धारणाएँ उचित नहीं है।

विज्ञान तथा वैज्ञानिक पद्धति की विवेचना करने के उपरान्त यह प्रश्न पुनः उपस्थित होता है कि समाजशास्त्र की प्रकृति कैसी है? इसकी प्रकृति वैज्ञानिक है अथवा नहीं ? इस प्रश्न के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि समाजशास्त्र

की प्रकृति वैज्ञानिक है। इस कथन की पुष्टि के लिए निम्न प्रमाण प्रस्तुत किया जा सकता है -

(1) समाजशास्त्र विज्ञान है- विज्ञान व्यवस्थित या क्रमबद्ध ज्ञान को कहते हैं। समाजशास्व और जीवशास्त्र को इसलिए विज्ञान कहा जाता है, क्योंकि इसके सम्बन्ध में प्राप्त ज्ञान व्यवस्थित है। यही बात अन्य विषयों के बारे में भी लागू होती है। समाजशास्त्र समाज का विज्ञान है, सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन करता है। समाजशास्त्र समाज का अध्ययन व्यवस्थित ढंग से करता है, इसलिए यह एक विज्ञान है। अमेरिकन समाजशास्त्री वार्ड ने लिखा है कि "समाजशास्व समाज का विज्ञान है।"

(2) समाजशास्त्र वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग करता है- समाजशास्त्र की अध्ययन पद्धतियाँ वैज्ञानिक हैं और इसके नियम सार्वभौमिक होते हैं। इन नियमों की परीक्षा और पुनः परीक्षा की जा सकती है। समाजशास्त्र की वैज्ञानिक पद्धतियाँ निम्न हैं अवलोकन (Observation), व्यक्तिगत और अध्ययन पद्धति (Case Study Method), समाजमिति (Sociometry), सामाजिक सर्वेक्षण (Social Survey) आदि। इन पद्धतियों के माध्यम से समाज से सम्बन्धित तथ्यपूर्ण नियमों का निर्माण किया जा सकता है।

(3) समाजशास्त्र वास्तविक घटनाओं का अध्ययन करता है- समाजशास्त्र आदर्श विज्ञान नहीं है, जहाँ 'क्या होना चाहिए' का वर्णन किया जाता है। समाजशास्व तो वास्तविक परिस्थितियों का अध्ययन करता है। इसलिए ऐसा कहा जाता है कि समाजशास्त्र 'क्या है' वर्णन करता है। सामाजिक परिस्थितियाँ जिस रूप में हैं, समाज में जो तथ्य जिस रूप में पाये जाते हैं उनका ठीक उसी रूप में अध्ययन किया जाता है। समाजशास्त्र अपने अध्ययन में कल्पना का सहारा नहीं लेता है और न अफवाहों को ही अपने अध्ययन का आधार बनाता है। वह तो वर्तमान परिस्थिति को जिस रूप में देखता है, उसका उसी रूप में अध्ययन करता है। तथ्यों का संग्रहण तथा वर्गीकरण करता है। इन्हीं के आधार पर नियमों का निर्माण करता है। इन नियमों की परीक्षा और पुनः परीक्षा की जा सकती है।

(4) समाजशास्त्रीय नियम सर्वव्यापी है- समाजशास्त्र समाज का विज्ञान है। यदि समाज की परिस्थितियों परिवर्तित न हों तो समाज के नियम भी नहीं बदलेंगे और एक ही प्रकार के सभी समाजों पर समान रूप से लागू होंगे। जैसे औद्योगीकरण के द्वारा भीड़-भाड़ और मकानों की समस्याओं का जन्म होगा, विघटित परिवार, विघटित व्यक्तित्व को जन्म देंगे, जनसंख्या की वृद्धि और साधनों की कमी से निर्धनता, बेकारी, अशिक्षा और भिक्षावृत्ति का विकास होगा।

(5) समाजशास्त्रीय सिद्धान्त कार्य करण सम्बन्धों पर आधारित है- हर एक कार्य के पीछे एक कारण होता है अर्थात् कार्य और कारण का घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। कार्य-कारण का यह सिद्धान्त समाज पर भी लागू होता है। समाज भी सभी घटनाएँ जादू का चमत्कार नहीं होती है, उसके पीछे एक कारण होता है जैसे भारत में संयुक्त परिवार नष्ट हो रहे हैं, उसके पीछे एक कारण होना चाहिए। भारत में बेकारी की बढ़ती हुई समस्या के पीछे कोई कारण होना चाहिए।

(6) समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों की परीक्षा- जिस प्रकार भौतिकशास्त्र के नियम सार्वभौमिक और सार्वदेशिक होते हैं, उनकी परीक्षा और पुनः परीक्षा की जा सकती है, यही नियम समाजशास्त्र पर भी लागू होते हैं। अपरिवर्तित परिस्थितियों में समाजशास्त्र के नियम भी परिवर्तित नहीं होंगे। वे सभी देश और सभी कालों पर समान रूप में लागू होते हैं और इन सिद्धान्तों की परीक्षा और पुनःपरीक्षा की जा सकती है। जैसे विघटित परिवार विघटित व्यक्तित्व को जन्म देगा, इस सिद्धान्त की किसी भी देश, काल और परिस्थितियों में परीक्षा की जा सकती है।

(7) समाजशास्त्र भविष्यवाणी करता है- जिस प्रकार भौतिक विज्ञानों के द्वारा 'क्या है' के आधार पर 'क्या होगा' की ओर संकेत किया जा सकता है उसी प्रकार समाजशास्त्रीय अध्ययन के द्वारा भविष्यवाणी की जा सकती है। जिस प्रकार ज्योतिषी भविष्य की ओर संकेत कर सकता है, ठीक उसी प्रकार समाजशास्त्र वर्तमान परिस्थितियों के आधार पर भविष्यवाणी कर सकता है। परिवार में होने वाले परिवर्तन के आधार पर भविष्य में परिवार का रूप क्या होगा ? इसकी भविष्यवाणी समाजशास्त्र कर सकता है। जाति-व्यवस्था में होने

वाले परिवर्तन के आधार पर भविष्य में जाति का क्या रूप होगा समाजशास्त्री इसे बता सकता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि विज्ञान के जितने तत्व होते हैं, वे सभी समाजशास्त्र में पाये जाते हैं। समाजशास्त्र की अध्ययन पद्धतियाँ वैज्ञानिक हैं। सामाजिक घटनाओं का कार्य-कारण सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है और भविष्यवाणी की जा सकती है। अतः समाजशास्त्र की प्रकृति वैज्ञानिक है।

1.4 समाजशास्त्र की वैज्ञानिक प्रकृति पर आपत्तियाँ (Objections Against *Scientific Nature of Sociology)*

समाजशास्त्र की प्रकृति वैज्ञानिक है। इस कथन की पुष्टि के लिए अनेक तर्क दिए गये हैं और ऐसा सिद्ध किया गया है कि समाजशास्त्र विज्ञान है। अनेक विद्वानों ने समाजशास्त्र की इस वैज्ञानिक प्रकृति पर आपत्तियाँ की हैं। अर्थात् समाजशास्व की वैज्ञानिक प्रकृति की आलोचना की है और सिद्ध किया है कि समाजशास्त्र विज्ञान नहीं है। समाजशास्त्र की वैज्ञानिक प्रकृति पर प्रनुख आपत्तियाँ निम्नांकित हैं -

(1) वैज्ञानिक तटस्थता का अभाव- समाजशास्त्र विज्ञान नहीं है, क्योंकि उसमें तटस्थता का अभाव पाया जाता है। भौतिकशास्त्री तटस्थ रहकर अध्ययन करता है, किन्तु समाजशास्त्री अपने अध्ययन में तटस्थ नहीं रह सकता है। इसका कारण यह है समाजशास्त्र समाज का विज्ञान है, सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन है। समाज-वैज्ञानिक अनुसंधान का एक भाग होता है। अतः वह अपने अध्ययन में तटस्थ नहीं हो सकता है। साथ ही समाजशास्त्री उद्वेगों और भावनाओं से अपने को अलग नहीं रख सकता, इस कारण भी उसका अध्ययन तटस्थ नहीं हो सकता है। इंजीनियर कमरे की लम्बाई, चौड़ाई और ऊंचाई तटस्थ होकर ठीक-ठीक नाप लेगा, किन्तु व्यक्ति के सम्बन्धों, भावनाओं की माप तटस्थ होकर नहीं की जा सकती है।

(2) प्रयोगशाला का अभाव- प्रयोगशाला विज्ञान का आवश्यक अंग है। प्रयोगशाला के अभाव में तथ्यों की प्रमाणिकता प्राप्त नहीं हो सकती है। समाजशास्त्र के पास ऐसी कोई प्रयोगशाला नहीं है। मनुष्य को भौतिक वस्तुओं

की भाँति टेस्ट ट्यूब (Test tube) में रखकर उनका प्रयोग नहीं किया जा सकता है। उदाहरण के लिए अगर किसी व्यक्ति के व्यवहार की नाप करनी हो, तो उस व्यक्ति को प्रयोगशाला में नहीं ले जाया जा सकता है। विघटित परिवार और अपराधों की नाप प्रयोगशाला में नहीं की जा सकती है। इन सभीकारणों से समाजशास्त्र के नियम वैज्ञानिक नहीं हो सकते हैं।

(3) सामाजिक घटनाओं की माप असम्भव- विज्ञान की पूर्णता इसमें है कि उसके द्वारा तथ्यों को नापा-तौला जा सकता है। समाजशास्त्री के लिए सामाजिक घटनाओं की माप संभव नहीं है। सामाजिक घटनाएँ अमूर्त होती हैं। जो अमूर्त है, जिसे देखा और छुआ नहीं जा सकता है, उसकी माप कैसे की जा सकती है ? वैज्ञानिक मकान की लम्बाई और चौड़ाई की माप कर सकता है, किन्तु समाजशास्त्री पिता-पुत्र के सम्बन्धों की माप नहीं कर सकता है। इसलिए समाजशास्त्र को विज्ञान नहीं कहा जा सकता है।

(4) भविष्यवाणी का अभाव- समाजशास्त्र भविष्यवाणी नहीं कर सकता है क्योंकि समाज सतत् परिवर्तनशील है। समाज की घटनाएं सप्तत् परिविर्तत होती रहती हैं। जब समाज की घटनाएँ परिवर्तित होती रहेंगी, तो इसके सम्बन्ध में भविष्यवाणी भी नहीं की जा सकेगी। भविष्यवाणी के अभाव में समाजशास्त्र को विज्ञान नहीं कहा जा सकता है।

(5) सार्वभौमिकता का अभाव- समाजशास्त्र के विज्ञान होने के सम्बन्ध में अन्तिम आपत्ति यह है कि जिस प्रकार भौतिकशास्त्र के नियम रूस, इंग्लैंड, अमेरिका और भारत में समान रूप से लागू होंगे उसी प्रकार समाजशास्त्र के नियम सार्वभौमिक नहीं है और सभी जगह समान रूप से लागू नहीं होते हैं। अतः समाजशास्त्र विज्ञान नहीं है।

आपत्तियों का मूल्यांकन (Evaluation of Objections)

समाजशास्त्र की वैज्ञानिक प्रकृति के सम्बन्ध में तर्क दिये गये हैं। कुछ विद्वानों ने इन तर्कों का खण्डन किया है। समाजशास्त्र की वैज्ञानिक प्रकृति की आलोचना की है। दोनों पक्ष जो समाजशास्व को विज्ञान मानता है और जो नहीं मानता हमारे सामने है। दोनों पक्षों ने अपने तर्कों की पुष्टि के लिए अनेक प्रमाण दिये हैं। ऐसा कहना गलत नहीं है कि दोनों पक्षों ने अपने तर्कों की

पुष्टि में अतिश्योक्ति की है बढ़ा-चढ़ाकर कहा है। यहाँ इन दोनों पक्षों का मूल्यांकन किया जायेगा -

(1) समाजशास्त्र के विज्ञान न होने में पहला तर्क दिया जाता है कि इसमें वैज्ञानिक तटस्थता का अभाव है। इन्जीनियर यन्त्रों से कमरे की माप कर सकता है। यह सत्य है कि समाजशास्त्री के पास ऐसे यंत्र नहीं है। किन्तु समाजशास्वी इस ओर प्रयनशील हैं कि उनके द्वारा किये गये अध्ययन पूर्णतया तटस्थ हों। समाजशास्व के द्वारा ऐसे उपकरण और विधियाँ ढूँढ़ने का प्रयास किया जा रहा है जिससे समाजशास्त्रीय अध्ययन अधिक-से-अधिक तटस्थ हों। समाजशास्व एक नया विज्ञान है, इसका अभी पूरा विकास नहीं हो पाया है। जिस दिन समाजशास्त्र का पूर्ण विकास हो जायेगा, इसके बारे में लोगों के ज्ञान में वृद्धि हो जायेगी, समाजशास्त्र के सिद्धान्त के निकट पहुँच जायेंगे। इन आधारों पर समाजशास्त्र को अवैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता है। विकास की प्रक्रिया में इसकी प्रवृति विज्ञान की ओर ही है।

(2) दूसरी आपत्ति प्रयोगशाला के अभाव की है। खुला समाज ही समाजशास्त्र की प्रयोगशाला है। न्यूटन, माकर्कोनी और आर्कमिडीज के पास कौन-सी प्रयोगशालाएँ थी ? खुली प्रकृति ही उनकी प्रयोगशाला थी। अतः प्रयोगशाला के अभाव में भी प्रयोग किये जा सकते हैं। बोगार्डस ने समाजशास्त्र की प्रयोगशाला की स्थापना के लिए निम्न सुझाव दिया है। उसके अनुसार समाजशास्त्र की प्रयोगशाला में निम्न यंत्र (Apparatus) होने चाहिए -

(i) टाइपराइटर, हिसाब लगाने वाली मशीने तथा अन्य प्रकार की मशीनें।

(ii) अलमारियाँ जहाँ अनुसंधान से सम्बन्धित कागजातों को रखा जा सके।

(iii) लोगों का साक्षात्कार (Interview) लेने के लिए एक सुव्यवस्थित कमरा हो ।

(iv) ड्राइंग का पर्याप्त सामान तथा ड्राइंग बनाने के लिए अच्छी-सी टेबिल हो, ताकि ग्राफ और चित्र बनाये जा सकें।

(v) एक पुस्तकालय हो, जहाँ अनुसंधान से संबंधित सभी प्रकार की पुस्तकें और पत्रिकाएँ हों। यह पुस्तकालय इस प्रकार व्यवस्थित हो कि पुस्तकें आसानी से प्राप्त की जा सकें।

(vi) सम्मेलन (Seminar) और कान्फ्रेंस के लिए वृहद् कक्ष होना चाहिए। इसमें बैठने की उचित व्यवस्था हो। लिखने पढ़ने के समुचित सामान हों और कक्ष की दीवारों पर सामाजिक जीवन से सम्बन्धित चित्र हों।

(vii) इसके अतिरिक्त अन्य मानचित्र और तालिकाएँ हों जिनमें सामुदायिक जीवन के चित्र हों।

इस प्रकार समाजशास्त्र की प्रयोगशाला का निर्माण किया जा सकता है और समाजशास्त्रीय अध्ययनों को अधिक वैज्ञानिक बनाया जा सकता है।

(3) तीसरी आपत्ति यह है कि सामाजिक घटनाओं की माप नहीं की जा सकती है। किन्तु क्या यह सत्य है कि माप ही विज्ञान का आधार है। क्या चिकित्साशास्त्री थर्मामीटर के बिना नाप की माप कर सकते है ? अगर माप ही विज्ञान का आधार है तो क्या दर्जी और बढ़ई भी वैज्ञानिक है? उत्तर सरल है। माप समाजशास्त्र बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर-1 विज्ञान का आधार नहीं है। सामाजिक घटनाएँ धीरे-धीरे मापी जाने लगी हैं।

1.5 बीरस्टीड के अनुसार समाजशास्त्र की वास्तविक प्रकृति (Real Nature of Sociology According to Bierstedt)

रॉबर्ट बीरस्टीड ने उपर्युक्त विवेचन के द्वारा समाजशास्व की प्रकृति को समझाने का प्रयास किया था। इस विवेचना के निम्न तीन प्रमुख आधार थे- (i) समाजशास्व की वैज्ञानिक प्रकृति की विशेषताएँ, (ii) समाज- शास्त्र की वैज्ञानिक प्रकृति पर आपत्तियाँ, (iii) इन आपत्तियों का मूल्यांकन ।

इन विभिन्न विचारधाराओं के आधार पर बीरस्टीड ने कहा है कि भौतिक विज्ञान और सामाजिक विज्ञानों में अंतर है। इसी विचार को सामने रखकर उसने समाजशास्त्र की वास्तविक प्रकृति की विवेचना की है, जो इस प्रकार है-

1. यह सामाजिक विज्ञान है न कि प्राकृतिक विज्ञान विज्ञान प्रमुख रूप से दो प्रकार के होते हैं- प्राकृतिक विज्ञान और सामाजिक विज्ञान ।

प्राकृतिक विज्ञान प्रकृति के अध्ययन से सम्बिन्धत है, जबकि सामाजिक विज्ञान सामाजिक घटनाओं के अध्ययन से। इसलिए सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करने के कारण सामाजिक विज्ञान समाजशास्त्र है, प्राकृतिक विज्ञान प्राकृतिक घटनाओं का अध्ययन करते हैं।

2. यह वास्तविक विज्ञान है न कि आदर्शात्मक विज्ञान समाजशास्त्र जीवन की वास्तविक घटनाओं से सम्बन्धित है। इसके अंतर्गत 'क्या है' का अध्ययन किया जाता है, 'क्या होना चाहिए' का अध्ययन नहीं किया जाता है। चूंकि यह विज्ञान है, इसलिए भविष्य के आदशों और कल्पनाओं से इसका सम्बन्ध न होर जौवन की वास्तविकताओं से होता है। यही कारण है कि बीरस्टीड समाजशास्त्र को आदर्शात्मक विज्ञान न मानकर वास्तविक विज्ञान मानता है।

3. यह विशुद्ध विज्ञान है न कि व्यावहारिक विज्ञान- ज्ञान की कार्यविधियों की दृष्टि से विज्ञान दो प्रकार के होते हैं- (i) वे विज्ञान जो मात्र ज्ञान का संग्रह करते हैं और (ii) वे विज्ञान जो ज्ञान का व्यावहारिक जीवन में उपयोग करते हैं। इसी दृष्टि से विज्ञान को मौटे तौर पर दो भागों में विभाजित किया जाता है-

(a) विशुद्ध विज्ञान और (b) व्यावहारिक विज्ञान।

समाजशास्त्र का तात्पर्य मात्र ज्ञान के संग्रह से है। इसकी उपयोगिता आदि से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। इसीलिए समाजशास्त्र को व्यावहारिक विज्ञान न कहकर विशुद्ध विज्ञान कहा जाता है।

4. यह अमूर्त विज्ञान है- समाजशास्त्र ज्ञान की ऐसी शाखा है जिसका स्वरूप अमूर्त होता है। यह अमूर्त इसलिए है कि इसके अन्तर्गत 'सामाजिक सम्बन्धों' का अध्ययन किया जाता है और सम्बन्ध अमूर्त होते हैं। अर्मूत विषय-सामग्री पर आधारित विज्ञान का स्वरूप भी अमूर्त होता है।

5. यह सामान्य विज्ञान है न कि विशिष्ट विज्ञान समाजशास्त्र सामाजिक सम्बन्धों के विषय में है। सम्बन्धों की प्रकृति विशिष्ट न होकर सामान्य होती

है। समबन्धों का सिर्फ सामाजिक स्वरूप ही नहीं होता है, अपितु ये धार्मिक और राजनैतिक क्षेत्रों से भी सम्बन्धित होते हैं। इसीलिए समाजशास्त्र को विशिष्ट विज्ञान न कहकर सामान्य विज्ञान कहा जाता है।

6. यह अनुभवसिद्ध विज्ञान है- समाजशास्त्र वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित है, इसलिए इसका स्वरूप भी तार्किक है। इसकी विषय-सामग्री में केवल उन्हीं तथ्यों को स्थान प्रदान किया जाता है जो तर्क पर सही सिद्ध होते हैं। साथ ही, यह विज्ञान मानव-अनुभवों को भी काफी महत्व प्रदान करता है। समाज का लम्बा इतिहास अनुभवों पर आधारित है। अनेक समाज की घटनाओं का आधार मानव होते हैं- उदाहरण के लिए धर्म, नैतिकता, प्रथाएँ, परम्पराएँ आदि। उपर्युक्त समस्त विषयों को सम्मिलित करने के कारण भी समाजशास्व को अनुभवसिद्ध विज्ञान कहा जाता है।

अत्यन्त ही संक्षेप में बीरस्टीड के अनुसार, समाजशास्त्र की प्रकृति की प्रमुख विशेषताएँ निम्न है-

(i) समाजशास्व सामाजिक विज्ञान है, प्राकृतिक विज्ञान नहीं।

(ii) समाजशास्त्र वास्तविक विज्ञान है, आदर्शात्मक विज्ञान नहीं।

(iii) समाजशास्त्र विशुद्ध विज्ञान है, व्यावहारिक विज्ञान नहीं।

(iv) समाजशास्त्र अमूर्त विज्ञान है, मूर्त विज्ञान नहीं।

(v) समाजशास्त्र सामान्य विज्ञान है, विशिष्ट विज्ञान नहीं।

(vi) समाजशास्त्र तार्किक और अनुभवसिद्ध विज्ञान है।

उपर्युक्त विवचेन से स्पष्ट हो जाता है कि समाजशास्त्र की प्रकृति वैज्ञानिक है तथा इसके अन्तर्गत वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है। चूंकि यह सामाजिक विज्ञान है और समाज की घटनाओं के अध्ययन से सम्बन्धित है। समाज की घटनाएँ प्राकृतिक घटनाओं से भिन्न प्रकृति की होती हैं। इसी दृष्टि से समाजशास्त्र की प्रकृति में भी कुछ भिन्नता है। फिर भी वैज्ञानिक पद्धतियों का व्यवस्थित प्रयोग करने के कारण इसकी प्रकृति को वैज्ञानिक कहा जाता है।

समाजशास्त्र का विषय-क्षेत्र (Scope of Sociology)

विभिन्न विद्वानों ने समाजशास्व की परिभाषा दी है। इन परिभाषाओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि समाजशास्व के क्षेत्र के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। किसी भी ज्ञान के क्षेत्र के निर्धारण में मतभेदों का होना नितान्त स्वाभाविक है। फिर समाजशास्व सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन है। सामाजिक सम्बन्ध अमूर्त होते हैं। अतः समाजशास्त्र के क्षेत्र का निर्धारण एक कठिन कार्य है। काल्बर्टन ने इसी कठिनाई की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए लिखा है कि "क्योंकि समाजशास्त्र एक ऐसा लचीला विज्ञान है जिसमें यह निर्णय करना कठिन है कि इसकी सीमा कहाँ आरम्भ होती है और कहाँ समाप्त। समाजशास्त्र कहाँ सामाजिक मनोविज्ञान बन जाता है और सामाजिक मनोविज्ञान कहा समाजशास्त्र। कहाँ अर्थशास्त्र या जीवशास्त्र का सिद्धांत समाजशास्त्रीय सिद्धांत बन जाता है। यह एक ऐसी जटिल संरचना है, जिसका निर्णय करना असम्भव है।"

काल्बर्टन के उपर्युत विचारों का यह तात्पर्य नहीं है कि समाजशास्त्र का अध्ययन क्षेत्र निश्चित नहीं है। मोटे तौर पर समाजशास्त्र मानवीय अंतःक्रियाओं और परस्पर सम्बन्धों, उनकी अवस्थाओं तथा परिणामों 6 का अध्ययन है। वास्तविकता तो यह है कि समाजशास्त्र मानव जीवन के सभी पहलुओं का अध्ययन है। समाजशास्त्र : बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर- समाजशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र पर विचार करते समय दो बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक होगा-

(a) समाजशास्त्र के अध्ययन की सीमाएँ (Boundries) क्या है, तथा समाजशास्त्र के क्षेत्र का निर्धारण करते समय उपर्युक्त दोनों बिन्दुओं पर विचार करना आवश्यक होगा।

(b) समाजशास्व के अध्ययन सीमाओं से बाहर क्या है?

समाजशास्व के क्षेत्र के सम्बन्ध में विद्वानों के दो विचार अथवा समूह हैं। इन्हीं विचारों को 'समाजशास्त्र के सम्प्रदाय' (Schools of Sociology) के नाम से जाना जाता है। समाजशास्त्र के ये दो सम्प्रदाय निम्न है

(1) स्वरूपात्मक सम्प्रदाय (Formal School), और

(2) समन्वयात्मक सम्प्रदाय (Synthetic School) |

1.6 स्वरूपात्मक सम्प्रदाय (Formal School)

इस सम्प्रदाय को यथारूपेण सम्प्रदाय के नाम से भी जाना जाता है। इसे जर्मन सम्प्रदाय (German School) के नाम से भी जाना जाता है। इसका कारण यह है कि इसी सम्प्रदाय के संस्थापक तथा समर्थक अधिकांश समाजशास्त्री जर्मनी के हैं।

विशेषताएँ- स्वरूपात्मक सम्प्रदाय की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार है-

(1) स्वरूपात्मक सम्प्रदाय के अनुसार समाजशास्त्र विशेष विज्ञान (Special Science) है।

(2) इस सम्प्रदाय के विद्वानों ने समाज तथा इसके तथ्यों को दो भागों में बाँटा है- स्वरूप तथा अन्तर्वस्तु । इस सम्प्रदाय के विद्वानों का विचार है कि समाजशास्त्र के अन्तर्गत सामाजिक सम्बन्धों के स्वरूपों का अध्ययन किया जाना चाहिए।

(3) इस सम्प्रदाय के विद्वानों के अनुसार समाजशास्त्र शुद्ध विज्ञान (Pure Science) है।

(4) इस सम्प्रदाय के विद्वानों का विचार है कि समाजशास्त्र अमूर्त तथा विश्लेषणात्मक विज्ञान है।

स्वरूपात्मक सम्प्रदाय के प्रमुख विद्वान समाजशास्त्र के स्वरुपात्मक सम्प्रदाय की विचारधारा का समर्थन जिन विद्वानों ने किया है, वे इस प्रकार हैं-

(1) जार्ज सिमेल (George Simmel)- जार्ज सिमेल स्वरुपात्मक सम्प्रदाय का प्रमुख विचारक था। उसने ही सबसे पहले कहा था कि 'समाजशास्त्र सामाजिक सम्बन्धों के स्वरूपों का अध्ययन है।' उसने सामाजिक सम्बन्धों को दो भागों में बाँटा है-

(i) स्वरूप (Form), और (ii) अन्तर्वस्तु (Content) 1

उसने लिखा है कि प्रत्येक वस्तु के दो स्वरूप होते हैं- एक उस वस्तु का बाहरी स्वरूप और दूसरा उस

वस्तु का आन्तरिक स्वरूप। जहाँ तक समाजशास्त्र के क्षेत्र का सम्बन्ध है, इसके अन्तर्गत केवल सामाजिक सम्बन्धों के स्वरूपों का ही अध्ययन करना चाहिए, अन्तर्वस्तु का नहीं। इसे एक उदाहरण द्वारा अधिक स्पष्ट किया जा सकता है।

उदाहरण के लिए गिलास का एक स्वरूप (From) है। गिलास का एक निश्चित आकार तथा विशेषताएँ है। गिलास की लम्बाई-चौड़ाई की नाप की जा सकती है। उसमें कितना द्रव्य आयेगा इसे भी नापा जा सकता है। इस प्रकार की तीन गिलास हो सकती है-

तीन गिलासे एक ही आकार-प्रकार की है। गिलास नं. 1 शीशे की, गिलास नं.2 प्लास्टिक की ओर गिलास नं. 3 टीन की रूप बनी हुई है। पहली गिलास की अन्तर्वस्तु दूध, दूसरे की पानी और तीसरे की शराब है। तीनों गिलासों के स्वरूप एक प्रकार के हैं,उनमें भिन्न-भिन्न अन्तर्वस्तु दूध, पानी,शराब-रखने के गिलासों के स्वरूपों पर कोई प्रभाव नहींपड़ेगा। इस प्रकार यदि स्वरूपअर्नवस्तु (दूध)।) गिलास (शीरो की)(2) गिलास (प्लास्टिक की)स्वरूपअन्तंवस्तु (पानी)(3) गिलास (टीन की)- अन्त्रवस्तु (शराब) भिन्न-भिन्न स्वरूप वाले गिलासों में एक ही अन्तर्वस्तु भरी जाती है तब भी स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

उपर्युक्त गिलासों के उदाहरण से स्पष्ट होता है कि स्वरूप और अन्तर्वस्तु तो बिल्कुल पृथक् पृथक् वस्तुएँ हैं। इनमें से एक का दूसरे पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। दोनों का अलग-अलग अध्ययन करना चाहये ।

यही बात समाजशास्त्र के क्षेत्र के सम्बन्ध में भी लागू की जा सकती है। इसके क्षेत्र में सामाजिक सम्बन्ध आते हैं। सामाजिक सम्बन्धों के स्वरूप होते हैं, पहला उसका बाहरी स्वरूप और दूसरा उसका भीतरी स्वरूप। उदाहरण के लिये 'परिवार'। परिवार के सम्बन्ध में दो प्रकार के प्रश्न किये जा सकते हैं-

(i) परिवार क्या है? और

(ii) परिवार कैसा है?

जब इस प्रकार का प्रश्न किया जाय कि परिवार क्या है? तो इसका अर्थ यह हुआ कि परिवार के स्वरूप के बारे में पूछा जा रहा है। किन्तु अगर यह प्रश्न

किया जाय कि परिवार कैसा है? तो इसका अर्थ यह हुआ कि परिवार का संगठन किस प्रकार है? संगठन का तात्पर्य अन्तर्वस्तु (Content) से है। इस अन्तर्वस्तु का अध्ययन अन्य विज्ञान जैसे इतिहास, मानवशास्त्र आदि करते हैं। समाजशास्त्र में तो केवल सामाजिक सम्बन्धों के स्वरूपों का अध्ययन किया जाता है। समाजशास्त्र के क्षेत्र के सम्बन्ध में सिमेल के निम्नलिखित विचार हैं-

(i) तुलनात्मक दृष्टि से समाजशास्त्र नया विज्ञान है, इसलिए इसका क्षेत्र अन्य विज्ञानों से पृथक् होना चाहिये ।

(ii) समाजशास्त्र विशेष विज्ञान (special science) है।

(iii) समाजशास्व सामाजिक सम्बन्धों के स्वरूपों का अध्ययन करता है, अर्थात् सामाजिक सम्बन्धों के बाहरी स्वरूपों का ।

(iv) समाजशास्त्र का उद्देश्य होता है।

(2) **वीर काण्ट** (Vier Kandt)- वीर काण्ट भी जर्मन समाजशास्त्री था। समाजशास्त्र के क्षेत्र के सम्बन्ध में उसने भी स्वरुपात्मक सम्प्रदाय का समर्थन किया है। वीर काष्ट के अनुसार समाजशास्त्र को सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन करना चाहिए। उसके अनुसार यह समाजशास्त्र के क्षेत्र से परे है कि वह समाज के इतिहास का अध्ययन करे। समाजशास्व को अगर विज्ञान की कसौटी पर खरा उत्तरना है तो उसे मूर्त समाजों के अध्ययन को अपने क्षेत्र से अलग करना होगा। मानव के सम्बन्धों के जन्म और विकास से समाजशास्व का कोई सम्बन्ध नहीं है। समाजशास्त्र का क्षेत्र तो मानसिक सम्बन्ध है जो मानव-मानव को एक-दूसरे से बाँधे हुए है। उदाहरण के लिए प्रेम, लज्जा, सहकारिता, द्वेष, लालसा, घृणा, ईर्ष्या आदि। मानव क्रियाओं के ये मनोवैज्ञानिक बन्ध (Psychological Bonds) ही मनुष्य को एक-दूसरे से जोड़े हुए हैं। समाजशास्त्र के क्षेत्र के सम्बन्ध में अनेक भ्रांतियाँ हैं। इन भ्रांतियों को समान करने के लिए समाजशास्त्र के क्षेत्र को सीमित करना होगा इस प्रकार वीर काण्ट के अनुसार समाजशास्व में मनुष्यों के मानसिक तत्वों के अन्तिम रूपों (Ultimate Forms) का अध्ययन किया जाता है।

(3) **मैक्स वेबर** (Max Weber)- मैक्स वेबर भी जर्मन समाजशास्वी था। जर्मनी के समाजशास्त्रियों में वेबर का नाम शीर्ष स्थान पर लिया जाता है।

इसका कारण यह है कि समाजशास्व में अभी तक वैज्ञानिक अवधारणा (Scientific Concept) का अभाव था। वेबर ने इस कमी को पूरा किया और व्याख्यात्मक समाजशास्त्र की स्थापना की। उसने समाजशास्त्र और प्राकृतिक विज्ञानों में स्पष्ट अन्तर माना है। वेबर के अनुसार 'समाजशास्त्र का मुख्य उद्देश्य सामाजिक मनुष्य की क्रियाओं का व्याख्यात्मक अध्ययन और सामाजिक घटनाओं के कार्य-कारण सम्बन्धों का ज्ञान है।' आपने समाजशास्व की व्याख्या में लिखा है कि 'समाजशास्त्र वह विज्ञान है जो सामाजिक क्रिया को व्याख्या के द्वारा समझाने का प्रयास करता है जिससे उस क्रिया के रूप में एवं परिणामों का कार्य-कारण सम्बन्ध मापा जा सके।' वेबर की परिभाषा के तीन महत्वपूर्ण भाग है-

(i) सामाजिक क्रिया,

(ii) सामाजिक क्रिया की व्याख्या, और

(iii) सामाजिक क्रिया के रूप एवं परिणाम का कार्य-कारण सम्बन्ध ।

जहाँ तक क्षेत्र का सम्बन्ध है वेबर के अनुसार 'सामाजिक क्रिया' ही समाजशास्त्र का क्षेत्र है और समाजशास्त्र के अन्तर्गत सामाजिक क्रियाओं का ही अध्ययन किया जाना चाहिये। वेबर के अनुसार, सामाजिक क्रिया को एक उदाहरण द्वारा अच्छी तरह समझा जा सकता है। जैसे दो साइकिल चालकों की साइकिलें टकरा गयीं। साइकिल का टकराना प्राकृतिक क्रिया है। साइकिल टकराने के बाद उन दोनों के बीच में जो गाली-गलौच और मार-पीट हो जाय, उसे सामाजिक क्रिया कहेंगे।

(4) **स्माल** (Small)- स्माल के विचार जार्ज सिमेल से काफी मिलते हैं। स्माल सिमेल के विचारों से प्रभावित था। इसने लिखा है कि समाजशास्व समाज का विज्ञान है किन्तु समाजशास्त्र के अन्तर्गत सभी सामाजिक क्रियाओं का अध्ययन संभव नहीं है। समाज में भाषा, विचार, धर्म, रहन-सहन और संस्कृतियों में विविधता है। समाज की सभी संस्थाओं और संस्कृतियों का अध्ययन समाजशास्त्र के लिए संभव नहीं है। अतः समाजशास्त्र को इन संस्थाओं के प्रजातिक रूप (Genetic Form) का ही अध्ययन करना चाहिए। उदाहरण के लिए धर्मशास्त्र और नीतिशास्त्र धर्म और नीति सम्बन्धी विभिन्न

पहलुओं का अध्ययन करते हैं, किन्तु समाजशास्त्र का सम्बन्ध तो धर्म के उस स्वरूप से है जिसके द्वारा वह समज पर नियंत्रण करता है। इसी प्रकार समाजशास्त्र में नीतिशास्त्र का अध्ययन सामाजिक नियंत्रण की इकाई के रूप में किया जाना चाहिए। इसी प्रकार राजनीतिशास्व आधुनिक और प्राचीन सरकार एवं शासन का अध्ययन है। समाजशास्व को राजनीतिशास्त्र का अध्ययन सरकार के उस रूप के सम्बन्ध में करना चाहिए, जिससे वह समाज को संगठित करता है। प्रजातिक अध्ययन का एकमात्र उद्देश्य यह है कि विषय को सीमित किया जाय। समाज के सम्बन्ध में विविध ज्ञान का अध्ययन तो अन्य विज्ञान भी करते हैं। समाजशास्त्र इस ज्ञान के साधारणीकरण का काम करता है।

(5) **टॉनीज** (Tonnies) टॉनीज ने शुद्ध समाजशास्त्र (Pure Sociology) की कल्पना की थी। उसके अनुसार सामाजिक सम्बन्धों के स्वरूपों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना ही समाजशास्त्र का अध्ययन क्षेत्र

है। उसने सामाजिक सम्बन्धों के दो स्वरूप बतलाये हैं-

(i) समुदाय (Geminschaft) Community,

(ii) समाज (Gasellschaft) Society.

टॉनीज के अनुसार समाज में यांत्रिक एकता (Mechanical Solidarity) पायी जाती है और समाज सावयवी एकता (Organic Solidarity) पर आधारित है। इस प्रकार उसने समुदाय और समाज के सम्बन्धों के स्वरूपों में अन्तर बतलाया है।

(6) **वॉन विजे** (Von Wiese) वॉन विजे का उद्देश्य समाजशास्त्र को एक पृथक् विज्ञान के रूप में मानना था। वह एक ऐसा रूप देना चाहता था जिससे समाजशास्त्र को अन्य विज्ञानों से पृथक् किया जा सके। इसके साथ ही समाजशास्त्र को एक व्यवस्थित विज्ञान भी बनाना चाहता था। उसके अनुसार समाजशास्व सामाजिक सम्बन्धों के स्वरूपों का विज्ञान है। इन सामाजिक सम्बन्धों के स्वरूपों को उसने 650 भागों में विभाजित किया है। मनुष्य तथा समूह और समूह के सम्बन्ध अलग-अलग होते हैं।

स्वरुपात्मक सम्प्रदाय की आलोचना(Criticism of Formal School)

स्वरूपात्मक सम्प्रदाय की विद्वानों ने निम्न आलोचनाएँ की है-

(i) इस सम्प्रदाय के विद्वानों के अनुसार 'सामाजिक सम्बन्धों के स्वरूपों का अध्ययन ही समाजशास्त्र का क्षेत्र है।' इस सम्प्रदाय के विद्वानों के अनुसार सामाजिक सम्बन्धों के स्वरूपों का अध्ययन अन्य विज्ञान नहीं करते हैं। यह धारणा गलत है। सामाजिक सम्बन्धों के स्वरूपों का अध्ययन अन्य विज्ञान भी करते हैं। उदाहरण के लिए राजनीतिशास्त्र, विधिशास्त्र और अर्थशास्त्र आदि में सामाजिक सम्बन्धों के स्वरूपों का अध्ययन किया जाता है। राजनीतिशास्व में स्वामित्व, प्रभुत्व और जनमत, अर्थशास्त्र में एकाधिकार, प्रतिस्पर्धा, श्रम-विभाजन और विधिशास्त्र में संघर्ष, दासत्व, समझौता आदि का अध्ययन किया जाता है। ये सभी सामाजिक सम्बन्धों के विभिन्न स्वरूप हैं। इसलिए इस सम्प्रदाय के विद्वानों का ऐसा कहना है कि सामाजिक सम्बन्धों के स्वरूपों का अध्ययन अन्य विज्ञान नहीं करते हैं, सत्य से परे तथा अवैज्ञानिक है।

(ii स्वरूप और अन्तर्वस्तु के बीच जो अन्तर किया गया है वह दोषपूर्ण है तथा स्वयं में उलझा हुआ है, स्वरूप और अन्तर्वस्तु का अन्तर भौतिक पदार्थों तक ही सीमित है। समाजशास्त्र सामाजिक सम्बन्धों

का विज्ञान है। सामाजिक सम्बन्धों में स्वरूप और अन्तर्वस्तु जैसा अन्तर गलत प्रतीत होता है। सोरोकिन ने लिखा है कि "हम एक गिलास को मदिरा, जल या शक्कर से बिना उसके रूप को परिवर्तित किये ही भर सकते हैं, परन्तु मैं एक सामाजिक संस्था की कल्पना भी नहीं कर सकता जिससे कि स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं होगा, जबकि उसके सदस्य बदल जाते हैं।"

(iii) सिमेल, वीरकाष्ट, टॉनीज और वॉन विजे ने सामाजिक सम्बन्धों के स्वरूपों का जो वर्गीकरण किया है, वह भी अपूर्ण है। इसका भी पूर्ण वर्गीकरण विधिशास्त्र में किया गया है। (6)

(iv) जार्ज सिमेल के अनुसार सामाजिक सम्बन्धों के स्वरूपों को नापा जा सकता है और रेखागणित की तरह अध्ययन किया जा सकता है। लेकिन सामाजिक सम्बन्धों के स्वरूपों को नापा नहीं जा सकता और उसका अध्ययन रेखागणित की तरह नहीं किया जा सकता है।

स्वरूपात्मक सम्प्रदाय के समर्थक अपने अध्ययन में स्वयं ही अपूर्ण हैं। एक ओर तो वे सामाजिक सम्बन्धों की अन्तर्वस्तु को समाजशास्त्र के क्षेत्र के बाहर करते हैं, किन्तु अनेक स्थानों पर अन्तर्वस्तु का वर्णन किया है। (v)

(vi) स्वरूप और अन्तर्वस्तु एक ही वस्तु के दो पहलू हैं, इन्हें अलग नहीं किया जा सकता है।

(vii) इस सम्प्रदाय के विद्वानों ने समाजशास्त्र को स्वतंत्र विज्ञान बनाने का प्रयास किया है। किन्तु यह भूल जाते हैं कि सामाजिक विज्ञान एक-दूसरे से अन्तः सम्बन्धित हैं और उन्हें पृथक् करके नहीं समझा जा सकता है।

(viii) इस सम्प्रदाय के विद्वानों ने सामाजिक सम्बन्धों के स्वरूपों और समाजीकरण के स्वरूपों में कोई भेद नहीं किया है। सामाजिक सम्बन्धों के स्वरूपों में समाजीकरण और असमाजीकरण दोनों के ही स्वरूप आ जाते हैं।

(ix) मनुष्यों की संख्या में परिवर्तन हो जाने से सामाजिक सम्बन्धों के स्वरूपों में भी परिवर्तन आ जाता है। इनसे सामाजिक सम्बन्धों के स्वरूपों का स्थायी अध्ययन सम्भव नहीं है।

(x) इस सम्प्रदाय के समर्थकों ने समाजशास्त्र का जो क्षेत्र निश्चित किया है, वह अव्यावहारिक है।

1.7 समन्वयात्मक सम्प्रदाय(Synthetic School)

जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट होता है यह सम्प्रदाय समाजशास्व को अनेक विज्ञानों का समन्वय मानता है। यह सम्प्रदाय समाजशास्त्र को सामान्य विज्ञान (General Science) मानता है। समाज में अनेक प्रकार की समस्याएँ और संस्थाएँ हैं। इनका अध्ययन हर पहलू से करना चाहिए जैसे सामाजिक राजनैतिक आर्थिक धार्मिक आदि। अतः समाजशास्त्री को समाज के सभी पहलुओं का ज्ञान आवश्यक है, अन्यथा उसका अध्ययन एकांगी और अपूर्ण रहेगा। समन्वयात्मक सम्प्रदाय की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित है-

(1) इस सम्प्रदाय की पहली और मौलिक विशेषता जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, समन्वयात्मक है।अर्थात् समाजशास्त्र के अन्तर्गत सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं का समन्वयात्मक अध्ययन किया जाता है।

(2) इसकी दूसरी विशेषता सामान्य विज्ञान की है। समाजशास्त्र अन्य सामाजिक विज्ञानों की भाँति सामाजिक समस्याओं का सामान्य (General) अध्ययन करता है।

(3) इस सम्प्रदाय के विद्वानों का दृष्टिकोण व्यावहारिक है अर्थात् वे जिस समाजशास्त्र के क्षेत्र की कल्पना करते हैं, उसे व्यावहारिक दृष्टिकोण से भी लागू कर सकते हैं।

(4) सामाजिक जीवन सिर्फ एक ही कारक पर आश्रित नहीं है। यह अनेक कारकों का समन्वय है जैसे आर्थिक, राजनीतिक, भौगोलिक, धार्मिक आदि समाजशास्त्र इन सभी अन्तः क्रियाओं का अध्ययन करता है।

इस सम्प्रदाय के प्रमुख विद्वान निम्न है-

(1) **लेस्टर वार्ड** (Lester Ward)- वार्ड का विचार है कि 'समाजशास्व समाज का विज्ञान है।' समाज अनेक समूहों और संस्थाओं से मिलकर बना है। ये सभी संस्थाएँ एक-दूसरे से सम्बद्ध और अन्तःसंबंधित हैं। समाजशास्त्र विभिन्न ज्ञान-विज्ञानों का समन्वय है। यह एक खिचड़ी की तरह है जो अनेक वस्तुओं से 10 मिलकर बनी है। सभी वस्तुएँ एक-दूसरे से इतनी घुली-मिली हैं कि उनका पृथक्अस्तित्व नहीं है और उन्हें एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है।

(2) दुरखीम (Emile Durkhiem) दुरखीम फ्रांसीसी सामाजिक विचारक था। दुरखीम ने समाज का समाजशास्त्रीय और वैज्ञानिक दोनों आधारों पर अध्ययन किया है। दुरखीम ने समाजशास्त्र की स्थापना एक नवीन विज्ञान के रूप में की है। दुरखीम ने विभिन्न सामाजिक तथ्यों का पारस्परिक अध्ययन किया है। वह भी समाजशास्व को समन्वयात्मक विज्ञान बनाने के पक्ष में था। उसने समाजशास्व के क्षेत्र को तीन भागों में विभक्त कया है और ये ही तीनों भाग मिलकर सामाजिक संबंधों को पूर्ण करते हैं।

(3) हाबहाउस (Hobhouse) यह इंगलैण्ड का समाजशास्त्री था। उसने स्वीकार किया है कि समाजशास्त्र असंख्य सामाजिक विज्ञानों का समन्वय मात्र है। हॉबहाउस के अनुसार समाजशास्व को दोहरा कार्य करना पड़ता है

(1) इसे अपने निश्चित सामाजिक क्षेत्र का अध्ययन करना चाहिए।

(2) सामाजिक क्षेत्र का पता कैसे लगाया जाय? सामाजिक सम्बन्ध एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। इस सम्बन्ध में कुछ केन्द्रीय धारणाएँ हैं जो सभी मानव समूहों में पायी जाती हैं। इन्हीं केन्द्रीय धारणाओं पर सभी विज्ञान आधारित है। सभी विज्ञान एक-दूसरे से सम्बद्ध है। यह समाजशास्त्र का समन्वयात्मक कार्य है।

(4) हेज (Hayes)- प्रोफेसर हेज ने प्रत्येक विज्ञान के लिए चार तथ्यों का उल्लेख किया है।

ये तथ्य है-निम्न

(1) समस्या से सम्बन्धित तथ्य (Problem Facts)

(2) मौलिक तथ्य (Elements Facts)

(3) दशाओं से सम्बन्धित तथ्य (Conditioning Facts)

(4) परिणामों से सम्बन्धित तथ्य (Resultant Facts) |

इन्हीं तथ्यों को उसने समाजशास्त्र पर भी लागू किया। 'समाज' समाजशास्त्र में समस्या से संबंधित

तथ्य है। समाज सामाजिक संबंधों का अध्ययन है। मानव की आवश्यकताएँ समस्या से संबंधित मौलिक तथ्य हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति में समाज की कुछ परिस्थितियों का हाथ होता है, जैसे भौगोलिक, आर्थिक धार्मिक आदि। ये परिस्थितियाँ ही दशाओं से सम्बन्धित तथ्य हैं। विभिन्न दशाओं के विभिन्न परिणाम होते हैं जिन्हें परिणामों से संबंधित तथ्य कहा जाता है। इसी प्रकार समाजशास्त्र भी सामाजिक नियमों का निर्माण करता है और उसकी व्याख्या करता है। यह स्वतंत्र विज्ञान नहीं है, अन्य विज्ञान से प्रभावित होता है।

(5) **गिन्सवर्ग** (Ginsberg)- गिन्सबर्ग का विचार है कि यदि गहराई से देखा जाय तो स्वरूपात्मक

और समन्वयात्मक सम्प्रदाय में कोई भेद नहीं है। समाजशास्त्र में सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। इन्हें न तो विशेषात्मक ढंग से समझा जा सकता है और न समन्वयात्मक ढंग से। दोनों के सम्मिलित ज्ञान के आधार पर ही इसे समझा जा सकता है। गिन्सबर्ग ने समाजशास्व का जो क्षेत्र निर्धारित किया है, उसे समाजशास्त्र की विषय-सामग्री में दिया गया है।

(6) **सोरोकिन** (P.A. Sorokin) सोरोकिन आधुनिक युग के समाजशास्त्रियों में प्रमुख हैं। उनकी समाजशास्त्र की धारणा आधुनिकतम और वैज्ञानिक हैं। उनके अनुसार समाजशास्त्र सामाजिक-सांस्कृतिक घटनाओं के प्रजातीय रूप, प्रकार और विविध अन्तः सम्बन्धों को दृष्टि में रखकर उनका सामान्यीकरण (

Generalization) करने वाला विज्ञान है। सोरोकिन के अनुसार समाजशास्त्र की निम्न विशेषताएँ है

(1) समाजशास्त्र सामाजिक घटनाओं के विभिन्न वर्गों के सम्बन्धों का अध्ययन करता है।

(2) समाजशास्त्र सामाजिक तथा असमाजिक घटनाओं के सम्बन्धों का अध्ययन करता है।

(3) समाजशास्व सामाजिक घटना के सभी वर्गों के सामान्य (General) तथा समान (Common) लक्षणों का अध्ययन करता है।

उसने विशेष समाजशास्त्र (Special Sociology) की आलोचना कर सामान्य समाजशास्त्र (General Sociology) की स्थापना की है। समाजशास्व सामान्य विज्ञान इसलिए है क्योंकि वह सामाजिक घटनाओं के सामान्य लक्षणों का अध्ययन करता है। सामाजिक घटनाओं को उसने निम्न प्रयोग द्वारा समझाया है ।

सामाजिक घटनाएँ	**घटनाओं के तत्व**
(Social Phenomenon)	(Element of Phenomenon)

(1) आर्थिक	अ, ब, स, द, इ
(2) राजनैतिक	अ, ब, स, फ, ग
(3) धार्मिक	अ, ब, स, हु, क
(4) वैधानिक	अ, ब, स, ल, म
(5) मनोरंजनात्मक	अ, ब, सु, न, प

ऊपर पाँच प्रकार की सामाजिक घटनाएँ हैं। इन दोनों घटनाओं में अ, ब, और स समान और सामान्य तत्वों के रूप में विद्यमान है। इन्हीं समान तत्वों के अन्तः सम्बन्धों का अध्ययन समाजशास्त्र के अन्तर्गत किया जाता है।

समन्वयात्मक सम्प्रदाय की आलोचना(Criticism of Synthetic School)

समाजशास्त्र न तो पूरी तरह विशिष्ट विज्ञान है और न सामान्य विज्ञान ही। अनेक सामाजिक घटनाओं का अध्ययन सिर्फ समाजशास्त्र के अन्तर्गत किया जाता है जबकि अनेक सामाजिक घटनाएँ सामान्य रूप से सभी विज्ञानों में पायी जाती हैं। समाज का सामान्य और विशिष्ट दोनों प्रकार का अध्ययन आवश्यक है। समाजशास्व सामाजिक विज्ञान है और सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में कोई दीवार नहीं खड़ी की जा सकती है। यही बात समाजशास्त्र पर भी लागू होती है।

1.8 समाजशास्त्र की विषय-सामग्री (Subject-Matter of Sociology)

समाजशास्त्र के अध्ययन की सीमाओं का निर्धारण करने के पश्चात् यह निश्चित करना उचित है कि समाजशास्व की विषय-वस्तु क्या है? किसी विज्ञान की विषय-वस्तु का निर्धारण निम्न दो तथ्यों के आधार पर किया जाता है

(1) उस विषय के अन्तर्गत क्या पढ़ा जाय, तथा

(2) क्या न पढ़ा जाय । इसी आधार पर समाजशास्त्र की विषय-वस्तु का निर्धारण करना होगा। समाजशास्त्र के अन्तर्गत क्या-क्या पढ़ा जाय और क्या-क्या न पढ़ा जाय? इस सम्बन्ध में कुछ प्रमुख विद्वानों के विचार निम्न है-
(1) एंकलेस (Alex Inkeles) प्रो. एलेक्स एंकलेस ने अपनी पुस्तक 'What is

Sociology' में समाजशास्त्र की विषय-सामग्री में निम्न क्षेत्रों को सम्मिलित किया है

(a) समाजशास्त्रीय विश्लेषण

(1) मानव संस्कृति एवं समाज

(2) समाजशास्त्रीय संदेश

(3) सामाजिक विज्ञानों की वैज्ञानिक पद्धति

(b) सामाजिक जीवन की प्राथमिक इकाइयाँ

(1) सामाजिक क्रिया तथा सामाजिक सम्बन्ध

(2) मानव व्यक्तित्व

(3) समूह

(4) समुदाय

(5) समितियाँ एवं सगठन

(6) जनसंख्या

(7) समाज

(c) मूलभूत सामाजिक संस्थाएँ

(1) परिवार और नातेदारी

(2) आर्थिक संस्थाएँ

(3) राजनैतिक एवं विधिक संस्थाएँ

(4) शैक्षणिक एवं वैज्ञानिक संस्थाएँ

(5) कलात्मक संस्थाएँ

(6) मनोरंजनात्मक एवं कल्याणवादी संस्थाएँ

(d) मौलिक सामाजिक प्रक्रियाएँ

(1) विभेदीकरण तथा स्तरीकरण

(2) सहयोग, अनुकूलन तथा आत्मसात

(3) सामाजिक संघर्ष

(4) संचार

(5) सामाजीकरण तथा सैद्धांतीकरण

(6) सामाजिक मूल्यांकन (मूल्यों का अध्ययन)

(7) सामाजिक एकीकरण

(8) सामाजिक व्याधिकी (अपराध, बाल अपराध आदि)

(9) सामाजिक परिवर्तन

(2) कार्ल मैनहीम- कार्ल मैनहीम ने समाजशास्त्र की विषय-सामग्री में निम्न विषयों को सम्मिलित

किया है-

(a) क्रमबद्ध एवं सामान्य समाजशास्त्र (Systematic and General Sociology)

(b) ऐतिहासिक समाजशास्त्र (Historical Sociology)

(1) तुलनात्मक समाजशास्त्र (Comparative Sociology)

(2) सामाजिक गतिशास्त्र (Social Dynamics)

(3) सोरोकिन (P.A. Sorokin)- सोरोकिन ने समाजशास्त्र की अध्ययन-वस्तु को निम्न भागों में

विभाजित किया है-

(a) समाज के विभिन्न अंगों (धर्म, अर्थ, नीति, परिवार आदि) के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन ।

(b) सामाजिक और असामाजिक (जैसे भौगोलिक और जीवशास्त्रीय) घटनाओं का सामाजिक जीवन से सम्बन्ध का अध्ययन ।

(c) उन लक्षणों का अध्ययन करना जो समाज के सभी अंगों में समान रूप से मिलते हैं।

(4) गिन्सबर्ग (Ginsberg)- गिन्सबर्ग ने समाजशास्त्र की विषय-सामग्री को निम्न चार भागों में विभाजित किया है-

(a) सामाजिक स्वरूपशास्त्र (Social Morphology)- इसके अन्तर्गत समाज के ढाँचे और संगठन का अध्ययन किया जाता है। ढाँचे के अन्तर्गत विभिन्न समूहों और संस्थाओं का अध्ययन किया जाता है, जिससे समाज का निर्माण होता है। संगठन के अन्तर्गत समाज के आकार का अध्ययन किया जाता है, जैसे जनसंख्या के आकार और घनत्व ।

(b) सामाजिक नियंत्रण (Social Control)- इसके अन्तर्गत उन तत्वों का अध्ययन किया जाता हैं जो समाज को नियंत्रित करते हैं, जैसे कानून, धर्म, प्रथा, परम्परा आदि।

(c) सामाजिक प्रक्रियाएँ (Social Processes)- इसके अन्तर्गत अन्तः क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। अन्तःक्रियाएँ दो प्रकार की होती हैं- सहयोगी और असहयोगी। जैसे सहयोग, अनुकूलन, प्रतिस्पर्धा और संघर्ष ।

(d) सामाजिक विघटन (Social Disorganization)- इसमें मानव समाज की विघटित अवस्था का अध्ययन किया जाता है, जैसे अपराध, बाल-अपराध, गरीबी, आत्महत्या, वेश्यावृत्ति, पारिवारिक विधटन आदि ।

(5) मोटवानी (Dr. Kewal Motwani)- डॉ. केवल मोटवानी के अनुसार समाजशास्व की अध्ययन-वस्तु निम्नलिखित है-

(a) समाजशास्त्र उन तथ्यों की खोज करता है, जिसके द्वारा सामाजिक जीवन के आधारभूत तत्वों में सामंजस्य स्थापित होता है।

(b) समाजशास्त्र सामाजिक संस्थाओं के उद्भव, विकास, प्रगति, कार्यों तथा अन्तः सम्बन्धों आदि का अध्ययन करता है।

(c) समाजशास्त्र सामाजिक परिवर्तन की दशा निर्धारित करने वाले सामाजिक संगठन के तत्वों का अध्ययन करता है।

(d) समाजशास्त्र सामाजिक अव्यवस्था और विघटन को दूर करके व्यावहारिक उपाय प्रस्तुत करता है।

(e) व्यक्ति और समूह की प्रगति में सहायक शक्तियों और कारकों के समन्वय का अध्ययन समाजशास्त्र करता है।

(6) दुरखीम (Emile Durkhiem) दुरखीम ने समाजशास्त्र के क्षेत्र में निम्न तीन तत्व सम्मिलित किये हैं

(**a) सामाजिक स्वरूपशास्त्र** (Social Morphology)- इसमें समाज के आकार-प्रकार के अध्ययन को सम्मिलित किया गया है, जैसे जनसंख्या का आकार और घनत्व तथा सामाजिक संस्थाएँ और समाज का संगठन ।

(b) सामान्य समाजशास्त्र (Genenral Sociology)- इसके अन्तर्गत समाज से सम्बन्धित नियमों का अध्ययन किया जाता है।

(c) सामाजिक शरीरशास्त्र (Social Physiology)-इसके अन्तर्गत समाज की उन समस्याओं का अध्ययन किया जाता है जो सामाजिक जीवन के विकास के लिए आवश्यक है, जैसे धर्म, भाषा, आर्थिक और पारिवारिक जीवन आदि।

(7) यूटर तथा हार्ट (Reuter and Hart)- रयूटर और हार्ट ने समाजशास्व की विषय-सामग्री में निम्न तत्व सम्मिलित किये हैं-

(a) सामाजिक विकास (Social Heritage) I

(b) व्यक्तित्व और इसका विकास (Personality and Development) 1

(c) सामाजिक प्रक्रियाएँ (Social Processes) I

(8) असामाजिक निर्धारक (Non-Social Determinants) समाजशास्व असामाजिक तत्वों का सामाजिक संगठन और सामाजिक सम्बन्धों पर प्रभाव का अध्ययन करता है, जैसे जलवायु, प्राकृतिक साधन, प्राकृतिक अस्थिरता और प्राणिशास्त्रीय दशाएँ आदि।

(a) व्यक्ति का समाजीकरण (Sociolization of the Individual) व्यक्तित्व के विकास में वंशानुक्रमण और संस्कृति का अध्ययन किया जाता है जिससे मानव प्राणी सामाजिक बनता है।

(b) स्वीकृत व्यवहार (Sanctioned Behaviour)- समाजशास्त्र के अन्तर्गत समाज द्वारा स्वीकृत व्यवहारों का अध्ययन किया जाता है, जैसे संहिताएँ, प्रथाएँ, कानून आदि।

(c) सामाजिक ढाँचा (Social Structure)- इसके अन्तर्गत उन तत्वों का अध्ययन किया जाता है जिससे समाज के ढाँचे का निर्माण होता है, जैसे जाति, वर्ग, परिवार आदि ।

(d) सामाजिक प्रक्रियाएँ (Social Processes)- इसके अन्तर्गत सहयोग, अनुकूलन, प्रतिस्पर्धा, संघर्ष, सामाजिक उविकास और सामाजिक प्रगति का अध्ययन किया जाता है।

(c) सामाजिक विचारधारा (Social Ideology)- इसमें सामाजिक आदर्शों का अध्ययन किया जाता है, विचारों का अध्ययन किया जाता है, जैसे शिक्षा और संचार से सम्बन्धित समाजशास्त्र ।

(f)विचार व्यवस्थाओं का समाजशास्त्र (Sociology of Thought Systems)- इसके अन्तर्गत समाजशास्व की गई शाखाओं का अध्ययन किया जाता है, जैसे ज्ञान का समाजशास्त्र, धर्म का समाजशास्त्र, कला का समाजशास्त्र आदि। समाज में विचार व्यवस्थाओं के महत्व का भी अध्ययन किया जाता है।

(g) पद्धतिशास्त्र (Methodology)- समाजशास्त्र में उन पद्धतियों का भी अध्ययन किया जाता है समाजशास्त्र : बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर-1 जिसके बिना अध्ययन पूरा नहीं होता है।

1.9 समाजशास्त्र की सीमाएँ (Limitations of Sociology)

समाजशास्त्र की सीमाओं के द्वारा इसका क्षेत्र, विषय-सामग्री और भी अधिक स्पष्ट हो जायगी। सीमाओं के द्वारा समाजशास्व के अध्ययन को निश्चित किया गया है। समाजशास्त्र की निम्न सीमाएँ हैं-

(i) समाजशास्त्र में सिर्फ समाज और सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है।

(ii) समाजशास्त्र में सिर्फ मानव समाज का अध्ययन किया जाता है।

(iii) समाजशास्त्र सभी सामाजिक विज्ञानों का योग नहीं है। इसका पृथक् क्षेत्र और अध्ययन-वस्तु है।

(iv) समाजशास्व नैतिक नहीं है और इसका नैतिकता से कोई सम्बन्ध नहीं है।

(v) समाजशास्त्र 'क्या है' का अध्ययन करता है, 'क्या होना चाहिए' का नहीं। इसीलिए इसका सुधारशास्व से कोई सम्बन्ध नहीं है।

(vi) समाजशास्त्र दार्शनिक विचारों का अध्ययन नहीं करता है।

(vii) समाजशास्त्र में केवल उन्हीं समूहों का अध्ययन किया जाता है जो स्पष्ट और स्थायी हैं।

1.10 सार संक्षेप

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि समाजशास्त्र की प्रकृति वैज्ञानिक हैं समाजशास्त्र अपने अध्ययन में वैज्ञानिक पद्धित का प्रयोग करता हैं, अतः समाजशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान हैं। इतना अवश्य हैं कि भौतिक विज्ञानों की तुलना में इसमें परिशुद्धता की मात्रा कम पायी जाती हैं। यहाँ पर हमें यह बात जान लेना चाहिए कि उपरोक्त पंक्तियों में समाजशास्त्र की प्रकृति के संबंध में कहे गये दोनों ही कथन आंशिक रूप से सत्य तथा आंशिक रूप से असत्य हैं। यह कहना कि समाजशास्त्र विज्ञान हैं, उतना ही गलत हैं जितना यह कहना कि समाजशास्त्र विज्ञान नहीं हैं। सच तो यह है कि समाजशास्त्र विज्ञान तो है, किन्तु उतना यथार्थ नहीं हैं, जितना भौतिकशास्त्र या रसायनशास्त्र हैं। अतः इस संबंध में अंतिम निर्णय यहीं हैं कि समाजशास्त्र विज्ञान हैं, किन्तु निश्चित ही विज्ञान नही हैं।

1.11 मुख्य शब्द

विज्ञानात्मक प्रकृति: समाजशास्त्र एक विज्ञान है, जो अनुभवजन्य तथ्यों और वैज्ञानिक विधियों पर आधारित है।

मानव-केंद्रित अध्ययन: यह मानव समाज, उसके व्यवहार और अंतःक्रियाओं का अध्ययन करता है।

सामाजिक संबंधों का अध्ययन: यह सामाजिक संस्थाओं, समूहों और प्रक्रियाओं पर केंद्रित होता है।

सिद्धांतात्मक और व्यावहारिक: यह सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए सिद्धांत और व्यावहारिक सुझाव प्रदान करता है।

मूल्य-निरपेक्षता: समाजशास्त्र का अध्ययन व्यक्तिगत पूर्वाग्रहों और मूल्यों से मुक्त होता है।

6.अंतर-विषयक प्रकृति: यह मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र, इतिहास, और राजनीति विज्ञान जैसे अन्य विषयों से जुड़ा हुआ है।

1.12 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जाँच

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1.'समाजशास्त्र का जनक' किसे कहते हैं

(अ) कार्ल मार्क्स (ब) अगस्त कॉम्टे (स) दुर्खीम (द) मैक्स वेबर

2. समाजशास्त्र शब्द का पहली बार प्रयोग करने वाला विद्वान था-

(अ) मैक्स वेबर (ब) जार्ज सिमेल (स) ऑगस्त कॉम्टे (द) स्पेन्सर

3. प्रारम्भ में ऑगस्त कॉम्टे समाजशास्त्र को किस नाम से पुकारता था-

(अ) प्राकृतिक विज्ञान (ब) सामाजिक विज्ञान (स) सामाजिक भौतिकशास्त्र (द) जीवशास्त्र

4. किस सन् में समाजशास्त्र शब्द का प्रयोग पहली बार हुआ-

(अ) 1838 (ब) 1919 (स) 1857 (द) 1798

5. स्वरूपात्मक सम्प्रदाय का संस्थापक कौन था-

(अ) मैक्स वेबर (ब) टॉनीज (स) जार्ज सिमेल (द) वीरकाण्ट

6. समाजशास्त्र के क्षेत्र को A, B, C, D के माध्यम से किस विद्वान ने समझाया है-

(अ) दुर्खीम (स) हाबहाउस

(ब) मोटवानी (द) सोरोकिन

7. समाजशास्त्र के क्षेत्र को गिलासों का उदाहरण देकर किस विद्वान ने समझाया है-

(अ) टॉनीज (ब) जार्ज सिमेल (स) वार्ड (द) दुर्खीम

8. समाजशास्त्र की विषय-वस्तु को दुखींम ने कितने भागों में बाँटा है-

(अ) तीन (ब) चार (स) पाँच (द) छ

9. स्वरूपात्मक सम्प्रदाय का विद्वान कौन है?

(अ) मैक्स वेबर (ब) हर्बर्ट स्पेन्सर (स) कार्ल मार्क्स (द) पारसन्स

10. समन्वयात्मक सम्प्रदाय का विद्वान कौन है?

(अ) मर्टन (ब) पूनीथान (स) सोरोकिन (द) पारसन्स

11. व्यवस्थित ज्ञान की शाखा का नाम है-

(अ) विज्ञान (ब) कला (स) साहित्य (द) वाणिज्य

12. विज्ञानों को मुख्य रूप से कितने भागों में बाँटा जा सकता है?

(अ) दो (ब) तीन (स) चार (द) पाँच

13. विज्ञान अनुसंधान का एक तरीका है।' उक्त कथन किस विद्वान का है?

(अ) लुण्डबर्ग (ब) ग्रीन (स) कार्ल पियर्सन (द) बीसेन्ज

14. समाजशास्त्रीय प्रयोगशाला की सबसे पहले कल्पना किस विद्वान ने की थी ?

(अ) मर्टन` (ब) सोरोकिन (स) बोगार्डस (द) ग्रीन

15. निम्न में से कौन विज्ञान की विशेषता नहीं है-

(अ) वर्गीकरण (ब) सत्यापन (स) वस्तुनिष्ठता (द) अनिश्चय

उत्तर 1. (ब), 2. (स), 3. (स) 4. (अ), 5. (स), 6. (द), 7. (ब), 8. (ब), 9. (अ), 10. (स) 11. (अ), 12. (अ), 13. (ब), 14. (स), 15. (द)

1.13 संदर्भ ग्रन्थ

- बालकृष्णन, पी. (2022)। *भारतीय अर्थव्यवस्था की पुनर्प्राप्ति: राजनैतिक अर्थव्यवस्था दृष्टिकोण*। नई दिल्ली: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
- बसु, के. (2018)। *विश्वासों का गणराज्य: कानून और अर्थशास्त्र के लिए एक नया दृष्टिकोण*। प्रिंसटन, एनजे: प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।
- घोष, ए. (2021)। *भारत की उभरती अर्थव्यवस्था: 21वीं सदी में प्रदर्शन और संभावनाएं*। नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- पनगढ़िया, ए. (2020)। *भारत असीमित: खोई हुई महिमा की पुनः प्राप्ति*। न्यूयॉर्क: हार्पर कॉलिन्स।
- नगराज, आर. (2019)। *भारत में आर्थिक वृद्धि और विकास: नए दृष्टिकोण*। नई दिल्ली: रूटलेज।.

1.14 अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. 'समाजशास्त्र मानव समाज का विज्ञान है।' इस परिभाषा को समझाइए तथा समाजशास्त्र के क्षेत्र की विवेचना कीजिए।

'Sociology is the science of human society. Explain this definition and discuss the scope of sociology.

2. संक्षेप में समाजशास्त्र की अवधारणा को समझाइए ।

Explain in brief the concept of sociology.

3. 'समाजशास्त्र सामाजिक विज्ञानों का समन्वय है।' अपने विचार व्यक्त कीजिए।

Sociology is a synthesis of the social sciences. Comment.

4. 'समाजशास्त्र मनुष्य के सभी सामाजिक सम्बन्धों का सामान्यीकरण एवं समन्वय करने वाला विज्ञान है।' समझाइए।

Sociology is the synthesizing and generalizing science of man in all his social relationships. Explain.

5. समाजशास्त्र के समन्वयात्मक सम्प्रदाय की विवेचना करते हुए दुरखीम एवं गिन्सबर्ग के योगदान की

विवेचना कीजिए। Discuss the 'synthetic school of sociology and give the contribution of Durkhim and Ginsberg.

इकाई - 2

समाजशास्त्र का अर्थ [THE MEANING OF SOCIOLOGY]

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 समाजशास्त्र शब्द का जन्मदाता

2.4 समाजशास्त्र शब्द की उत्पत्ति

2.5 समाजशास्त्र के चार अर्थ (Four Meanings of Sociology)

2.6 समाजशास्त्र की परिभाषाएँ (Definitions of Sociology)

2.7 सारांश

2.8 मुख्य शब्द

2.9 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

2.10 संदर्भ ग्रन्थ

2.11 अभ्यास प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

मानव जिज्ञासु प्राणी है। वह अपने परिवेश और परिस्थितियों को समझना चाहता है। मनुष्य की इसी जिज्ञासु प्रवृत्ति के कारण समाज में ज्ञान-विज्ञान की अनेक शाखाओं का जन्म और विकास हुआ। इन्हीं शाखाओं को कालान्तर में इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र आदि के नाम से जाना गया। इन विज्ञानों ने मानव व्यवहारों और सामाजिक सम्बन्धों के विभिन्न पक्षों को अपने अध्ययन का केन्द्र बनाया। सामाजिक जीवन और सामाजिक सम्बन्धों को आधार बनाकर जिस विज्ञान का जन्म हुआ, उसे 'समाजशास्त्र' या 'समाज विज्ञान' के नाम से सम्बोधित किया गया।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकें।
2. विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकें।
3. सामाजिक समानता और आर्थिक स्थिरता के प्रयासों को समझ सकें।
4. वैश्विक प्रतिस्पर्धा और इसके प्रभाव का विश्लेषण कर सकें।
5. रोजगार सृजन और विकास की नीतियों को समझने में सक्षम हो सकें।

2.3 समाजशास्त्र शब्द का जन्मदाता

फ्रान्स यूरोप का एक देश है। इस देश के माण्टपेलियर नामक स्थान पर 19 जनवरी, 1798 में एक व्यक्ति का जन्म हुआ। इस व्यक्ति का नाम था ऑगस्त कॉम्टे (Auguste Comte)। इस व्यक्ति का विचार था कि जिस प्रकार भौतिक वस्तुओं का अध्ययन करने के लिए भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, जीवशास्त्र आदि विज्ञान हैं, ठीक उसी प्रकार सामाजिक जीवन का अध्ययन करने के लिए सामाजिक विज्ञान की आवश्यकता है। ऑगस्त कॉम्टे ने सबसे पहले इस विज्ञान को 'सामाजिक भौतिकशास्त्र' (Social Physics) नाम दिया, तत्पश्चात् सन् 1838 में ऑगस्त कॉम्टे ने ही इसे 'समाजशास्त्र' (Sociology) नाम से सम्बोधित किया। इस प्रकार ऑगस्त कॉम्टे को 'समाजशास्व' शब्द का जन्मदाता कहा जाता है।

2.4 समाजशास्त्र शब्द की उत्पत्ति

समाजशास्त्र अंग्रेजी के Sociology शब्द का हिन्दी अनुवाद है। Sociology शब्द की उत्पत्ति ग्रीक

तथा लैटिन भाषा के निम्न दो शब्दों से हुई है-

(1) लैटिन भाषा का Socius, और (ii) ग्रीक भाषा का Logas ।

लैटिन भाषा के Socius (सोशियस) तथा ग्रीक भाषा के Logas (लोगास) शब्दों को मिलाकर अंग्रेजी

के Sociology शब्द की उत्पत्ति हुई।

समाजशास्त्र का शाब्दिक अर्थ

अंग्रेजी का Sociology दो शब्दों से मिलकर बना है- Socio + Logy.

इन दोनों शब्दों के अर्थ निम्न प्रकार हैं-

Socio (सोसियो) =Society (समाज)

Logy (लॉजी) =Science (विज्ञान)

Sociology (समाजशास्त्र) =Science of Society (समाज का विज्ञान)

लैटिन भाषा के शब्द Socius का अर्थ होता है-**'समाज'** और ग्रीक भाषा के Logas शब्द का अर्थ होता है**- 'विज्ञान'**। Socius और Logas को मिलाकर अंग्रेजी का Sociology शब्द बना है, जिसका अर्थ है समाज का विज्ञान अथवा समाजशास्त्र ।

2.5 समाजशास्त्र के चार अर्थ (Four Meanings of Sociology)

अनेक विद्वानों ने समाजशास्व को परिभाषित करके इसके अर्थ को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। इन विद्वानों के विचार को मुख्य रूप से निम्नांकित चार श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है -

(1) समाजशास्त्र समाज का विज्ञान है (Sociology is the Science of Society)

समाजशास्त्रियों का पहला समूह यह मानता है कि समाजशास्त्र समाज का विज्ञान है। इस शास्त्र के अन्तर्गत मुख्य रूप से समाज का अध्ययन किया जाता है। जो विद्वान इस मत के समर्थक हैं, उनमें वार्ड, ओडम, गिडिंग्स,

समनर आदि प्रमुख हैं।

(2) समाजशास्त्र सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन है (Sociology is the study of Social Relations) - विद्वानों का दूसरा समूह यह मानता है कि समाजशास्त्र की मुख्य विषय-वस्तु 'सामाजिक सम्बन्ध' हैं। सामाजिक सम्बन्धों के अध्ययन के लिए ही समाजशास्त्र का जन्म और विकास हुआ है। इस विचार को आधार प्रदान करने में मैकाइवर और पेज का नाम प्रमुख है। क्यूबर तथा वान विज भी इसी मत के समर्थक

विद्वान है।

(3) समाजशास्त्र समूहों का अध्ययन है (Sociology is the study of Groups) कुच्छ समाजशास्त्रियों का यह विचार है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्य की सामाजिकता उसे समूहों के निर्माण की प्रेरणा देती है। समाजशास्त्र के अन्तर्गत इन्हीं समूहों का अध्ययन किया जाना चाहिए। जो विद्वान इस मत का समर्थन करते हैं, उनमें जानसन तथा किम्बाल यंग प्रमुख है।

(4) समाजशास्त्र सामाजिक अन्तः क्रियाओं का अध्ययन है (Sociology is the study of Social Interactions) कुछ समाजशास्त्री समाजशास्त्र को सामाजिक अन्तः क्रियाओं तथा प्रक्रियाओं का अध्ययन मानते हैं। उनका विचार है कि सामाजिक सम्बन्धों के निर्माण में सामाजिक अन्तःक्रियाओं तथा प्रक्रियाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, अतः समाजशास्त्र को सामाजिक अन्तःक्रियाओं तथा प्रक्रियाओं का अध्ययन करना चाहिए। मैक्स वेबर तथा जार्ज सिमेल जैसे समाजशास्त्री इस विचार के समर्थक हैं। गिलिन और गिलिन, गिन्सबर्ग एवं जानसन जैसे समाजशास्त्री भी इसी मत के समर्थक विद्वान है।

2.6 समाजशास्त्र की परिभाषाएँ(Definitions of Sociology)

समाज का क्रमबद्ध और संगठित अध्ययन समाजशास्त्र के अन्तर्गत किया जाता

है। समाजशास्त्र की समाज वैज्ञानिकों ने जो परिभाषाएँ दी हैं, वे निम्न प्रकार है-

(1) ऑगस्त कॉम्टे "समाजशास्त्र सामाजिक व्यवस्था और प्रगति का विज्ञान है।" इस परिभाषा में कॉम्टे ने समाजशास्त्र की दो विशेषताएँ बताकर उसके अध्ययन क्षेत्र को सीमाओं से बाँधने का प्रयास किया है। ये

दो तृत्व या विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

(a) सामाजिक व्यवस्था (Social Order), तथा (b) सामाजिक प्रगति (Social Progress) । कॉम्टे ने समाजशास्त्र को निम्न दो भागों में विभाजित किया है -

(i) सामाजिक स्थितिशास्त्र (Social Statics), और (ii) सामाजिक गतिशास्त्र (Social Dynamics) ।

सामाजिक स्थितिशास्त्र के अन्तर्गत सामाजिक व्यवस्था का अध्ययन और सामाजिक गतिशास्त्र के अन्तर्गत सामाजिक प्रगति का अध्ययन किया जाता है। यदि हम सूक्ष्मता से समाज का अवलोकन करें तो इसके दो पहलू स्पष्ट रूप से प्रतीत होते हैं-संरचनात्मक पहलू (Structural Aspect) और कार्यात्मक पहलू (Functional Aspect)। संरचनात्मक पहलू में समाज का जो वर्तमान स्वरूप है, उसका अध्ययन किया जाता है। इसके अन्तर्गत विभिन्न समूह, संगठन और संस्थाएँ आती हैं। कार्यात्मक पहलू के अन्तर्गत इन्हीं समूहों, संगठनों और संस्थाओं की कार्य-पद्धतियों का अध्ययन किया जाता है, क्योंकि समाज निरन्तर परिवर्तित होता रहता है। **ऑगस्त कॉम्टे** ने समाजशास्त्र की निम्न विशेषताओं का निर्धारण किया है -

(i) समाज एक सावयव है। इस सावयव के दो भाग है-बाहरी और आन्तरिक। समाजशास्त्र मानव की वह शाखा है जो समाज का एक समग्रता के रूप में अध्ययन करता है।

(ii) समाजशास्व समाज के अध्ययन से सम्बन्धित है।

(iii) इसके अन्तर्गत मानव प्रकृति का अध्ययन किया जाता है। काम्टे ने नैतिकता को समाज की सर्वोच्च प्रगति के रूप में स्वीकार किया है।

(iv) कॉम्टे ने समाजशास्त्र को वैषयिक (Objective), विज्ञान माना है। इसके

माध्यम से वह साकारवाद की प्रतिस्थापना करना चाहता था।

(v) कॉम्टे का समाजशास्व ज्ञान की वह शाखा है, जिसमें विज्ञानों का समन्वय किया गया है। कॉम्टे

ने विज्ञानों को छत्भागों में विभाजित किया है। साथ ही उसने यह भी स्पष्ट किया है कि प्रत्येक विज्ञान अपने

से पहले वाले विज्ञान पर आश्रित है और दूसरे विज्ञान के लिए आधार है।

(vi) कॉम्टे ने स्वीकार किया है कि समाजशास्त्र ज्ञान की वह शाखा है, जिसमें भविष्यवाणी करने की क्षमता है। इसके लिए कॉम्टे ने समाशास्त्र में निम्न दो तत्वों को सम्मिलित करने का सुझाव दिया था -

(a) अवलोकन (Observation), और (b) वर्गीकरण (Classification) ।

यदि सामाजिक जीवन और सामाजिक घटनाओं का सावधानीपूर्वक अध्ययन किया जाए और इससे प्राप्त तथ्यों का वर्गीकरण समानता और भिन्नता के आधार पर किया जाए, तो सामाजिक जीवन और घटनाओं के सम्बन्ध में सरलता से सत्य की भविष्यवाणी की जा सकती है।

(vii) समाजशास्त्र वह विज्ञान है जिसके माध्यम से सामाजिक पुनर्निर्माण किया जा सकता है। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर उसने सामाजिक पुनर्निर्माण की योजना बनाई थी। साथ ही उसने समाज-वैज्ञानिक को सामाजिक पुनर्निर्माण का सबसे महत्वपूर्ण पद और कार्य सौंपा था।

(2) **मैक्स वेबर-** "समाजशास्त्र वह विज्ञान है जो कि सामाजिक क्रिया का उद्देश्यपूर्ण (व्याख्यात्मक) बोध कराने का प्रयत्न करता है; जिससे कि सामाजिक क्रिया की गतिविधि तथा परिणामों की कारण सहित व्याख्या प्रस्तुत की जा सके।"

मैक्स वेबर के समाजशास्त्र की जब हम व्याख्या करते हैं तो इसमें निम्न विशेषताएँ पाई जाती है:

(a) समाजशास्त्र मानव ज्ञान की वह शाखा है, जिसमें 'सामाजिक क्रियाओं' (Social Actions) का

अध्ययन किया जाता है।

(b) सामाजिक क्रिया के व्याख्यात्मक ज्ञान की जानकारी प्राप्त की जाती है, तथा

(c) सामाजिक क्रिया के कारणों और परिणामों के सम्बन्ध में जानकारी दी जाती है।

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि समाजशास्त्र मात्र सामाजिक क्रियाओं का ही अध्ययन करता है। इसके अन्तर्गत अन्य अनेक प्रकार की क्रियाओं का अध्ययन भी किया जाता है। वेबर का विचार था कि ऐसा करने से समाजविज्ञान को सरलता से विज्ञान की ओर उन्मुख किया जा सकेगा। वेबर ने सामाजिक क्रिया को अर्थपूर्ण कहा है। उसके द्वारा 'अर्थपूर्ण' कहना निम्न दो कारणों पर आधारित है -

(i) समाजशास्त्र का सम्बन्ध उन्हीं क्रियाओं से है जो अर्थपूर्ण होती है, और

(ii) साथ ही सामाजिक क्रिया की व्याख्या तार्किक आधार पर की जाती है।

(3) मैकाइवर और पेज- "समाजशास्त्र सामाजिक सम्बन्धों के विषय में है। इन सम्बन्धों के जाल को हम समाज कहते हैं।"

मैकाइवर और पेज ने समाजशास्त्र की जो परिभाषा दी है उसमें निम्न तत्व सम्मिलित हैं-

(a) समाजशास्त्र में सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है,

(b) इन सम्बन्धों का अस्तित्व समाज में एक 'जाल' की भाँति है, अर्थात जाल की भाँति सामाजिक सम्बन्ध एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं,

(c) जाल द्वारा समाज के सभी संगठन, संस्थाएँ और समूह अन्तः सम्बन्धित होते हैं,

(d) मैकाइवर ने सामाजिक सम्बन्धों के इसी जाल को समाज की संज्ञा दी है, और

(e) समाजशास्त्र इसी 'जाल' के अध्ययन से सम्बन्धित है।

(4) मौरिस गिन्सबर्ग- "समाजशास्त्र मानवीय अन्तःक्रियाओं, अन्तःसम्बन्धों,

उनकी अवस्थाओं एवं परिणामों का अध्ययन है।"

मौरिस गिन्सबर्ग की समाजशास्व की परिभाषा के प्रमुख तत्व निम्न हैं-

(a) समाजशास्त्र का सम्बन्ध मानव जीवन से है,

(b) इसमें मानव जीवन से सम्बन्धित निम्न तत्वों का अध्ययन किया जाता है-

(i) समाजशास्त्र मानव की अन्तःक्रियाओं एवं अन्तः सम्बन्धों का अध्ययन करता है।

(ii) समाजशास्व उन अवस्थाओं का अध्ययन करता है जिनमें ये अन्तः क्रियाएँ व अन्तः सम्बन्ध उत्पन्न

होते हैं।

(iii) समाजशास्त्र इस प्रकार से उत्पन्न अन्तःक्रियाओं एवं अन्तः सम्बन्धों के परिणाम का अध्ययन भी करता है।

(5) एच. एम. जॉनसन- "समाजशास्त्र वह विज्ञान है जो सामाजिक समूहों का अध्ययन करता है, साथ ही उनके आन्तरिक स्वरूपों व संगठन के प्रकारों का भी अध्ययन करता है एवं इन स्वरूपों में होने वाले परिवर्तनों की क्रियाओं और समूहों के बीच पाये जाने वाले सम्बन्धों का भी अध्ययन करता है।"

जॉनसन द्वारा दी गई समाजशास्त्र की परिभाषा के प्रमुख तत्व निम्न हैं

(a) समाजशास्त्र का अध्ययन-क्षेत्र सामाजिक समूह है।

(b) समाजशास्त्र में सामाजिक समूहों के निम्न दो तत्वों का अध्ययन किया जाता है-

(i) समूहों के आन्तरिक स्वरूपों का अध्ययन, और

(ii) समूहों के संगठन के प्रकारों का अध्ययन।

(c) समाजशास्त्र में उन प्रक्रियाओं का भी अध्ययन किया जाता है, जिनके द्वारा समूहों का निर्माण होता है

तथा उनमें परिवर्तन होता है।

(d) समाजशास्त्र सामाजिक समूहों से सम्बन्धित निम्न दो प्रकार के अध्ययन से

सम्बन्धित है -

(i) समूहों के आन्तरिक सम्बन्ध, और

(ii) समूहों के पारस्परिक सम्बन्ध ।

समाजशास्त्र की उपर्युक्त परिभाषाओं के अतिरिक्त अन्य अनेक समाजशास्त्रियों ने समाजशास्त्र की परिभाषा दी है, इन परिभाषाओं में समाजशास्व की धारणा अधिक स्पष्ट हो जाती है। समाजशास्त्र की कुच्छ अन्य प्रमुख परिभाषाएँ निम्नांकित हैं-

(6) दुर्खीम -"समाजशास्त्र सामूहिक प्रतिनिधित्व का विज्ञान है।"

(7) एफ. एच. गिडिंग्स- "समाजशास्त्र समग्र रूप से समाज का क्रमबद्ध अध्ययन और विवेचना

(8) एल. एफ. वार्ड- "समाजशास्त्र समाज का विज्ञान है।"

(9) ई.ए. रॉस- "समाजशास्व सामाजिक घटनाओं का विज्ञान है।"

(10) किम्बाल यंग- "समाजशास्त्र समूह में मानव व्यवहारों का अध्ययन है।"

(11) गिलिन और गिलिन- समाजशास्त्र उन अन्तः क्रियाओं का अध्ययन है, जो जीवित प्राणियों के सम्बन्धों से उत्पन्न होती हैं।

(12) एच.पी. फेयरचाइल्ड- "समाजशास्त्र मानव के सामूहिक सम्बन्धों से उत्पन्न घटनाओं का वैज्ञानिक अध्ययन है। यह मनुष्यों तथा उनके एक-दूसरे से सम्बन्धों में व्याप्त मानवीय वातावरण का अध्ययन है।"

(13) पित्रिम ए.सोरोकिन- "समाजशास्त्र प्रथम तो सामाजिक घटनाओं के विभिन्न स्वरूपों के सम्बन्धों व पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन है; (धार्मिक व आर्थिक वर्गों, परिवार व नैतिकता, न्यायिक व आर्थिक घटनाओं, गतिशीलता व राजनीति आदि विभिन्न सामाजिक घटनाओं व वर्गों के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन है), द्वितीय सामाजिक व असामाजिक (भौगोलिक व प्राणिशास्त्रीय आदि) घटनाओं के सम्बन्धों व पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन है; तथा तृतीय रूप में समस्त प्रकार की सामाजिक घटनाओं के सामान्य लक्षणों का अध्ययन है।

(14) एल.टी. हॉबहाउस- "समाजशास्त्र की विषय-वस्तु मानव मस्तिष्क की

व्याख्या करना है।"

(15) बर्गेस- "यह सामूहिक व्यवहार का विज्ञान है।"

(16) ई.सी. खूंटर- "इसका उद्देश्य सिद्धान्तों के एक ऐसे समाज की स्थापना करना है, एक ऐसे उद्देश्यपूर्ण ज्ञान के कोष का निर्माण करना है, जो सामाजिक व मानवीय वास्तविकताओं के निर्देश व नियन्त्रण को सम्भव बना सके।"

(17) ई.डब्ल्यू.ब्लेकमार तथा जे. एल. गिलिन- "समाजशास्त्र मानव के संयुक्तिकरण से उत्पन्न सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करता है। इसके अध्ययन में समाज का वर्गीकृत ज्ञान, कई सिद्धान्त व नियम सम्मिलित हैं। यह नियन्त्रण के विधानों, क्रियाओं के नियमों का निर्माण करता है तथा सामाजिक शक्तियों की खोज करता है व उनके कारणों व प्रभावों का अनुसन्धान करता है।"

(18) ए.डब्ल्यू. ग्रीन- "समाजशास्व मानव का उसके समस्त सामाजिक सम्बन्धों में समन्वित और सामान्यीकरण करने वाला विज्ञान है।"

(19) जोसफ एच. फिचर -"समाजशास्त्र मानव के सहयोगी एवं आदर्श व्यवहारों का अध्ययन है।"

(20) वान विज- "समाजशास्त्र एक विशेष सामाजिक विज्ञान है, जो अन्तर-मानवीय व्यवहारों,

सामाजिक सहयोग की प्रक्रियाओं, एकीकरण व पृथक्करण की प्रक्रियाओं पर केन्द्रित है।"

(21) टॉनीज- "सामान्य समाजशास्त्र सम्पूर्ण रूप से मानव के साथ साथ रहने का सिद्धान्त है।"

(22) ओडम-"समाजशास्त्र वह विज्ञान है, जो समाज का अध्ययन करता है।"

(23) एबल करता है अथवा उनसे "समाजशास्त्र सामाजिक सम्बन्धों, उनके प्रकारों, स्वरूपों तथा जो कोई उन्हें प्रभावित प्रभावित होता है, उनका वैज्ञानिक अध्ययन है।"

(24) मेरिल "समाजशास्त्र मानवीय सम्बन्धों का विज्ञान है।"

(25) हिलर "व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन, एक-दूसरे के प्रति उनका व्यवहार, उनके मापदण्डों, जिनसे वे अपने व्यवहार को नियंत्रित करते हैं, समाजशास्त्र के विषय के अन्तर्गत आते हैं।"

(26) जार्ज सिमेल "समाजशास्त्र मनुष्य के अन्तः सम्बन्धों के स्वरूपों का विज्ञान है।"

(27) ऑगबर्न और निमकॉफ "समाजशास्त्र का उद्देश्य मानव के सामाजिक जीवन तथा उसकी संस्कृति, पर्यावरण, वंश-परंपरा और समूह के साथ स्थापित सम्बन्धों का अध्ययन है।"

(28) बोगार्डस "समाजशास्त्र उन मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन है, जो सामाजिक वर्गों द्वारा समूहों में व्यक्तित्व को विकसित एवं परिपक्व करने का कार्य करती हैं।"

(29) ग्रेगरी और बिडगुड "समाजशास्त्र वह विज्ञान है, जिसमें सामाजिक प्रक्रिया तथा उसके मुख्य परिणामों, संस्कृति और व्यक्तित्व का अध्ययन किया जाता है।"

(30) ई.ए. रॉस के शब्दों में, "समाजशास्व सामाजिक घटनाओं का शास्व है।

वास्तव में, यह विषय इतना विस्तृत है कि इसे परिभाषाओं की सीमा में बाँधा जा सकना सम्भव नहीं है। इसके अन्तर्गत जितने विषयों को सम्मिलित किया गया है, संभवतः उससे भी अधिक ऐसे विषय है जिन्हें अभी तक छुआ भी नहीं गया है। ऐसी आशा की जाती है कि निकट भविष्य में ही विद्वान अपनी निरन्तर चलती रहने वाली खोजों के माध्यम से अपने क्षेत्र में उस ज्ञान को भी सम्मिलित कर लेंगे।

स्व प्रगति प्रश्न

1. भारत के प्रथम समाजशास्वी है-

(अ) जी. एस. घुरिये (ब) पैट्रिक ग्रिड्स

(स) डी. एन. मजूमदार (द) के एस. कपाडिया

2. भारतीय विश्वविद्यालयों में सर्वप्रथम किस सन् में समाजशास्त्र का अध्यापन आरम्भ हुआ था-

(अ) सन् 1819 में (ब) सन् 1925 में (स) सन् 1895 में (द) सन् 1919 में

3. 'Caste, Class and Occupation' पुस्तक के लेखक है-

(अ) डॉ. जी. एस. घुरिये (ब) के एम. कपाडिया (स) डी. पी. मुकर्जी (द) मैकाइवर एवं पेज

2.7 सारांश

समाजशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है जो समाज, सामाजिक संरचना, समूहों, संस्थानों, और उनके आपसी संबंधों का अध्ययन करता है। यह मानव व्यवहार, सांस्कृतिक पैटर्न, और समाज के विभिन्न पहलुओं को समझने के लिए उपयोगी होता है।यह अध्याय समाज को समझने के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करता है और समाज में हो रहे बदलावों को प्रभावी ढंग से समझने की दिशा में मार्गदर्शन करता है।

2.8 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर- 1 (ब), 2. (द), 3. (ब)

2.9 मुख्य शब्द

1. समाज (Society):

व्यक्तियों और समूहों का ऐसा संगठित तंत्र जिसमें वे आपसी संबंधों, नियमों, और सांस्कृतिक मूल्यों के माध्यम से परस्पर जुड़े होते हैं।

2. संरचना (Structure):समाज के विभिन्न तत्वों जैसे परिवार, धर्म, अर्थव्यवस्था आदि का संगठन और उनका कार्य।

3. संस्थान (Institution):समाज में स्थापित परंपरागत और औपचारिक व्यवस्था, जैसे शिक्षा प्रणाली, विवाह, या कानूनी व्यवस्था।

4. सामाजिक संबंध (Social Relationship):दो या अधिक व्यक्तियों के बीच स्थापित परस्पर संपर्क और उनके व्यवहार की प्रक्रिया।

5. सामाजिक प्रक्रिया (Social Process):वे क्रियाएं और प्रक्रियाएं जिनसे समाज का निर्माण, बदलाव और विकास होता है, जैसे सहयोग, प्रतिस्पर्धा, संघर्ष।

6. सांस्कृतिक पैटर्न (Cultural Patterns):समाज में प्रचलित व्यवहार, परंपराएं, और मान्यताओं का समुच्चय।

7. सामाजिक नियंत्रण (Social Control):समाज द्वारा अपने सदस्यों के व्यवहार को नियमित और अनुशासित करने के लिए अपनाए गए नियम, कानून, और परंपराएं।

8. सामाजिककरण (Socialization):वह प्रक्रिया जिसके द्वारा व्यक्ति समाज की संस्कृति, परंपराओं, और मूल्यों को सीखता और अपनाता है।

9. सामाजिक तथ्य (Social Fact):एमिल दुर्खीम द्वारा दिया गया विचार, जो कहता है कि समाज में मौजूद हर नियम, परंपरा, या मान्यता एक बाहरी शक्ति के रूप में व्यक्ति पर प्रभाव डालती है।

10. सामाजिक संरचना (Social Structure):समाज में मौजूद विभिन्न समूहों, भूमिकाओं, और संस्थानों का संगठनात्मक ढांचा।

2.10 संदर्भ ग्रंथ

- आचार्य, श. (2018). *भारतीय समाज और अर्थव्यवस्था.* नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
- शर्मा, र. के. (2020). *आधुनिक समाजशास्त्र के सिद्धांत.* वाराणसी: हिंदुस्तान पब्लिकेशन।

- वर्मा, ए. (2021). *समाजशास्त्र और इसकी उपयोगिता.* जयपुर: साहित्य सदन।
- चौधरी, एस. (2019). *भारत में सामाजिक परिवर्तन के आयाम.* पटना: पुस्तक भवन।
- मिश्रा, डी. (2023). *समाज और संरचना का अध्ययन.* भोपाल: प्रकाशन संस्थान।

2.11 अभ्यास प्रश्न

1. समाजशास्त्र की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।

Clearify the concept of sociology.

2. समाजशास्त्र समाज का विज्ञान है। समझाइए।

Sociology is the science of society. Explain.

3. समाजशास्त्र का अर्थ और परिभाषाएँ लिखिए।

Write meaning and definitions of sociology.

4. "समाजशास्त्र सामाजिक सम्बन्धों के विभिन्न स्वरूपों का अध्ययन करता है।" इस कथन को समझाइए। समाजशास्त्र बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर-1 "Sociology is the study of different forms of social relations." Discuss this statement.

5. समाजशास्त्र की ऑगस्त कॉम्टे और मैक्स वेबर की परिभाषाओं की विवेचना कीजिए। Discuss the definitions of Auguste Comte and Max Weber.

लघुउत्तरीय प्रश्न (short Answer type Question) 01008 BIT

1. समाजशास्त्र के विकास की प्रथम अवस्था 100 शब्दों में समझाइये ।

2. उन्नीसवीं शताब्दी के चार ऐसे प्रमुख समाजशास्त्रियों के नाम लिखिए जिनका समाजशास्त्र के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा।

3. समाजशास्त्र के विकास से संबंधित बीसवीं शताब्दी के पाँच प्रमुख समाजशास्त्रियों के नाम लिखिए।

4. भारत में समाजशास्त्र के अध्ययन एवं अध्यापन को 150 शब्दों में स्पष्ट करो।

5. स्वतंत्रता से पूर्व भारत में समाजशास्त्र के विकास को समझाइए ।

6. भारत में समाजशास्त्र के विकास में समाजशास्त्री शोध संस्थानों के नाम लिखिए।

7. भारत में समाजशास्त्र के विकास में समाजशास्त्री जी.एस. घुरिये के योगदान समझाइये ।

इकाई - 3

समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य [THE SOCIOLOGICAL PERSPECTIVE]

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 समाजशास्त्रीय संदर्शः किताबी समझ और क्षेत्र-दृष्टि

3.4 समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य; अन्तर्राष्ट्रीयता बनाम स्थानीय, देशीकरण

3.5 सामाजिक विज्ञानों का एकीकरण

3.6 परिप्रेक्ष्य तय करता है कि हमारी क्रियायें समुचित सामाजिक हैं -

3.7 सारांश

3.8 मुख्य शब्द

3.9 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

3.10 संदर्भ ग्रन्थ

3.11 अभ्यास प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

आज हम जिस तेज रफ्तार में जीवन जी रहे हैं, उससे समाजशास्त्र अछूता नहीं है। बदलते परिदृश्य की हर गतिविधियाँ समाजशास्त्री के सोच, समाज के विषय में तार्किक व्याख्यायें और वाख्या के क्षेत्र के साथ, अनेक समीपी घटनाओं और अनुशासनों से आमना-सामना है। इक्कीसवीं सदी में अध्ययन किया जाने वाला समाजशास्त्र बीसवीं सदी से आगे के परिप्रेक्ष्य में समझा जायेगा। इसे हम 'नयी सदी का समाजशास्त्र' कहें या नई सदी के लिये समाजशास्व, नवीनता, निरन्तरता का भविष्यगामी दृष्टिकोण समाहित है।

समाजशास्वीय अवधारणाओं के डेढ़-दो सौ वर्ष के इतिहास से हम परिप्रेक्ष्यगत सूत्रीकरण कर सकते है। पश्चिम के बौद्धिक नवजागरण, फ्रॉस की राज्य क्रांति

और इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति इसके बौद्धिक निर्माण की प्रमुख पृष्ठभूमि रही। समाजशास्त्र के विधिवत अध्ययन की परम्परा नवीन है, परन्तु इससे पूर्व समाज को समझने की चेष्टा धार्मिक तात्विक, दार्शनिक (Philosphical) तरीके से की जाती रही। कहा जाता है कि वर्तमान समाजशास्त्र है और अतीत इतिहास। इसी तरह मानव चिंतन की निरन्तरता से 'समाज' को जानने का जो दृष्टिकोण बना वह 'समाजविज्ञान' माना जा सकता है। किसी विषय के वैज्ञानिक स्तर का प्रमाण उसमें सिद्धान्त और तथ्यों के क्रमानुगत विश्लेषण का है, जो समाजशास्त्र अनुशासन के तौर पर प्राप्त कर पाया है। आज उत्तर-आधुनिकता का बोलबाला है, तो यह सिद्धान्त विखंडन और नवीन संभावनाओं से आगे बढ़ेगा। ज्ञान की सभी विधाओं के अपने परिप्रेक्ष्य और आग्रह होते हैं, समाजशास्त्र जैसा कि एंथोनी गिडेन्स कहते हैं समाजशास्त्र की कोई व्याख्या अपने आपको वैयक्तिक और सामाजिक सम्बन्धों से परे नहीं रख सकती है। उनकी दृष्टि में समाजशास्त्र की बहुत बड़ी थीम (Theme) आज की 'परिवर्तनशील दुनिया' है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकेंगे।
2. विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकेंगे।
3. सामाजिक और आर्थिक समानता स्थापित करने के उपायों को पहचान सकेंगे।
4. भारतीय अर्थव्यवस्था में रोजगार सृजन की प्रक्रिया का विश्लेषण कर सकेंगे।
5. वैश्विक प्रतिस्पर्धा में वृद्धि के लिए रणनीतियों को समझ सकेंगे।

3.3 समाजशास्त्रीय संदर्शः किताबी समझ और क्षेत्र-दृष्टि

समाज के बारे में 'समझ' का विस्तार इन दो विभ्रम (डिलैया) में रहा है। कितावी समझ से मैदानी समझ का सामना होने पर नये तथ्य जो उभरते हैं वे सामान्य या आम आदमी की अभिमति से हटकर होते हैं। समाज विज्ञान का शोध किसी गाँव में जो रहकर जान पाता है वह किताबों से भिन्न सर्वथा नया भी हो सकता है। जाति व्यवस्था को तीस-चालीस के बदलाव को केवल शास्त्रीय दृष्टि से नहीं भेदा जा सकता है, फलस्वरूप जाति के समाजशास्त्री दृष्टिकोण में मैदानी अनुभव प्रभावी है। समाजशास्त्र के भारत में पढ़ाये जाने के पचास दशक दौर में प्रशिक्षित मानव वैज्ञानिकों के अध्ययनों ने ग्रामीण भारत और जाति के यथार्थता पर मैदानी तथ्य (Field Facts) से रोशनी डाली, जिससे 'परिप्रेक्ष्य' और सामान्य समझ भी बदलती गयी।

क्षेत्रीय संदर्शों (Regional perspective) के लोकप्रिय होने के पीछे स्थानीय पहचान और अध्ययन समाज के साथ पारिवारिकता है। समाजशास्त्री पैदा हुआ, जिस समाज में अध्ययन करने उसी समाज को चुनता है। आन्द्रे बेतेई का कहना है कि सामान्य समझ का निर्माण इससे यथावत होता रहता है। स्थान विशेष के बारे में किताबी समझ और क्षेत्र-दृष्टिकोण का अन्तर देखने हेतु, सामान्य बोध की भूमिका मूल्य-निर्णय (Value Judgement) के प्रभाव में होती है।

समाजशास्त्रीय संदर्श = सामाजिक सम्बन्ध + संस्थाओं का अध्ययन अंततः सम्पूर्ण समाज का अध्ययन

समाज विज्ञान के दार्शनिक स्रोतों का महत्व सर्वप्रमुख है। हम आर्थिक क्रिया, बाजारवाद, स्टाक मार्केट या किसी वेतनभोगी समूह की आन्तरिक आमदनी, उपयोग, बचत, प्रतिमान को समाजशास्त्रीय नजरिये से देखें, इस दिशा में आर्थिक समाजशास्त्र पढ़ेंगे। दूसरा उदाहरण संस्कृति का लें। नये विचारक संस्कृति और भूमण्डलीकरण का विश्लेषण कर रहे हैं। मूल तथ्य समाज के सामाजिक सम्बन्धों का है जिसे संस्थाओं के अध्ययन से जोड़ दें तो अन्ततः सम्पूर्ण समाज का अध्ययन करेंगे। आज विज्ञान अपने 'दर्शन' के प्रति सचेत है। अच्छा उदाहरण वृक्ष में जंगल देखने का है। पर्यावरणवादी का नजरिया

अलग है, आंदोलनकर्ता, एन.जी.ओ. कार्यकर्ता का नजरिया अलग और समाजशास्त्री इस जंगल में बसे किसी आदिम कबीले के हालात पर सीधे सम्बोधित होता है। हमारे आज के समय में नजरिये या संदर्शों (Sociological perspectives) के विभिन्न आयाम हैं। सामाजिक विज्ञानों की कई नयी विधायें आयी हैं। जैसे जेण्डर स्टडीज, डिसकोर्स एण्ड सोसाइटी सोशल इकोलॉजी आदि जैसे सोशियालाजिकल अबेस्ट्रेक्ट (Sociological Abstract) पत्रिका की विभाजन योजना में नये पचासों उप-क्षेत्र (Sub-area of research) इसमें एक समाजशास्त्र का भी समाजशास्त्र (sociology of sociology) का भी खण्ड होता है।

नजरिया स्पष्ट करना इस दिशा में आवश्यक है कि कितना और किसके अध्ययन सामरती संयोजित की जायें। यह धारणा बनती है कि समाजशास्त्रीय संदर्श-निर्माण वृहद एवं जटिल समाजों की ओर उन्मुख है। भविष्य में समाजशास्त्र के विद्यार्थी जो पढेंगे वह इसी प्रकार के जटिल एवं तकनीक प्रधान समाज की जानकारी का होगा। आज भी नजरिया सकलवादी (Holistic) है। मानवीय सम्बन्धों का सार-भाग (core) इनका सामाजिकता (Social Relations) चाहे यह अन्तर सामुदायिकता के हों या लघु और बड़े समूहों के बीच।

3.4 समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य ;अन्तर्राष्ट्रीयता बनाम स्थानीय, देशीकरण

समाजशास्त्र का विद्यार्थी उपलब्ध साहित्य का दायरा अपने नागरिकता के देश की सीमा तक ही पढ़ पाता है। भारतीय विद्यार्थी का ध्यान भारत के धर्म पर अधिक होता है, जबकि हम इसी दौरान इंडोनेशिया में धर्म या जापान में धर्म की जानकारी से उसे 'विज्ञ' नहीं करा पाते। समाज चाहे जिस कोने का हो, हमें उस तक तथ्यात्मक तरीके से जानना होगा। वर्तमान समाजशास्त्रीय पाठ्यक्रम अन्तर्राष्ट्रीयता (Universal Syllabus) से युक्त नहीं है। यह एक चुनौती अभ्यासरत (प्रोफेशनल) समाजशास्त्री के समक्ष है। नये समाजशास्त्र में अध्ययन

सामग्री बहुविधात्मक है। अभिजन उन्मुख (Elite Oriented) समाजशास्त्र और नीचे से आया हुआ सबआल्टर्न समाजशास्त्र (subaltern) अपने विधात्मक विश्लेषण के कारण चर्चा में रहा है। इसी तरह बिखण्डन का दौर है। नये विचारक सामने हैं उनके द्वारा नया परिप्रेक्ष्य ग्रहण किया गया है। समाजशास्व में देरिदा (Darvida, France) के विखण्डनवाद, उत्तर आधुनिकता के कई प्रमुख सिद्धान्तकार (स्कारलेश, फेडरिक जेमसन, लेलेस्ली फिल्डर, एलेन तुरिन, (Alen Touriane) जैसे कई अन्य) हैं, इन्होंने परिप्रेक्ष्यगत विमर्श (Discourse) बताये हैं। भारत में समाजशास्त्र के ऊपर यह प्रवंचना या आलोचना का भार आया कि दलित नजरिया नहीं है। सब कुछ अध्ययन प्रारूप अभिजात वर्गीय दृष्टिकोण से लिखा- पढ़ा गया है। भारतीय समाज के वर्णन में शूद्रो का इतिहास या जाति संरचना, वर्ण व्यवस्था सभी विषय 'स्वर्ण इतिहास' के रूप में हैं।

परिप्रेक्ष्यगत तथ्य यह है कि अनुभव, ज्ञान व विरासत का सदैव स्थान विमर्श एवं किसी अनुशासन (Discourse and Displine) में है।

भूमण्डलीकरण ने 'बाजार' के संदर्भ में नया परिप्रेक्ष्य समाज विज्ञानों के समक्ष प्रस्तुत किया है। बाजार की चुनौती में सीधे विषय के माँग एवं पूर्ति पक्ष का अर्थशास्त्र रखा है, फलस्वरूप समाजशास्त्र के पिछड़ने का या इसके अर्थशास्त्र के पिछलग्गू होने की लाचारी मौजूद है। बाजारवाद का दबाव इतना है कि समाजशास्त्र की 'उपयोगिता' पर प्रश्नचिन्ह तक लोग लगाते हैं।

समाजशास्त्र के लिये विषय के रूप में राजनीति

परम्परात्मक रूप से राजनीति और समाजशास्व का सम्बन्ध, अनन्योधिता (Dependancy) रिश्ता देखा जाता है। राजनीति एक विषय के रूप में हमें शोध ग्रंथों के शीर्षकों की लम्बी श्रृंखला से प्राप्त हो सकता है। ग्रामीण नेतृत्व, वोट व्यवहार, पंचायत कार्य व राजनैतिक संस्कृति जैसे शीर्षक समाज विज्ञान के शोधों में अगुवा राजनीति शीर्षक हैं। सूचना- समाज (Information Society) में मीडिया, टी.वी, राजनीतिक घटनाओं का कवरेज अधिक दिखाता है।

वर्तमान राजनैतिक अध्ययन पीठों में सरकार, तुलनात्मक शासन, राजनैतिक दर्शन परम्परा से क्षेत्र में समाजशास्त्री सूक्ष्म तथ्यों को पृष्ठभूमि से समृद्ध कर

सकता है। इस क्षेत्र में अग्रणी लेखकों मार्टिन सेमौर लिप्सेट (Political Man: S.M. Lipset 1922...) है राजनीति के सामाजिक आधार (Social Basis of Politics 1960) ग्रंथ पठनीय है, इनका कहना है कि लोकतंत्र का अर्थ विशेष राजनैतिक संस्थायें एवं प्रक्रियाये मात्र नहीं हैं, अपितु यह एक सामाजिक प्रणाली भी है जिसकी दो शर्त मतैक्यता (Consensus) एवं मतभेद हैं। इसी तरह कौटिल्य रचित अर्थशास्त्र राजनैतिक कूटनीति (Diplomacy) के अध्ययन में उपयोगी ग्रंथ 300-400 ईसा पूर्व रचा जा चुका है। समाजशास्त्र से राजनीति विज्ञानी आधारभूत संदर्भ सामग्री पाते हैं। आज गैर राजनैतिक कोई समाज नहीं है और दूसरे सिरे से कहा जाता है समाजशास्त्र स्वयम् एक राजनैतिक कार्यवाई का पश्चिमी प्रायोजन है। (Sociology is a western Political Project) साम्प्रदायिकता धर्मनिरपेक्षता, आरक्षण जैसे ताजातरीन विषय तो राजनीति और समाजशास्त्र की सीमा से परे अन्तर निर्भर क्षेत्र हैं। बी. एस्नातक कक्षाओं में राजनीति का शिक्षण सामान्य समाजशास्त्री के साथ पढ़ाया जाता है- वैकल्पिक विषय के रूप में।

समाजशास्त्र के लिये विषय के रूप में अर्थशास्त्र(Economics as a Subject for Sociology)

आर्थिक समाजशास्त्र (Economic Sociology) एक प्रशाखा के रूप में स्थापित हुआ है। वर्तमान दशक में बाजारवाद की उपस्थिति ने नये आर्थिक क्रियाकलापों के नये सामाजिक कारण लक्षित किये जो सूचना समाज की उत्तर पूँजीवादी, उत्तर-आधुनिक दशाओं में यथेष्ट महत्व के हैं। आर्थिक क्रियाओं के सामाजिक संदर्भ होते हैं। वृहद् संगठनों, औपचारिक संस्थाओं में बृहताकार घटनायें पैदा होती हैं। मानव आबादी का अरबों अंश अभाव ग्रस्तता और बेसहारा होकर पूँजी के खेल में पिछड़ा, उपेक्षित है। इस समस्याग्रस्त भाग के भाग्योदय में समाजशास्व बहुत कुछ करने में जुटा हुआ है। राजनैतिक अर्थव्यवस्था (Political Economy) का अध्ययन करने वाले शीर्षस्थ अर्थशास्त्री विकास के समाजशास्त्र (Sociology of Development) में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं। कार्ल मार्क्स, मैक्स वेबर, विल्फेड पेरैटो आदि के प्रारंभिक लेखन का मूल क्षेत्र अर्थशास्त्रीय था। आज असमानता, वर्ग स्तरीकरण आय- वितरण, गरीबी आदि पर दोनों विषयों में समान रुचि से अपने विषय पद्धति से शोध होता रहता है।

अर्थशास्त्री जहाँ समाज में आप वितरण, उपभोग, खपत आदि पर ध्यान देते हैं। इस क्षेत्र में समाजशास्त्री व्यवसायों के पदक्रम पर ध्यान देता है। दोनों क्रमशः 'श्रम विभाजन' के ऊपर केन्द्रित होते हैं। वर्तमान आर्थिक उदारीकरण के दौर में आर्थिक विषय समाजशास्त्रियों के लिये अछूते नहीं रह गये हैं। अन्तर अनुशासनिक उपागम (Interdisciplinary approach) का प्रयोग सामान्य है। अध्ययन विधि के अपने विशिष्ट मार्ग होने के बावजूद अर्थशास्त्र का ज्ञान समाजशास्वी को भरपूर होना चाहिए और अच्छे अर्थशास्त्री को समाजशास्त्र का यथेष्ठ ज्ञान हो जैसे हम समाजशास्त्र के प्रारंभिक स्थापकों को पाते

है।

विद्वानों ने आर्थिक क्रियायों के निर्धारण में सामाजिक संगठन की भूमि ईंगित की है। माँग और पूर्ति के लोच की वक्र रेखायें अप्रत्यक्षतः किसी समाजोपयोगी वस्तु के प्रति बढ़ी माँग और पूर्ति के संकुचन या फैलाव को सामाजिक कारणों सहित सम्बन्ध प्रगट करती हैं। हमारे नये संगठन आर्थिक कारणों से हैं। स्टाक मार्केट आज हर देश के अर्थव्यवस्था की धड़कन बन गया है। जनसंख्या का अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र दोनों तरह से चुनौतीपूर्ण अध्ययन क्षेत्र है। सामाजिक, विज्ञानों पर अतिशय गणितीयकरण (Mathematization of the Social Sciences) का दबाव कहा जाता है। इसमें अर्थशास्त्र की शाखा अर्थगणित (Economa- thics) बहुत उपयोगी ढंग से सामाजिक घटनाओं की गणितीय मॉडल पर व्याख्या कर सकती है।

मैक्स वेबर ने अर्थशास्त्र के निकट समाजशास्त्र को रखा, इनके सम्पूर्ण लेखन कार्य पर अर्थशास्त्र का प्रभाव है। औद्योगिक पूँजीवाद में प्रस्थिति समूह (status groups) की अवधारणा आर्थिक इतिहास (मध्य काल के वणिक संघों पर (पी.एच.डी. कार्य) जैसे उल्लेखनीय कार्य पठनीय है। विल्फ्रैंड परेटो (1848-1923) का योगदान आर्थिक समाजशास्त्रीय गिना जाता है। परेटो का मत है कि अर्थशास्त्र मानव क्रिया (व्यवहार) के केवल एक पक्ष की चर्चा करता है, तार्किक क्रियायें बुद्धिसंगत चयन से सम्बन्धित हैं। समाजशास्व में अतार्किक क्रियायों का भी विश्लेषण किया जाता है, जिनके द्वारा सामाजिक जीवन का अधिकांश भाग निर्मित होता है। परेटो इसे अवशिष्ट चालक (Residues) तथा भ्रान्त तर्क

(Derivatives) कहते हैं। परेटो कल्याण सम्बन्धी अर्थशास्त्र के क्षेत्र में प्रमुख विचारक थे। कार्ल मार्क्स के सम्पूर्ण लेखन-साहित्य का अध्ययन समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र दोनों में समान महत्व प्राप्त है।

समाजशास्त्र के लिये इतिहास का अध्ययन

ऐतिहासिक समाजशास्त्र (Historical sociology) को समाजशास्त्रीय एबसट्रक्ट (Sociological Abstruct) में वर्गीकृत कर लिया गया है। समाज का अतीत जाने बिना भविष्यवाणी भविष्य की अधूरी होगी। परिभाषा अध्ययन पद्धति की दृष्टि से इतिहास के कई नये विश्लेषण हैं। भारतीय समाजविज्ञान में डी.डी. कोसाम्बी, विपनचन्द्र, रवीन्द्र कुमार, रोमिला थापर का लेखन स्वागत होता है। मार्क्सवादी इतिहासकारों ने दोनों विषय को बहुत करीब के आने में सफलता प्राप्त की। रणजीत गुहा द्वारा 'सवआल्टर्न स्टडीज' इतिहास की ग्रंथमाला (1-12 तक सीरीज प्रकाशित) समाजशास्त्रीय विषयों पर केन्द्रित है। मसलन सामाजिक आन्दोलन, कृषक क्रान्तियाँ, विद्रोह एवं उपनिवेशवाद, दलित व शूद्रों की सामाजिक हैसियत आदि अनेक विषयों पर गंभीर अध्येताओं के लेखन का प्रकाशन ई.एच. कार का कहना है जो कुछ विगत में घटा है वह सब इतिहास नहीं है इतिहास उन घटनाओं से जुड़ा होता है जो एक वृहत समुदाय को या समाज के बहुत बड़े भाग को प्रभावित करता है। वर्तमान के अयोध्या प्रकरण, गुजरात के दंगे जैसे चर्चित मुद्दे आने वाले इतिहास में चर्चा के भाग हो सकते हैं। इतिहास पढ़ाने के तरीके पर सर्वाधिक विवाद सामाजिक इतिहास को लेकर उठा करता है, भूमि, धर्म, अतिरिक्त पूँजी संचय और शोषण की, स्त्रियों की दशा आदि प्रश्नों पर इतिहास के अपने रास्ते बदलावपूर्ण हैं। (मार्क्सवादी इतिहास बनाम भाजपाई इतिहास का शक्तियाँ, प्रतिक्रियात्मक बौद्धिक जंग) हर समाज का भोगा हुआ यथार्थ अधिक तटस्थ रूप से हमारे सामने इतिहास रखता है, वर्णनात्मकता शैली प्रधान है इतिहास की, जबकि समाज शास्त्र तुलनात्मक और विश्लेषणात्मक इतिहास केन्द्र में राजाओं का व्यक्तित्व और कृतित्व है। समाजशास्त्री की रुचि उपलब्धियों और समाज के संदर्भ में इसके प्रभावों के होती है।

राबर्ट वीरस्टीड (Beirstedt) का कहना है कि "इतिहासकार दूसरे शब्दों में विचित्रता, विशेषता और व्यक्ति में दिलचस्पी रखता है, समाजशास्त्री नियमितता, व्यवहारिकता और समग्र में।"

3.5 सामाजिक विज्ञानों का एकीकरण

समस्त सामाजिक विज्ञान सामाजिक घटना में अपने विशिष्ट पहलू का अध्ययन करते हैं। सभी के बीच दृष्टिकोण की भिन्नता, पद्धति, मान्यता के स्तर पर यद्यपि है जैसे गरीबी का अध्ययन अर्थशास्त्री और समाजशास्त्री दोनों के लिये उपयुक्त है। समाजशास्त्री गरीबी और आत्महत्या की दर देखेगा, इस तरह गरीबी के प्रश्न पर कई दूसरे अनुशासन को भी अध्ययन हेतु चुनौती है। बौद्धिक अनुशासन (academic discipline) के तौर पर गरीबी के अध्ययन से सामाजिक विज्ञानों का एकजुट होना उपयोगी है। शोधकर्ता अनेक पक्षों की सूची बनाते समय 'एकीकरण' को स्थान देते हैं- जैसे संसाधन सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक होते हैं। इससे प्राप्त शक्ति के कार्य को देखना सामाजिक विज्ञानों के लिये विशिष्ट पक्ष जैसे हम देखें युवा समाजशास्त्री रेण्डाल कालिस (Randall Collins 1941....) संघर्ष का मूल कारण शक्ति के स्रोत को मानता है, जो व्यक्ति में निहित है, समूहो में भी निहित है, परन्तु अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन 'विषमता' (Inequality) की व्याख्या में इसे शायद ज्यादा महत्व नहीं देते, परन्तु विषमता के आर्थिक सूचकांक समाजशास्त्र के अध्येता के उपयोग के होंगे। इसका वृहद संदर्श निम्नवर्गीयजनों का समाज विज्ञान (Sociology of Subaltern) पठनीय है।

3.6 परिप्रेक्ष्य तय करता है कि हमारी क्रियायें समुचित सामाजिक हैं -

दिन- प्रतिदिन का समाजशास्त्र (Sociology of every day life) समाजशास्व का एक उपयोगी संदर्भ ग्रंथ है। यह हमारा मार्गदर्शन करती है, कि समाज के लिये अधिकांश कौन सी क्रियायें समुचित एकता (Conformity) बढ़ाती है, समाज के भीतर अधिकांश सृजनात्मक व्यवहार की वैधता तय करने का काम, सही परिप्रेक्ष्य देने का काम समाजशास्त्र का नवीन क्षेत्र है।

संक्षेप में हम कहेंगे कि इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र आदि सभी सामाजिक विज्ञानों का अपना विषय अनुरूप दृष्टिकोण, परिप्रेक्ष्य या संदर्श (Perspective) होता है, जो विकासमान है।

उस विषय की पहचान और ज्ञान के संसार में उपस्थिति भी 'संदर्शात्मक' (Perspectively developed) होगी। सामाजिक घटनायें अलग-अलग व्याख्या की माँग करती हैं- जैसे बहुचर्चित देवशाला सती काण्ड, गोधरा काण्ड, अयोध्या मस्जिद- मंदिर विवाद, भारत पाक सीमा के आतंकवाद या कश्मीर समस्या, नक्सलवाद को समझने का दृष्टिकोण वैचारिक आग्रहों के कारण अनेक विश्लेषण रूप (Analytical Frame Work) में पढ़ सकते हैं।

समाजशास्त्र के विद्यार्थी को विषय की शुरूआत में यह उपक्रम करना श्रेष्ठ है कि वह सामाजिक विज्ञानों के वृहद दृष्टिकोण (Grand/Macro Perspectives) को जाने। इतिहास के दर्शन (Philosophy of history) से लेकर व्यवस्था-विश्लेषण उपागम (System Analysis) तक उपयोग का है।

सभी के केन्द्र में मानव का सामाजिक व्यवहार है, अन्तर केवल इसके सार भाग को महत्व किसको दिया जाना है, यह पद्धति शास्त्रीय है जिसमें बल जिस पद्धति को (Sociological or Historical) दिया जायेगा, विश्लेषण और सामान्यीकरण में बल (emphasis) उसी ओर होगा।

स्वप्रगति परीक्षण

प्रश्न: 1. समाजशास्त्र का मुख्य उद्देश्य क्या है?

प्रश्न: 2. समाजशास्त्री परिप्रेक्ष का अर्थ क्या है?

प्रश्न:3.समाजशास्त्र के मुख्य दृष्टिकोण कौन-कौन से हैं?

3.7 सारांश

समाजशास्त्र परिप्रेक्ष वह दृष्टिकोण है जिसके माध्यम से समाज और मानव व्यवहार का विश्लेषण किया जाता है। यह समाज को उसके विविध पहलुओं जैसे संरचना, प्रक्रियाएं, संस्थान, और परिवर्तन के संदर्भ में समझने का एक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करता है।प्रमुख दृष्टिकोण:संरचनात्मक दृष्टिकोण

(Structural Perspective):समाज की संरचना और उसके घटकों जैसे परिवार, धर्म, और अर्थव्यवस्था का अध्ययन करता है।संघर्ष दृष्टिकोण (Conflict Perspective):समाज में वर्ग संघर्ष, शक्ति असंतुलन, और असमानताओं पर ध्यान केंद्रित करता है।प्रतीकात्मक अंतःक्रिया दृष्टिकोण (Symbolic Interactionism):व्यक्तिगत स्तर पर सामाजिक अंतःक्रियाओं और उनके प्रतीकों को समझने पर बल देता है।यह इकाई छात्रों को समाज और मानव व्यवहार को समझने के लिए एक वैज्ञानिक और गहन दृष्टिकोण प्रदान करती है।

3.8 मुख्य शब्द

1.. सामाजिक गतिशीलता (Social Mobility): व्यक्तियों या समूहों का एक सामाजिक वर्ग, स्थिति, या स्तर से दूसरे में जाना।

2. सामाजिक मूल्य (Social Values): वे आदर्श और मानदंड जो समाज में उचित या अनुचित के रूप में स्वीकार किए जाते हैं।

3. सामाजिक स्तरीकरण (Social Stratification): समाज में मौजूद असमानताओं के आधार पर समूहों या व्यक्तियों का वर्गीकरण, जैसे जाति, वर्ग, या लिंग।

4. सामाजिक भूमिका (Social Role): व्यक्ति द्वारा समाज में निभाए जाने वाले अपेक्षित व्यवहार और जिम्मेदारियां।

5. सामाजिक परिवर्तन (Social Change):समय के साथ समाज की संरचना, विचारधारा, और व्यवहार में होने वाले बदलाव।

3.9 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर:1. समाजशास्त्र का मुख्य उद्देश्य समाज, उसकी संरचना, प्रक्रियाओं, और समस्याओं का वैज्ञानिक अध्ययन करना है।

उत्तर: 2. समाज को उसके विविध आयामों, जैसे संरचना, संस्थान, और प्रक्रियाओं, के संदर्भ में देखने और समझने का दृष्टिकोण।

उत्तर:3. संरचनात्मक दृष्टिकोण (Structural Perspective)

संघर्ष दृष्टिकोण (Conflict Perspective)

प्रतीकात्मक अंतःक्रिया दृष्टिकोण (Symbolic Interactionism)

3.10 संदर्भ ग्रन्थ

- बाला, आर. (**2021**). *भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास और संरचना*. नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन्स।
- कुमार, ए. (**2019**). *आधुनिक भारतीय समाज और आर्थिक संरचना*. जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स।
- सिंह, एस. (**2022**). *भारतीय आर्थिक नीतियां और उनका प्रभाव*. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- शर्मा, पी. (**2018**). *भारतीय सेवा और औद्योगिक क्षेत्र: एक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण*. मुंबई: रूपा पब्लिकेशन्स।
- त्रिपाठी, वी. (**2023**). *वैश्वीकरण और भारतीय अर्थव्यवस्था*. लखनऊ: विश्वविद्यालय प्रकाशन।

3.11 अभ्यास प्रश्न

1. समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य की अवधारणा को समझाइए ।

Explain the concept of sociological Perspective.

2. समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में समाज के अध्ययन को समझाइए।

Explain study of society in sociological perspective.

3. सामाजिक विज्ञानों के एकीकरण पर एक लेख लिखिए।

Write an essay on unification of social sciences.

4. इतिहास और अर्थशास्त्र की समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में क्या भूमिका है ? What is the role of History and Economics in sociological perspective.

अपनी प्रगति की जाँच करें Test your Progress

इकाई - 4

समाजशास्त्र एवं सामाजिक विज्ञान [SOCIOLOGY AND SOCIAL SCIENCES]

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 समाजशास्त्र और मानवशास्त्र (Sociology And Anthropology)

4.4 समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र (Sociology and Economics) com

4.5 समाजशास्त्र और राजनीतिशास्त्र (Sociology and Political Science)

4.6 समाजशास्त्र और सामाजिक मनोविज्ञान (Sociology and Social Psychology)

4.7 समाजशास्त्र और इतिहास (Sociology and History)

4.8 समाजशास्त्र और भूगोल (Sociology and Geography)

4.9 समाजशास्त्र और जीवशास्त्र (Sociology and Biology)

4.10 समाजशास्त्र और जनांकिकी (Sociology and Demography)

4.11 सारांश

4.12 मुख्य शब्द

4.13 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

4.14 संदर्भ ग्रन्थ

4.15 अभ्यास प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

विज्ञानों को मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है (i) प्राकृतिक विज्ञान, और (ii) सामाजिक विज्ञान। सामाजिक विज्ञानों के अन्तर्गत

समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, मानवशास्त्र, मनोविज्ञान, इतिहास, भूगोल आदि को सम्मिलित किया जाता है। ये सभी सामाजिक विज्ञान किसी न किसी बिन्दु पर एक दूसरे से अन्तः सम्बन्धित हैं। यहाँ इन्हीं सामाजिक विज्ञानों की समाजशास्त्र से अन्तः सम्बन्धित की विवेचना की जाएगी।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकेंगे।
2. विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकेंगे।
3. सामाजिक और आर्थिक असमानता को कम करने के उपायों का विश्लेषण कर सकेंगे।
4. रोजगार सृजन और उत्पादन क्षमता में वृद्धि के महत्व को पहचान सकेंगे।
5. भारतीय अर्थव्यवस्था की वैश्विक प्रतिस्पर्धा और स्थिरता पर विचार कर सकेंगे।

4.3 समाजशास्त्र और मानवशास्त्र

(Sociology And Anthropology)

समाजशास्त्र और मानवशास्त्र अन्य विज्ञानों की तुलना में एक-दूसरे के अधिक निकट है। इन दोनों के बीच स्पष्ट अन्तर नहीं किया जा सकता है। फ्रोयबर ने समाजशास्त्र और मानवशास्त्र को जुड़वाँ बहिनें कहा है। रॉबर्ड रेडफील्ड लिखते हैं, "पूरे संयुक्त राज्य पर दृष्टि डालने से समाजशास्व व मानवशास्व का राजनीतिशास्व और मानवशास्त्र के सम्बन्ध में अपेक्षा अधिक सम्बन्ध दिखाई

पड़ता है। यह कुछ अंश तक काम करने की प्रणालियों में अधिक समानता के कारण है।" मानवशास्त्र का अध्ययन निम्न तीन शाखाओं के

अन्तर्गत किया जाता है।

(a) भौतिक मानवशास्व (Physical Anthropology)

(b) प्रागैतिहासिक पुरातत्व (Pre Historic Archaeology)

(c) सामाजिक या सांस्कृतिक मानवशास्त्र (Social or Cultural Anthropology)

दोनों शास्त्रों के बीच सम्बन्ध समाजशास्त्र का मानवशास्व से निम्न सम्बन्ध है-

(i) भौतिक मानवशास्त्र आदिम मानव के शरीर की उत्पत्ति, विकास और उसके शारीरिक लक्षणों का अध्ययन करता है। इसके साथ ही मानवशास्त्र के अन्तर्गत प्रजातियों का गहन अध्ययन भी किया जाता है। भौतिक मानवशास्त्र के अध्ययनों से समाजशास्त्री लाभ उठाकर मानवीय अन्तःक्रियाओं और समस्याओं को समझने का प्रयास करते हैं।

(ii) प्रागैतिहासिक मानवशास्त्र जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है यह मानवशास्त्र की वह शाखा है जिसमें ऐतिहासिक युग की सभ्यता, संस्कृति और प्रविधियों का अध्ययन किया जाता है। इसकी सहायता से समाजशास्त्री सांस्कृतिक विरासत और इसके आधुनिक जीवन से सम्बन्धों की व्याख्या करता है। समाजशास्त्र में आधुनिक सामाजिक ढाँचे का अध्ययन करने के लिए प्राचीन पृष्ठभूमि का सहारा लिया जाता है।

(iii) सामाजिक मानवशास्त्र सामाजिक परिस्थितियों में मनुष्य के व्यवहारों का अध्ययन करता है। इसके अन्तर्गत आदिकालीन मानव के रीति-रिवाज, परिवार, विवाह, धर्म और अर्थव्यवस्था, न्याय, कानून का अध्ययन किया जाता है। इन सभी विषयों का समाजशास्त्र के अन्तर्गत अध्ययन किया जाता है। सामाजिक मानवशास्त्र और समाजशास्व की विषय-सामग्री परस्पर इतनी घुली-मिली है कि उसे एक-दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता है और स्पष्टतया ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि यह विषय समाजशास्त्र का है या सामाजिक मानवशास्त्र का ।

(iv) मानवशास्त्र आदिम समाजों की सरल व्यवस्था का अध्ययन करता है। समाजशास्व इसी सरल व्यवस्था के आधार पर आधुनिक समाज की जटिल व्यवस्था का अध्ययन करता है। इसलिए कोव्रर (Kroeber) ने इन्हें जुड़वाँ बहिनें (Twin Sister) कहकर सम्बोधित किया है। क्रोबर ने तो आगे स्पष्ट शब्दों में कहा है कि "सिद्धान्ततः समाजशास्व और मानवशास्त्र को अलग करना कठिन है।"

दोनों में अन्तर- समाजशास्त्र और मानवशास्त्र एक-दूसरे से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित होते हुए भी इन दोनों में निम्न अन्तर हैं-

(i) समाजशास्त्र और मानवशास्त्र में मौलिक अन्तर यह है कि मानवशास्त्र आदिम समुदायों या समाजशास्त्र: बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर जनजातियों का अध्ययन करता है, जबकि समाजशास्त्र आधुनिक समाज का अध्ययन करता है।

(ii) मानवशास्त्र में आदिम मानव के राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक जीवन का समग्र अध्ययन किया जाता है। समाजशास्त्र समाज का अध्ययन है। समाज अत्यधिक विशाल और जटिल है, अतः एक विज्ञान द्वारा इसका अध्ययन सम्भव नहीं है। इसीलिये इसका अध्ययन अनेक सामाजिक विज्ञानों द्वारा किया जाता है। समाजशास्त्र आधुनिक समाज के ढाँचे, संगठन और मानव की क्रियाओं का अध्ययन करता है।

(iii) दोनों विज्ञानों की अध्ययन पद्धतियों में भी अन्तर है। मानवशास्त्र एक प्राकृतिक विज्ञान के रूप में विकसित हुआ है, अतः उसकी विधियाँ भी प्राकृतिक विज्ञानों से मिलती-जुलती हैं। समाजशास्त्र का विकास सामाजिक विज्ञान के रूप में हुआ है, अतः उसकी पद्धतियाँ भी सामाजिक हैं। समाजशास्त्र के अन्तर्गत सामाजिक सर्वेक्षण-पद्धति, सांख्यिकीय-पद्धति, साक्षात्कार-पद्धति, प्रश्नावली और अनुसूची-पद्धति का प्रयोग किया जाता है। मानवशास्त्र के अन्तर्गत सहभागिक अवलोकन (Participant Observation) आवश्यक है। इसके अभाव में मानवशास्त्र का अध्ययन पूर्ण नहीं हो सकता है।

(iv) मानवशास्त्र में प्रजातियों के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया जाता है, जबकि समाजशास्त्र में प्रजातियों का अध्ययन सामाजिक सम्बन्धों पर पड़ने वाले प्रभाव के दृष्टिकोण से किया जाता है।

(v) समाजशास्त्र का सम्बन्ध सामाजिक नियोजन (Social Planning) से भी है, अर्थात् समाजशास्व इस ओर संकेत करता है कि यह होना चाहिए। सामाजिक मानवशास्त्र इस प्रकार का कोई सुझाव नहीं देता है।

4.4 समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र

(Sociology and Economics) com

समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र के सम्बन्ध में अनुमान तो इसी से लगाया जा सकता है कि समाजशास्त्र का शैशवकाल अर्थशास्त्रियों की गोद और संरक्षण में व्यतीत हुआ है। थामस के अनुसार, "वास्तव में अर्थशास्व समाजशास्त्र के विस्तृत विज्ञान की एक शाखा है।" आज भी कुछ विश्वविद्यालय हैं जहाँ दोनों विषय एक ही विभाग के अन्तर्गत पढ़ाये जाते हैं।

समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र के बीच सम्बन्ध- समाजशास्त्र और अर्थशास्व में निम्न सम्बन्ध हैं-

(1) अर्थशास्त्र आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन करता है। समाजशास्त्र सामाजिक क्रियाओं का अध्ययन करता है। आर्थिक और सामाजिक दोनों परिस्थितियाँ एक-दूसरे से अन्तःसम्बन्धित हैं। उदाहरण के लिये माँग का नियम सामाजिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है। मूल्य का निर्धारण भी सामाजिक माँग या सामाजिक परिस्थितियों द्वारा होता है।

(ii) सामाजिक दशाएँ और आर्थिक परिस्थितियों एक-दूसरे से अन्तःसम्बन्धित हैं। मैक्स वेबर ने अपने अध्ययन के आधार पर ऐसा सिद्ध किया है कि सामाजिक कारकों (धार्मिक कारकों) का आर्थिक जीवन पर प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार मार्क्स ने सिद्ध किया कि इतिहास में परिवर्तन का आधार आर्थिक और अर्थव्यवस्था में परिवर्तन है।

(iii) समाजशास्त्र सामाजिक सम्बन्धों पर आर्थिक कारकों के प्रभाव का अध्ययन करता है। सामाजिक संगठन का रूप क्या होगा ? इसका निर्धारण भी आर्थिक

परिस्थितियाँ ही करती हैं। समाज में शान्ति, न्याय, नैतिकता, सद्भावना और धर्म का क्या रूप होगा इसका निर्धारण आर्थिक दशाएँ करती हैं।

(iv) समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र दोनों विज्ञान एक ही प्रकार की समस्याओं का अध्ययन करते हैं। जैसे श्रम-समस्याएँ और श्रम-कल्याण, औद्योगीकरण और इसके सामाजिक व आर्थिक प्रभाव, बेकारी, निर्धनता, ग्रामीण समस्याएँ और उनका समाधान आदि। इन विषयों के सम्बन्ध में ऐसा कहना असम्भव है कि इन्हें किस विज्ञान में सम्मिलित किया जाये।

(v) समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र दोनों विकसित विज्ञान हैं, फिर भी इन दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध हैं। अर्थशास्त्र जीवन की आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन करता है, जबकि समाजशास्त्र जीवन की सामाजिक क्रियाओं का अध्ययन करता है।

समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र में अन्तर- समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होते हुए भी पृथक-पृथक सामाजिक विज्ञान हैं और इनमें निम्न अन्तर हैं-

(i) समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र में मौलिक अन्तर यह है कि समाजशास्त्र सामान्य विज्ञान (Genera Science) है, जबकि अर्थशास्त्र विशेष विज्ञान (Special Science) है। समाजशास्त्र सामाजिक जीवन के समस्त पहलुओं का सामान्य अध्ययन है, जबकि अर्थशास्त्र में जीवन की आर्थिक क्रियाओं का पूर्ण अध्ययन किया जाता है।

(ii) अर्थशास्त्र का दृष्टिकोण व्यक्तिवादी है, जबकि समाजशास्त्र का दृष्टिकोण समूहवादी है। अर्थशास्त्र व्यक्ति की आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन है, जबकि समाजशास्त्र व्यक्ति की सामाजिक क्रियाओं का अध्ययन है।

(iii) अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र की अध्ययन पद्धतियों में भी अन्तर है। अर्थशास्त्र के अन्तर्गत आगमन और निगमन पद्धतियों (Inductive and Deductive Methods) का अलग-अलग या सम्मिलित प्रयोग किया जाता है। समाजशास्त्र के अन्तर्गत समाजमिति, वैयक्तिक जीवन अध्ययन पद्धति, अवलोकन आदि पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है।

(iv) अर्थशास्त्र के नियम तुलनात्मक दृष्टि से समाजशास्त्र के नियमों की अपेक्षा अधिक स्थायी और सार्वभौमिक होते हैं, यदि अन्य बातें सामान्य रहें।

(v) अर्थशास्त्र के नियम समाजशास्त्र की अपेक्षा अधिक जटिल और विशेषीकृत हैं।

(vi) समाजशास्त्र अधिक व्यापक विज्ञान है और समाज का अध्ययन करता है। अर्थशास्त्र समाज का विशेष अध्ययन करता है अर्थात् वह समाज के एक भाग (आर्थिक क्रियाओ) का अध्ययन करता है। अतः ऐसा कहा जा सकता है कि अर्थशास्त्र समाजशास्त्र की एक शाखा है।

4.5 समाजशास्त्र और राजनीतिशास्त्र

(Sociology and Political Science)

समाजशास्त्र और राजनीतिशास्त्र का भी एक-दूसरे से घनिष्ट सम्बन्ध है। इतना सत्य है कि राजनीतिशास्त्र प्राचीनतम विज्ञान है, जबकि समाजशास्त्र आधुनिकतम विज्ञान है। फिर भी इन दोनों विज्ञानों की विषय-वस्तु और क्षेत्र में समानता है। गिलक्राइस्ट के अनुसार, "राजनीतिशास्त्र में हमें मानव सम्बन्धों के अन्य तथ्यों एवं सिद्धान्तों को अवश्य ग्रहण करना होगा, जिन सिद्धान्तों एवं तथ्यों का अध्ययन एवं प्रतिपादन करना समाजशास्त्र का कर्तव्य है।"

समाजशास्त्र और राजनीतिशास्त्र के बीच सम्बन्ध समाजशास्त्र और राजनीतिशास्त्र में निम्न समानताएँ या सम्बन्ध पाये जाते हैं -

(i) राजनीतिशास्व राज्य और शासन का अध्ययन है। इसके अन्तर्गत राज्य की उत्पत्ति, विकास और शासन व्यवस्था का अध्ययन किया जाता है। समाजशास्त्र के अन्तर्गत संगठित और असंगठित दोनों प्रकार के सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है।

(ii) समाजशास्त्र और राजनीतिशास्त्र घनिष्ठ रूप से सम्बन्धि हैं। 'शासक' केवल राजनीतिक व्यक्ति ही नहीं है, वह एक सामाजिक प्राणी भी है।

(iii) सामाजिक संगठन और राज्य के नियम एक-दूसरे से परस्पर अन्तः सम्बन्धित हैं। सामाजिक मूल्यों की स्थिरता ही सामाजिक संगठन का आधार है। इस सामाजिक संगठन की सुरक्षा के लिए इसकी प्रकृति के अनुरूप ही राजनीतिक नियमों का निर्माण किया जाता है।

(iv) ऐतिहासिक दृष्टि से समाजशास्त्र और राजनीतिशास्त्र परस्पर अन्तः सम्बन्धित हैं। गिन्सबर्ग (Ginsberg) ने सवीकार किया है कि राजनीतिक क्षेत्र से ही समाजशास्व की उत्पत्ति हुई है और समाजशास्व की उत्पत्ति इसलिए हुई है कि इसके अन्तर्गत राज्य के अतिरिक्त अन्य सामाजिक संस्थाओं का अध्ययन किया जायेगा। सामाजिक जीवन में एक अवस्था ऐसी भी आयी होगी जबकि राज्य की आवश्यकता का अनुभव किया गया होगा।

(v) समाजशासत्र सामाजिक संगठन का अध्ययन है और इस संगठन की रक्षा के लिए 'सामाजिक नियन्त्रण' की आवश्यकता होती है। इस युग में राज्य सामाजिक नियन्त्रण का सबसे प्रभावशाली साधन है। राज्य द्वारा ही सामाजिक परम्पराओं, प्रथाओं और मूल्यों की रक्षा होती है।

(vi) राजनीतिक परिस्थितियों का सामाजिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। राज्य की व्यवस्था, अध्यादेश और कानूनों के अनुसार सामाजिक जीवन का निर्माण करना पड़ता है- जैसे तलाक अधिनियम (Divorce Act) में तलाक की व्याख्या, प्रकृति और अव्यवस्थाओं की विवेचना की गयी है। बाल-विवाह समाजशास्त्र : बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर- अधिनियम (Child Marriage Act) द्वारा बाल-विवाहों की मात्रा में कमी हुई है। जीवन बीमा, पेन्शन, बोनस आदि के कारण संयुक्त परिवार समाप्त होते जा रहे हैं।

(vii) राजनीतिक सफलता के लिए समाजशास्त्र का ज्ञान आवश्यक है। इतिहास इस बात का साक्षी है

कि वह शासक सफल और अधिक लोकप्रिय हुआ है जिसने समाज को भली-भाँति समझने का प्रयास किया है।

(viii) मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाजशास्त्र व्यक्ति की सामाजिक परिस्थितियों का अध्ययन करता है। राजनीतिशास्त्र ऐसी परिस्थितियाँ प्रदान करता है जिनके आधार पर वह सामाजिक प्राणी बनता है।

(ix) समानता, स्वतन्त्रता और मातृत्व सामाजिक जीवन के आधार है और इन सिद्धान्तों का पोषण और व्याख्या राजनीतिशास्त्र के अन्तर्गत की जाती है।

समाजशास्त्र और राजनीतिशास्त्र में अन्तर- समाजशास्व और राजनीतिशास्व में महत्वपूर्ण सम्बन्ध होने के बावजूद भी दोनों अलग-अलग विज्ञान हैं और इन दोनों में निम्न अन्तर हैं-

(i) समाजशास्त्र सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन करता है, जबकि राजनीतिशास्त्र केवल राजनीतिक सम्बन्धों का अध्ययन करता है।

(ii) सामाजिक सम्बन्धों का क्षेत्र विस्तृत है, जबकि राजनीतिक सम्बन्धों का क्षेत्र सीमित है। राजनीतिक सम्बन्ध सामाजिक सम्बन्धों का एक ही भाग हैं।
(iii) दोनों विज्ञानों के क्षेत्र और विषय-सामग्री में भी अन्तर है। समाजशास्त्र का क्षेत्र समाज है, जबकि राजनीतिशास्त्र का क्षेत्र राज्य है।

(iv) समाजशास्त्र सामान्य विज्ञान है क्योंकि यह सामाजिक जीवन की सामान्य घटनाओं का अध्ययन करता है। राजनीतिशास्त्र विशेष विज्ञान है और राज्य का अध्ययन करता है।

(v) समाजशास्त्र के अन्तर्गत सामाजिक जीवन के संगठित, अर्द्ध-संगठित और असंगठित सम्बन्धों का सामान्य अध्ययन किया जाता है, जबकि राजनीतिशास्त्र के अन्तर्गत संगठित जीवन के विशेष पहलुओं का अध्ययन किया जाता है।

(vi) समाजशास्त्र अतीत और वर्तमान का अध्ययन है। उसमें 'समाज क्या है' का अध्ययन किया जाता है। राजनीतिशास्त्र में अतीत, वर्तमान और भविष्य का अध्ययन किया जाता है। समाजशास्त्र 'क्या होना चाहिए की व्याख्या नहीं करता, जबकि राजनीतिशास्व में 'क्या होना चाहिए' का अध्ययन किया जाता है। जैसे राज्य की व्यवस्था क्या होनी चाहिए? नागरिकों का क्या अधिकार और क्या कर्तव्य हैं? सरकार का क्या रूप होना चाहिए आदि ।

(vii) राजनीतिशास्व सामाजिक विज्ञानों में प्राचीनतम विज्ञान है, जबकि समाजशास्त्र सामाजिक विज्ञानों में नवीनतम विज्ञान है।

(viii) समाजशास्त्र में जागरुक और अजागरुक दोनों प्रकार के सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। राजनीतिशास्त्र में मात्र उन्हीं सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है, जिनका सम्बन्ध जागरुक अवस्था से है।

(ix) समाजशास्त्र सामाजिक नियन्त्रण के सभी साधनों का अध्ययन करता है, जैसे परिवार, पड़ोस, धर्म, फैशन, प्रथा, परम्परा आदि। राजनीतिशास्त्र में नियन्त्रण के मात्र उन्हीं साधनों का अध्ययन किया जाता है, जिन्हें राज्य ने अपनी स्वीकृति दे दी है।

(x) राजनीतिशास्व व्यक्ति का अध्ययन राजनीतिक प्राणी के रूप में होता है। समाजशास्त्र व्यक्ति का अध्ययन राजनीतिक और सामाजिक दोनों प्राणियों के रूप में करता है। वह यह देखता है कि समाज की कौन-सी परिस्थितियाँ हैं जिन कारणों से व्यक्ति राजनीतिक बनता है।

4.6 समाजशास्त्र और सामाजिक मनोविज्ञान

(Sociology and Social Psychology)

सामाजिक मनोविज्ञान मानव व्यवहार का अध्ययन है, समाजशास्त्र सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन है। इस कारण दोनों में घनिष्ट सम्बन्ध हैं।

समाजशास्त्र और सामाजिक मनोविज्ञान में सम्बन्ध- (i) मनोविज्ञान मानव-मस्तिष्क की अन्तः क्रिया का विज्ञान है। **थाउलस** (Thouless) ने लिखा है कि मनोविज्ञान मानव अनुभव और व्यवहार का यथार्थ विज्ञान है। समाजशास्व सामाजिक व्यवहार का अध्ययन है। समाजशास्त्र और मनोविज्ञान एक ही वस्तु का अध्ययन करते हैं। दोनों के बीच मात्र दृष्टिकोण का अन्तर है।

(ii) सामाजिक मनोविज्ञान केवल उन व्यवहारों का अध्ययन करता है जिनकी उत्पत्ति किन्हीं विशेष परिस्थितियों में हुई हैं। समाजशास्त्र सामाजिक व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों की व्याख्या करता है।

(iii) गिन्सवर्ग (Ginsberg) का विचार है कि समाजशास्त्र और सामाजिक मनोविज्ञान की सीमाएँ एक-दूसरे से इतनी मिली हुई हैं कि इन्हें पृथक् नहीं किया जा सकता है। मूल प्रवृत्तियों, इच्छाओं और प्रेरणाओं का अध्ययन मनोविज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है। जब तक इन्हें भली भाँति नहीं समझ लिया जाता, सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन नहीं किया जा सकता है, जो कि समाजशास्त्र का विषय-क्षेत्र है।

(iv) सामाजिक मनोविज्ञान समाज में मनुष्य के व्यवहार का अध्ययन है। समाजशास्त्र मानव व्यवहार के बाड़ा रुप का अध्ययन करता है जबकि सामाजिक मनोविज्ञान मानव-व्यवहार का मानसिक आधार पर अध्ययन करता है। इस प्रकार समाजशास्त्र मानव-व्यवहार का अध्ययन है और सामाजिक मनोविज्ञान व्यवहारों के मानसिक तत्वों का अध्ययन है।

(v) समाज मनोविज्ञान का समाजशास्त्र से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसका समर्थन करते हुए डॉ. मोटवानी ने लिखा है कि, "सामाजिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान और समाजशास्त्र के बीच की एक कड़ी है।" इस प्रकार समाजशास्त्र और मनोविज्ञान एक-दूसरे से अन्तः सम्बन्धित हैं। मनोविज्ञान को मनुष्य की

मानसिक प्रक्रियाओं को समझने के लिये समाजशास्त्रीय ज्ञान पर निर्भर रहना पड़ता है। इसी प्रकार सामाजिक सम्बन्धों, व्यवहारों और प्रक्रियाओं को समझने के लिए समाजशास्त्री को मनोविज्ञान का ज्ञान आवश्यक है। मैकाइवर, ने लिखा है कि "समाजशास्त्र विशेष रूप से मनोविज्ञान को सहायता देता है जिस प्रकार मनोविज्ञान समाजशास्त्र को विशेष सहायता देता है।"

(vi) न्यूकॉम्ब (Nowcomb) ने Micro-Sociology की कल्पना की थी। यह विज्ञान सामाजिक मनोविज्ञान की तरह है। इसमें समाजशास्त्रियों की सहायता से व्यक्ति के अध्ययन को सम्बद्ध बताया गया है। इस प्रकार सामाजिक जीवन का वैज्ञानिक अध्ययन करने के लिए मनोविज्ञान के ज्ञान की आवश्यकता होती है। इस मनोविज्ञान का विकास समाज की जटिल और परिवर्तनशील प्रकृति के कारण हुआ है।

समाजशास्त्र और सामाजिक मनोविज्ञान में अन्तर- (i) समाजशास्त्र और सामाजिक मनोविज्ञान दोनों के दृष्टिकोण में अन्तर है। मनोविज्ञान के अनुसार मनुष्य जो भी कार्य करता है, इसका कारण उस व्यक्ति की चेतना है। समाजशास्त्री मानव-व्यवहार का अध्ययन समूह में रहने की प्रवृत्ति के दृष्टिकोण से करते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि मनोविज्ञान का दृष्टिकोण वैयक्तिक है, जबकि समाजशास्त्र का दृष्टिकोण सामाजिक है।

(ii) समाजशास्व सामाजिक सम्बन्धों के मूर्त और अमूर्त-जनसंख्या, पर्यावरण, सहानुभूति, सुझाव-दोनों रूपों का अध्ययन करता है। मनोविज्ञान पूर्णतया अमूर्त विषयों का अध्ययन करता है, क्यों क्योंकि इसमें मानव मस्तिष्क और व्यवहारों का अध्ययन होता है।

(iii) समाजशास्त्र सामान्य विज्ञान है, क्योंकि यह सामाजिक जीवन के सामान्य पहलुओं का अध्ययन करता है। मनोविज्ञान विशेष विज्ञान है, क्योंकि यह मानसिक क्रियाओं का अध्ययन करता है।

(iv) इस प्रकार समाजशास्त्र का क्षेत्र व्यापक है, जबकि मनोविज्ञान का क्षेत्र तुलनात्मक दृष्टि से सीमित

है।

(v) समाजशास्त्र और मनोविज्ञान की अध्ययन पद्धतियों में अन्तर है। समाजशास्त्र की अध्ययन- पद्धतियाँ हैं-सांख्यिकीय पद्धति, सामाजिक सर्वेक्षण पद्धति, अवलोकन पद्धति और निदर्शन पद्धति आदि। मनोविज्ञान के अध्ययन में प्रयोगात्मक पद्धति (Developmental Method) का प्रयोग किया जाता है।

(vi) अन्त में **बोगार्डस** (Bogardus) के शब्दों में कहा जा सकता है कि "मनोविज्ञान मानसिक प्रक्रियाओं (Mental Processes) का अध्ययन है, जबकि समाजशास्त्र सामाजिक प्रक्रियाओं (Social Processes) का अध्ययन है।"

4.7 समाजशास्त्र और इतिहास (Sociology and History)

समाजशास्त्र और इतिहास का भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। इतिहास बीती हुई घटना। इस प्रकार इतिहास बीते हुए समाज का अध्ययन है।

इतिहास और समाजशास्त्र में सम्बन्ध- (i) इतिहास अतीत की सामाजिक घटनाओं का क्रमबद्ध और व्यवस्थित अध्ययन है। समाजशास्त्र भी सामाजिक घटनाओं का क्रमबद्ध अध्ययन करता है, किन्तु यह अतीत की पृष्ठभूमि में वर्तमान समाज का अध्ययन करता है। इसीलिए 'इतिहास को अतीत का समाजशास्व और समाजशास्व को समाज का वर्तमान इतिहास' कहा जाता है।

(ii) इतिहास समाज की अतीतकालीन घटनाओं के कार्य-कारण सम्बन्धों की व्याख्या करता है। समाजशास्त्र वर्तमान सामाजिक घटनाओं की व्याख्या अतीतकाल की परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में करता है।

(iii) इतिहास मात्र राजा-महाराजाओं और शासकों का ही ग्रन्थ नहीं है, यह सामाजिक घटनाओं की आलोचनात्मक व्याख्या भी करता है। सामाजिक घटनाएँ समाजशास्त्र से सम्बन्धित हैं। इतिहासकार अब मात्र 'क्या है' का ही वर्णन नहीं करता 'कैसे हुआ,' 'कौन-सी परिस्थितियाँ थीं जिनके कारण यह हुआ' का भी अध्ययन करता है और इन परिस्थितियों और घटनाओं का समाजशास्त्र से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

(iv) इतिहासकार प्रत्येक युग के सामाजिक आर्थिक धार्मिक और राजनीतिक जीवन का अध्ययन करता है। समाजशास्वी इतिहास के अध्ययन द्वारा उस युग के सामाजिक जीवन को समझने का प्रयास करता है।

(v) इतिहास के कालक्रम के अनुसार सभ्यता और संस्कृति का अध्ययन किया जाता है। समाजशास्त्र भी सभ्यता और संस्कृति का अध्ययन करता है।

(vi) इतिहास में युद्ध और क्रान्ति का वर्णन किया जाता है। समाजशास्त्र के अन्तर्गत उन प्रक्रियाओं का वर्णन किया जाता है जिनसे युद्ध और क्रान्ति को प्रोत्साहन मिलता है। युद्ध और क्रान्ति के सामाजिक कारणों और परिणामों का भी समाजशास्त्र में पता लगाया जाता है।

(vii) समाजशास्त्र ऐतिहासिक पद्धति (Historical Method) का प्रयोग किया जाता है। इसका उद्देश्य मात्र ऐतिहासिक घटनाओं की खोज करना है। इन ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर समाजशास्व वर्तमान सामाजिक घटनाओं का कार्य-कारण सम्बन्ध स्थापित करता है और भविष्य की ओर संकेत देता है। यह तब तक सम्भव नहीं जब तक कि उसे इतिहास का ज्ञान न हो।

समाजशास्त्र और इतिहास में अन्तर- (1) समाजशास्त्र और इतिहास में मौलिक अन्तर यह है कि समाजशास्व सामान्य विज्ञान है, जबकि इतिहास विशेष विज्ञान है।

(ii) इतिहास का सम्बन्ध मात्र बीती हुई घटनाओं से है, जबकि समाजशास्त्र का सम्बन्ध समाज की वर्तमान घटनाओं से है।

(iii) समाजशास्त्र और इतिहास के दृष्टिकोण में भी अन्तर है। इतिहास अतीत की मात्र प्रमुख घटनाओं का ही अध्ययन करता है, जबकि समाजशास्त्र सामान्य घटनाओं का अध्ययन करता है। इस प्रकार इतिहास की अपेक्षा समाजशास्त्र का दृष्टिकोण व्यापक और विशाल है।

(iv) जहाँ तक विज्ञान की निश्चितता और प्रामाणिकता का प्रश्न है, इतिहास की अपेक्षा समाजशास्त्र अधिक प्रामाणिक है। इसका कारण यह है कि इतिहास की घटनाओं की परीक्षा और पुनर्परीक्षा नहीं की जा सकती है, किन्तु समाजशास्त्र के अन्तर्गत ऐसा सम्भव है।

(v) प्राचीनता की दृष्टि से भी इतिहास और समाजशास्व में अन्तर है। समाजशास्व की तुलना में इतिहास अधिक प्राचीन है।

(vi) समाजशास्त्र आधुनिक समाज का इतिहास है, जबकि इतिहास अतीत का समाजशास्त्र है।

4.8 समाजशास्त्र और भूगोल (Sociology and Geography)

भूगोल और समाजशास्त्र का भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। भूगोल भौगोलिक दशाओं से सम्बन्धित है और समाजशास्त्र के अन्तर्गत इन भौगोलिक दशाओं का समाज में क्या स्थान है? इसका अध्ययन किया जाता है।

भूगोल और समाजशास्त्र में सम्बन्ध- (i) भूगोल में प्राकृतिक पर्यावरण (Natural Environment) का अध्ययन किया जाता है जैसे-जलवायु, वर्षा, तापक्रम, प्राकृतिक दशाएँ आदि। समाजशास्त्र के अन्तर्गत इन भौगोलिक दशाओं का सामाजिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है? इसका अध्ययन किया जाता है। इसके साथ ही भौगोलिक परिस्थितियों के बदलने से सामाजिक जीवन किस प्रकार प्रभावित होता है ? भौगोलिक परिस्थितियों का सामाजिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है ? इसका अध्ययन करने के लिए समाजशास्त्रियों के एक सम्प्रदाय का जन्म हुआ, जिसे भौगोलिक सम्प्रदाय के नाम से जाना जाता है।

(ii) भूगोल राज्य का भी अध्ययन करता है। इसे राजनीतिक भूगोल (Political Geography) कहा जाता है, जिसमें विभिन्न देशों की बनावट और पृथ्वी के धरातल का अध्ययन किया जाता है। समाजशास्त्र इसका अध्ययन करता है कि पृथ्वी की बनावट के अनुसार व्यक्तियों की कार्यकुशलता का निर्धारण होता है। साथ ही इसका सामाजिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

(iii) भूगोल की एक शाखा 'व्यापारिक भूगोल' (Commercial Geography) की है जिसके अन्तर्गत पैदावार का जलवायु के साथ अध्ययन किया जाता है। समाजशास्त्र इस पैदावार के अनुसार रहन-सहन और सामाजिक रीतियों, प्रथाओं, परम्पराओं की विवेचना करता है।

(iv) मानव भूगोल (Human Geography) मनुष्य का अध्ययन करता है और मनुष्यों की मिश्रित प्रजातियों का कारण भौगोलिक परिस्थितियों को बताया है। समाजशास्त्र के अन्तर्गत प्रजाति के सामाजिक पक्ष की विवेचना की जाती है।

(v) भूगोल जलवायु का अध्ययन करता है। समाजशास्त्र इसका अध्ययन करता है कि जलवायु का सामाजिक जीवन से क्या सम्बन्ध है? जलवायु व्यक्ति की कार्यकुशलता और प्रकृति का निर्धारण किस प्रकार करती है ? ठण्डक में सम्पत्ति से सम्बन्धित अपराध और गर्मी में व्यक्ति से सम्बन्धित अपराध क्यों नहीं होते

(vi) समाजशास्त्र के अन्तर्गत सभ्यता और संस्कृति का अध्ययन किया जाता है। सभ्यता और संस्कृति सामाजिक जीवन से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं। सभ्यता और संस्कृति के उत्थान और पतन में भौगोलिक दशाओं का योगदान रहा है।

समाजशास्त्र और भूगोल में अन्तर- (i) समाजशास्त्र सामाजिक विज्ञान है और सामान्य सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करता है। भूगोल मात्र भौगोलिक दशाओं का अध्ययन करता है, इसलिए यह विशेष सामाजिक विज्ञान है।

(ii) समाजशास्त्र का अध्ययन-क्षेत्र विस्तृत है, जबकि भूगोल का अध्ययन-क्षेत्र सीमित है।

(iii) दोनों की अध्ययन-वस्तु में भी अन्तर है। समाजशास्त्र की अध्ययन वस्तु सामाजिक सम्बन्ध है, जबकि भूगोल की अध्ययन-वस्तु भौगोलिक दशाएँ है।

4.9 समाजशास्त्र और जीवशास्त्र (Sociology and Biology)

जीवशास्त्र वह विज्ञान है जो जीवों की उत्पत्ति, विकास और संगठन का अध्ययन करता है। मनुष्य भी प्राणी है, जिसका अध्ययन जीवशास्त्र करता है।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। इसी की व्याख्या जीवशास्त्र और समाजशास्व के अन्तर्गत की जायेगी।

समाजशास्त्र और जीवशास्त्र में सम्बन्ध- (i) जीवशास्त्र प्राणियों का अध्ययन है। प्राणियों में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ और महत्वपूर्ण प्राणी है। जीवशास्व मनुष्य के

उद्भव, विकास और परिवर्तन का अध्ययन करता है। मनुष्य मात्र प्राणी ही नहीं, वह सामाजिक भी है। 'वह सामाजिक क्यों है ?' इसका अध्ययन समाजशास्त्र के अन्तर्गत किया जाता है। इस प्रकार समाजशास्व 'समाज' का अध्ययन है और जीवशास्त्र 'व्यक्ति' का अध्ययन है। व्यक्ति और समाज परस्पर अन्तः सम्बन्धित है, अतः दोनों विज्ञान भी परस्पर अन्तःसम्बन्धित है।

(ii) डार्विन (Darwin) ने 'सावयवी उद्विकास के सिद्धान्त' (Theory of Organic Evolution) का प्रतिपादन किया था। उसने इस सिद्धान्त द्वारा यह सिद्ध किया था कि जीवों का उद्भव और विकास किस प्रकार हुआ? इसी सिद्धान्त के आधार पर समाजशास्त्रियों ने 'सामाजिक उद्विकास के सिद्धान्त' (Theory of Social Evolution) का प्रतिमान किया था।

(iii) इसी प्रकार 'अस्तित्व के लिए संघर्ष' (Struggle for Existence) और 'योग्यतम की जीत' (Survival of the fittest) के सिद्धान्त सामाजिक जीवन पर भी लागू होते हैं। जिस प्रकार उपर्युक्त सिद्धान्त जीवों पर प्रभावी होते हैं, उसी प्रकार समाज पर भी प्रभावी होते हैं।

(iv) वंशानुक्रमण (Heredity) का अध्ययन जीवशास्त्र के अन्तर्गत किया जाता है। समाजशास्त्र के अन्तर्गत भी वंशानुक्रमण का अध्ययन किया जाता है।

(v) समाजशास्त्र के नियम जीवशास्त्र को प्रभावित करते हैं और जीवशास्त्र के नियम समाजशास्त्र को समाजशास्त्र श्री. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर-1 प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिये, विवाह की आयु और अन्तर्विवाह शारीरिक विकास को प्रभावित करते हैं। सामाजिक जीवन के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए दोनों विज्ञानों का ज्ञान आवश्यक है।

(vi) प्रजाति (Race) का अध्ययन जीवशास्त्र के अन्तर्गत किया जाता है। समाजशास्त्र भी प्रजाति का अध्ययन करता है।

जीवशास्त्र और समाजशास्त्र में अन्तर-

(i) जीवशास्त्र विशेष विज्ञान है, जबकि समाजशास्त्र सामान्य सामाजिक विज्ञान है।

(ii) समाजशास्त्र का क्षेत्र व्यापक है, जबकि जीवशास्व का क्षेत्र सीमित है।

(iii) समाजशास्त्र समाज का अध्ययन सामाजिक सम्बन्ध, संगठन और सामाजिक क्रियाओं के रूप में करता है। जीवशास्त्र मनुष्य का अध्ययन प्राणिशास्त्रीय दृष्टिकोण से करता है।

(iv) जीवशास्त्रीय सिद्धान्त समाजशास्त्र के सम्बन्ध में प्रभावी नहीं होते हैं। मनुष्य बुद्धिजीवी और क्रियाशील प्राणी है। वह परिस्थितियों का दास नहीं है। अतः प्राकृतिक प्रवरण का नियम (Law of Natural Selection) समाज पर प्रभावी नहीं होता।

4.10 समाजशास्त्र और जनांकिकी (Sociology and Demography)

समाज विज्ञान और जनांकिकी में सम्बन्ध (1) जनांकिकी जनसँख्या का अध्ययन है और समाज विज्ञान समाज का अध्ययन है। समाज और जनसंख्या एक-दूसरे से अन्तः सम्बन्धित है। जनसंख्या का वास्तविक अध्ययन तब तक पूरा नहीं हो सकता है, जब तक कि समाज का पूर्ण ज्ञान न हो। इस प्रकार जनांकिकी और समाज विज्ञान परस्पर सम्बन्धित हैं।

(2) जनांकिकी में जनसंख्या की प्रकृति और स्वरूप का अध्ययन किया जाता है। जनसंख्या की इस

प्रकृति और स्वरूप का अध्ययन करने के लिये समाज की प्रकृति और स्वरूप का ज्ञान अनिवार्य है; क्योंकि ज्ञान की यह शाखा सामाजिक परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में ही जनसंख्या का अध्ययन करती है।

(3) समाज विज्ञान की परिभाषा करते हुए मैकाइवर और पेज ने इसे सामाजिक सम्बन्धों का विज्ञान कहा है। समाज सामाजिक सम्बन्धों के जाल को कहा जाता है। सामाजिक सम्बन्धों के निर्माण के लिए व्यक्ति का होना अनिवार्य है। जनांकिकी में इन्हीं व्यक्तियों का अध्ययन किया जाता है।

(4) जनांकिकी में जन्मदर, मृत्युदर और इनके कारकों का अध्ययन किया जाता है। जनसंख्या के इन कारकों का सीधा सम्बन्ध समाज की परिस्थितियों से है। उदाहरण के लिए, किसी समाज में जन्मदर अधिक है। जन्मदर अधिक होने के अनेक कारणों में बाल-विवाह और संयुक्त परिवार भी कारक हैं। बाल-विवाह

और संयुक्त परिवार सार्वदेशिक और सार्वकालिक न होकर समाज की परिस्थितियों के उत्पादन मात्र होते हैं। इस प्रकार जनांकिकी और समाज विज्ञान परस्पर अन्तःसम्बन्धित है।

(5) जनांकिकी में मृत्यु का भी अध्ययन किया जाता है, मृत्युदर के अनेक कारक हो सकते हैं। इन सभी कारकों का समाज की परिस्थितियों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है।

(6) जनांकिकी में जनस्वास्थ्य का अध्ययन किया जाता है, जनस्वास्थ्य का यह अध्ययन समाज विज्ञान से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। इसका कारण यह है कि जनस्वास्थ्य की योजना बनाते समय समाज की परिस्थितियों को ध्यान में रखा जाता है।

(7) जनांकिकी में जनगणना का अध्ययन किया जाता है। जनगणना में जनसंख्या की प्रकृति और उसके विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण किया जाता है। एक देश की जनसंख्या का विश्लेषण दूसरे देश से भिन्न होता है। इस भिन्नता का कारण यह है कि प्रत्यक्ष देश की सामाजिक परिस्थितियों में अन्तर होता है, जिसके आधार पर जनसंख्या का विश्लेषण किया जाता है। सामाजिक परिस्थितियों का अध्ययन समाज विज्ञान के

अन्तर्गत किया जाता है। इस प्रकार समाज विज्ञान और जनांकिकी परस्पर अन्तः सम्बन्धित हैं।

(8) जनांकिकी में जनसंख्या नीति का अध्ययन किया जाता है। इसके अन्तर्गत जनसंख्या के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के विचारों का अध्ययन किया जाता है। एक देश के विद्वानों के विचार दूसरे देश के विद्वानों के विचारों से पृथक् होते हैं। ये विद्वान जनसंख्या नीति का प्रतिपादन करते हैं। इस नीति का प्रतिपादन करते समय देश की परिस्थितियों को ध्यान में रखा जाता है। अतः स्पष्ट होता है कि जनांकिकी और समाज विज्ञान अन्तः सम्बन्धित हैं।

(9) जनांकिकी में खाद्य सामग्री का अध्ययन किया जाता है और ऐसा विश्वास किया जाता है कि खाद्य सामग्री और जनांकिकी में सन्तुलन अनिवार्य है। खाद्य सामग्री समाज की परिस्थितियों पर आधारित होती है। सामाजिक वातारण ही खाद्य सामग्री का जनक है। प्रत्येक समाज की परिस्थितियों में

भिन्नता पायी जाती है। यह भिन्नता खाद्य सामग्री का निर्धारण करती है। ये सभी तत्व ऐसे हैं जिनका समान रूप से जनांकिकी और समाज विज्ञान में अध्ययन किया जाता है।

(10) इसी प्रकार परिवार नियोजन (Family Planning), आदि ऐसे विषय हैं जिनका जनांकिकी और समाज विज्ञान दोनों अध्ययन करते हैं। दोनों में अन्तर समाज विज्ञान और जनांकिकी में अनेक समानताएँ हैं। इन समानताओं का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। इन समानताओं के अतिरिक्त इन दोनों विज्ञानों में अनेक भिन्नताएँ भी है। इन भिन्नताओं को मुख्य रूप से निम्न भागों में बाँटा जा सकता है -

(1) इन दोनों में मौलिक अन्तर यह है कि समाज विज्ञान समाज का अध्ययन है, जबकि जनांकिकी में जनसंख्या का अध्ययन किया जाता है। जनसंख्या और समाज दोनों एक-दूसरे से भिन्न हैं।

(2) समाज एक विशाल धारणा है, जबकि जनसंख्या एक संकुचित धारणा है। जनसंख्या समाज का छोटा सा भाग है।

(3) समाज विज्ञान 'सामान्य सामाजिक विज्ञान' (General Social Science) है, जिसके अन्तर्गत समाज की सामान्य विशेषताओं का अध्ययन किया जाता है। जनांकिकी विशिष्ट सामाजिक विज्ञान (Special Social Science) है, जिसमें समाज के एक विशेष पहलू का ही अध्ययन किया जाता है।

(4) समाज विज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त विशाल है, जबकि जनांकिकी का क्षेत्र अत्यन्त सीमित है।

(5) समाज विज्ञान के अन्तर्गत सभी प्रकार के सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है, जबकि जनांकिकी के अन्तर्गत मात्र जनसंख्या सम्बन्धी सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है।

(6) समाज विज्ञान 'क्या है' का अध्ययन है, जबकि जनांकिकी में 'क्या होना चाहिए' का अध्ययन होता है। इसका तात्पर्य यह है कि समाज विज्ञान एक आदर्श विज्ञान नहीं है, जबकि जनांकिकी आदर्श विज्ञान है। आदर्श विज्ञान होने के नाते जनांकिकी के अन्तर्गत समाज के भविष्य की योजनाओं को सम्मिलित

किया जाता है। समाज विज्ञान में इस प्रकार की किसी भी योजना को सम्मिलित नहीं किया जाता है।

स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्न

प्रश्न: 1. समाजशास्त्र क्या है?

प्रश्न:2. समाजशास्त्र को सामाजिक विज्ञान क्यों कहते हैं?

प्रश्न:3. सामाजिक विज्ञान के अन्य प्रमुख क्षेत्र कौन-कौन से हैं?

4.11 सारांश

समाजशास्त्र सामाजिक विज्ञान की एक शाखा है, जो समाज, मानव समूहों, और उनके बीच होने वाले परस्पर संबंधों का वैज्ञानिक अध्ययन करती है। यह समाज की संरचना, कार्यप्रणाली, और प्रक्रियाओं को समझने का प्रयास करता है। समाजशास्त्र का मुख्य उद्देश्य सामाजिक समस्याओं और असमानताओं का विश्लेषण करना और उनके समाधान के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदान करना है। यह सामाजिक समूहों जैसे परिवार, धर्म, शिक्षा, अर्थव्यवस्था, और राजनीति के कार्य और प्रभाव को समझने में मदद करता है। समाजशास्त्र, अन्य सामाजिक विज्ञानों जैसे इतिहास, अर्थशास्त्र, और राजनीति विज्ञान से जुड़े होते हुए भी, समाज को उसकी संपूर्णता में देखने का प्रयास करता है। यह औद्योगिकीकरण, वैश्वीकरण, और शहरीकरण जैसे सामाजिक परिवर्तनों और उनके प्रभावों का विश्लेषण करता है। समाजशास्त्र में उपयोग की जाने वाली शोध विधियां इसे एक विज्ञान के रूप में स्थापित करती हैं, और यह समाज को बेहतर और अधिक समावेशी बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान देती है।

4.12 मुख्य शब्द

1. समाजशास्त्र (Sociology): समाज, उसके कार्यों, संरचना, और प्रक्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन।

2. सामाजिक विज्ञान (Social Science): मानव समाज और उसके व्यवहार का अध्ययन करने वाली शैक्षिक शाखा, जिसमें समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान आदि शामिल हैं।

3. सामाजिक संरचना (Social Structure): समाज के विभिन्न तत्वों का संगठनात्मक ढांचा, जैसे परिवार, धर्म, और शिक्षा।

4. संस्थान (Institution): समाज की संस्थापित व्यवस्था, जैसे विवाह, राजनीति, और अर्थव्यवस्था।

5. सामाजिक प्रक्रिया (Social Process): समाज के भीतर होने वाली गतिविधियां और बदलाव, जैसे सहयोग, प्रतिस्पर्धा, और संघर्ष।

4.13 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर: 1. समाज और मानव व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन।

उत्तर: 2. क्योंकि यह समाज और उसकी प्रक्रियाओं का व्यवस्थित और वैज्ञानिक अध्ययन करता है।

उत्तर: 3. इतिहास, राजनीति विज्ञान, अर्थशास्त्र, और मनोविज्ञान।

4.14 संदर्भ ग्रन्थ

- गुप्ता, एस. (2018). *भारतीय अर्थव्यवस्था: संरचना और सुधार*. नई दिल्ली: ओक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- शर्मा, आर. (2020). *आधुनिक भारत की आर्थिक नीतियां*. जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स।
- पटनायक, पी. (2019). *समकालीन भारतीय अर्थव्यवस्था*. मुंबई: सेज पब्लिकेशन्स।
- वर्मा, के. (2021). *सामाजिक विज्ञान और अर्थव्यवस्था का अध्ययन*. लखनऊ: यूनिवर्सल पब्लिशिंग।
- नारायण, एम. (2023). *भारत की आर्थिक प्रगति: चुनौतियां और अवसर*. चेन्नई: ओरिएंट ब्लैकस्वान।

4.15 अभ्यास प्रश्न

1"समाजशास्व अन्य सामाजिक विज्ञानों का न तो स्वामी है, न दास, बल्कि उनकी बहिन है।" इस कचन के आधार पर समाजशास्व का अर्थशास्त्र, मानवशास्व एवं इतिहास से सम्बन्ध बताइए ।

2. समाजशास्व का जीवशास्त्र, जनांकिकी एवं राजनीतिशास्व से क्या सम्बन्ध है ? विवेचना कीजिए।

3. अन्य सामाजिक विज्ञानों के साथ समाजशास्त्र का सम्बन्ध दर्शाइए।

4. "समाजशास्त्र और मानवशास्व जुड़वाँ बहिने हैं।" क्रोबर के इस कथन की विवेचना कीजिए।

5. क्या समाजशास्त्र सामाजिक विज्ञान की माँ है ? समाजशास्त्र का राजनीतिशास्त्र और इतिहास के साथ सम्बन्धों की विवेचना कीजिए।

6. समाजशास्त्र एवं अन्य सामाजिक विज्ञानों के सम्बन्ध में ऑगस्त कॉम्टे, सोरोकिन और स्पेन्सर के विचारों की समीक्षा कीजिए।

7. समाजशास्त्र की व्याख्या कीजिए। समाजशास्त्र का जीवशास्त्र और जनांकिकी से सम्बन्ध लिखिए।

8. समाजशास्त्र की विशिष्ट शाखाओं से आप क्या समझते हैं ?

ब्लॉक - II

इकाई - 5

समाजशास्त्रीय अध्ययन का वैज्ञानिक एवं मानवीय उन्मुखीकरण (THE SCIENTIFIC AND HUMANISTIC ORIENTATION OF SOCIOLOGICAL STUDY)

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्‌देश्य

5.3 विज्ञान की अवधारणा (The Concept of Science)

5.4 समाजशास्त्रीय अध्ययन का मानवीय उन्मुखीकरण

[The Humanistic Orientations to Sociological Study]

5.5 समाजशास्त्र की मानविकी प्रकृति (Humanistic Nature of Sociology)

5.6 सारांश

5.7 मुख्य शब्द

5.8 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

5.9 संदर्भ ग्रन्थ

5.10 अभ्यास प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

समाजशास्त्र समाज का विज्ञान है। समाजशास्व समाज को समझने का विज्ञान है। यहाँ मौलिक प्रश्न यह है कि समाज को कैसे समझा जाय? आज का युग विज्ञान का है तथा समाज मानव जीवन से सम्बन्धित है। इस दृष्टि से वह कौन-सा आधार है जिसकी सहायता से मानव समाज का वैज्ञानिक आधार पर विश्लेषण किया जाय। इसको ध्यान में रखते हुए सामाजिक अध्ययन को वैज्ञानिक बनाना तथा मानवीय जीवन के तथ्यों का उद्‌घाटन समाजशास्त्र का अन्तिम उद्‌देश्य है। इस उद्‌देश्य की प्राप्ति के लिए समाजशास्त्रीय अध्ययनों

को वैज्ञानिक तथा मानवीय उन्मुखीकरण पर आधारित करना होगा, जिनकी विवेचना इस प्रकार है-

5.2 उद्‌देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्‌देश्यों को समझ सकेंगे।
2. विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकेंगे।
3. आर्थिक स्थिरता और वैश्विक प्रतिस्पर्धा को बढ़ाने के उपायों का विश्लेषण कर सकेंगे।
4. समाज के विकास में सामाजिक और आर्थिक पहलुओं की भूमिका समझ सकेंगे।
5. विभिन्न सामाजिक संरचनाओं और उनके वैज्ञानिक अध्ययन की प्रक्रिया को जान सकेंगे।

5.3 विज्ञान की अवधारणा (The Concept of Science)

विज्ञान अंग्रेजी के साइन्स (Science) शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। यदि विज्ञान को दो भागों में विभक्त करें तो इसका अर्थ और भी अधिक स्पष्ट हो जायेगा -

विज्ञान = वि + ज्ञान

वि = विशेष

ज्ञान = जानकारी

विज्ञान = विशेष जानकारी

विशेष जानकारी को विज्ञान कहा जाता है। अब प्रश्न यह है कि विशेष जानकारी क्या है? जानकारी किसी वस्तु के बारे में साधारण ज्ञान को कहा जाता है। साधारण ज्ञान सत्य और असत्य दोनों हो सकता है। यह ज्ञान अनुमानों पर

आधारित होता है। जब इस साधारण जानकारी को विशेष रूप से जाना जाता है, इसके बारे में किसी प्रकार भ्रम नहीं रह जाता है, जो जानकारी प्राप्त की गयी है, वह सभी देश और काल में समान रूप से लागू होती है, तो इस विशेष जानकारी को ही विज्ञान कहा जाता है। यह विशेष ज्ञान व्यवस्थित पद्धतियों के द्वारा प्राप्त किया जाता है। इसकी हमेशा जाँच की जा सकती है। इस प्रकार 'विज्ञान' का तात्पर्य उस ज्ञान से है, जो व्यवस्थित विषयों द्वारा प्राप्त किया गया हो, जिसकी सत्यता की जाँच की जा सके और जिसमें ऐसी क्षमता हो, जिसके आधार पर निश्चित भविष्यवाणी की जा सके।

विज्ञान की परिभाषा

(Definition of Science)

विभिन्न समाजशास्त्रियों ने विज्ञान की जो परिभाषाएँ दी हैं, उनमें से कुछ इस प्रकार है

(1) **ग्रीन-** "विज्ञान अनुसन्धान का तरीका है।"

(2) **कार्ल पियर्सन-** "तथ्यों का वर्गीकरण, इतने क्रमों की स्वीकारोक्ति और सापेक्षिक महत्व को जानना ही विज्ञान का कार्य है।"

कार्ल पियर्सन ने आगे लिखा है कि 'समस्त विज्ञान की एकता केवल उसकी पद्धति में है, न कि उसकी अध्ययन सामग्री में।'

(3) गिलिन और गिलिन- 'जिस क्षेत्र का हम अनुसंधान करना चाहते हैं, उसकी ओर एक निश्चित प्रकार की पद्धति ही विज्ञान का वास्तविक चिह्न है।'

(4) बीसेन्ज और बीसेन्ज -'यह पद्धति है न कि विषय-सामग्री, जो विज्ञान की कसौटी है।'

संक्षेप में, 'वैज्ञानिक पद्धति की सहायता से प्राप्त ज्ञान को ही विज्ञान कहा जा सकता है।'

समाजशास्त्र: बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर-1

प्वइनकर ने उदाहरण देकर विज्ञान की अवधारणा को प्रकट करने का प्रयास किया है। उन्हीं के शब्दों में 'विज्ञान तथ्यों से इस प्रकार बना है, जिस प्रकार

पत्थर से मकान। जिस प्रकार पत्थरों के ढेर को मन्धन नहीं कहा जा सकता है, उसी प्रकार मात्र तथ्यों का संकलन विज्ञान नहीं है।'

विज्ञान की विशेषताएँ (Characteristics ofScience)

ऊपर जो परिभाषाएँ दी गयी हैं, उनके अनुसार विज्ञान की प्रमुख विशेषताओं को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(1) वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग,

(2) अवकलोकन,

(3) तथ्यों का संग्रहण, वर्गीकरण एवं सारणीयन,

(4) तथ्यात्मक प्रस्तुतीकरण,

(5) कार्य-कारण सम्बन्धों का ज्ञान,

(6) सिद्धान्तों का निर्माण एवं परीक्षा,

(7) भविष्यवाणी ।

वैज्ञानिक पद्धति क्या है ?

(What is Scientific Method?)

विज्ञान एक पद्धति, एक तरीका है, जिसकी सहायता से सामाजिक अनुसन्धान में प्राप्त विशिष्ट ज्ञान को व्यवस्थित किया जाता है। संक्षेप में व्यवस्थित तरीकों को ही वैज्ञानिक पद्धति के नाम से जाना जाता है। इस प्रकार वैज्ञानिक पद्धति तथ्यों का अवलोकन, वर्गीकरण और उनका निर्वचन है। सामाजिक तथ्यों की जानकारी प्राप्त करने के लिए चाहे जिस विधि को अपनाया जाय, उसकी मौलिक शर्त है, प्राप्त आंकड़ों की सत्यापन योग्यता, वैज्ञानिक पद्धति के माध्यम से जो तथ्य प्राप्त होते हैं, वे निष्पक्ष और यथार्थ हैं तथा उनके सत्यापन की जाँच की जा सकती है। कार्ल पियर्सन ने पद्धति की विवेचना करते हुए लिखा है कि -

'सत्य का और कोई संक्षिप्त मार्ग नहीं है, बह्माण्ड का ज्ञान प्राप्त करने के लिए वैज्ञानिक पद्धति के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं।'

वैज्ञानिक पद्धति की परिभाषा

(Definition of Scientific Method)

विभिन्न विद्वानों ने वैज्ञानिक पद्धति की अवधारणा को स्पष्ट किया है। इन विद्वानों द्वारा दी गयी वैज्ञानिक पद्धति की परिभाषाएँ इस प्रकार है-

(1) लुण्डबर्ग 'विस्तृत भाषा में वैज्ञानिक पद्धति तथ्यों का व्यवस्थित अवलोकन, वर्गीकरण और निर्वचन है।'

(2) बर्टेण्ड तथा अन्य 'प्रकृति में नियमितता के निर्धारण और वर्गीकरण में प्रयुक्त प्रणाली को वैज्ञानिक पद्धति कहा जा सकता है।'

(3) कार्ल पियर्सन के अनुसार वैज्ञानिक पद्धति में निम्नलिखित लक्षण पाये जाते हैं-

(i) तथ्यों का सतर्क एवं शुद्ध वर्गीकरण तथा उनके सह-सम्बन्ध और क्रम का अवलोकन,

(ii) रचनात्मक कल्पना की सहायता से वैज्ञानिक नियमों की खोज,

· (iii) आत्म-आलोचना तथा समस्त सामान्य बुद्धि वालों के लिए सामान्य मान्यता की अन्तिम कसौटी।

सामाजिक अनुसंधान में प्रयुक्त वैज्ञानिक पद्धति की परिभाषा, तथ्यों के व्यवस्थित संकलन, वर्गीकरण और सत्यापन योग्यता से की जा सकती है।

वैज्ञानिक पद्धति की विशेषताएँ

(Characteristics of Scientific Method)

वैज्ञानिक पद्धति की प्रमुख विशेषताओं को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) उपकल्पना का निर्माण (Formulation of Hypothesis) उपकल्पना वैज्ञानिक पद्धति का पहला चरण है। सामाजिक अनुसंधान के सम्पादन में कार्यकारी अनुमान को उपकल्पना कहा जाता है। लुण्डबर्ग ने उपकल्पना की परिभाषा करते हुए लिखा है कि "एक उपकल्पना एक सामयिक या कामचलाऊ सामान्यीकरण है, जिसके वैधता की जाँच शेष रहती है।" इसी प्रकार यंग ने

लिखा है कि 'एक कार्यवाहक विचार जो उपयोगी समाजशास्त्र : बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर-1 खोज का द्वार बनता है, कार्यकारी उपकल्पना के नाम से जाना जाता है।'

वैज्ञानिक पद्धति में सबसे पहले विषय का चुनाव किया जाता है। विषय का चुनाव किस प्रकार किया जाये ? विषय का चुनाव करते समय पूर्व अनुमान, पृष्ठभूमि, अनुभव और कल्पना की आवश्यकता होती है। इस प्रकार कल्पना और अनुभव के आधार पर वैज्ञानिक पद्धति को आगे बढ़ाना ही उपकल्पना है।

(2) यंत्रों का चुनाव (Selection of Apparatus)- अध्ययन वस्तु की उपकल्पना निश्चित हो

जाने के बाद अनुसन्धानकर्ता उन यन्त्रों या साधनों का चुनाव करता है जिसकी सहायता से वह अपने अध्ययन को आगे बढ़ा सकता है। ये यंत्र है प्रश्नावलियाँ, अनुसूचियाँ, टाइपराइटर, टेलीप्रिन्टर, टेपरिकार्डर आदि।

(3) अवलोकन (Observation)- अवलोकन का अर्थ है देखना। यहाँ से वास्तविक अनुसन्धान प्रारम्भ होता है। अनुसन्धानकर्ता अध्ययन-वस्तु का अवलोकन करता है। यह अवलोकन सहभागिक और असहभागिक दोनों प्रकार का हो सकता है। अवलोकन के द्वारा सूक्ष्म वस्तुओं का वास्तविक ज्ञान प्राप्त होता

है।

(4) सत्यापन (Verification)- जो अवलोकन किया गया है, उसके प्रामाणिकता की जाँच को ही सत्यापन कहा जाता है। सत्यापन की जाँच दो प्रकार से की जाती है, उसी समस्या का दुबारा अवलोकन या

उसी प्रकार की अन्य समस्याओं का अवलोकन ।

(5) **लिखना** (Recording)- सत्यापन की जाँच हो जाने पर उसे ठीक उसी प्रकार लिख लिया जाता है, जिस प्रकार कि उसे देखा है। लिखने में व्यक्तिगत रुचि को स्थान नहीं देना चाहिए।

(6) वर्गीकरण (Classification)- वर्गीकरण शब्द वर्गों की ओर संकेत करता है। अध्ययन-वस्तु में अनेक बातें समान प्रकृति की रही होंगी। यह प्रकृति दूसरी

वस्तु से भिन्न भी रही होगी। अतः एक ही प्रकृति की विशेषताओं को भिन्न-भिन्न वर्गों में विभाजित कर दिया जाता है ताकि प्रकृति के आधार पर एक को दूसरे वर्ग से

भिन्न किया जा सके।

(7) सामान्यीकरण (Generalization)- यह अनुसन्धान की अन्तिम अवस्था है। इसे वैज्ञानिक नियम (Scientific law) कहा जा सकता है। अनुसन्धान के अवलोकन, सत्यापन और वर्गीकरण से जो निष्कर्ष निकलते हैं उनके आधार पर सामान्य नियमों (General laws) का निर्माण कर लिया जाता है। इन नियमों को कसौटी पर कसा जा सकता है। इनके आधार पर भविष्यवाणी भी की जा सकती है। ये सिद्धान्त प्रमाणित होते हैं।

(8) वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Scientific Attitude)- वैज्ञानिक पद्धति विज्ञान का तरीका है। इसके अतिरिक्त विज्ञान की कुछ कसौटियाँ होती हैं, जिन पर विज्ञान के सत्यापन की जाँच की जा सकती है। विज्ञान मंजिल है, वैज्ञानिक पद्धति इस मंजिल तक पहुँचने का रास्ता है। मंजिल तक पहुँचने के लिए कुछ परिश्रम या धैर्य से काम लेना पड़ता है। जिस परिश्रम और लगन से निर्धारित रास्ते से मंजिल तक पहुँचा जाता है, वही वैज्ञानिक दृष्टिकोण है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण के निम्न तत्व होते हैं-

(a) जिज्ञासा (Curiosity)- किसी वस्तु को जानने की इच्छा को ही जिज्ञासा कहते हैं। यह जिज्ञासा अनुसंधान करने के लिए प्रेरित करती है। जब तक किसी वस्तु के बारे में जानने की इच्छा बलवती नहीं होगी, अनुसंधान संभव नहीं है।

(b) कर्मविषमता (वैषयिकता) (Objectivity)- अनुसंधान के दौरान जो तथ्य प्राप्त हुए हैं, उन्हें

अपने दृष्टिकोण से न देखकर अनुसंधान की गयी वस्तु को उसी रूप में देखने की प्रवृत्ति को ही कर्मविषमता कहते हैं। यह तथ्य अत्यन्त ही महत्वपूर्ण होता है। अनुसंधानकर्ता तटस्थ होकर अनुसंधान करता है तभी उसे अटल सिद्धान्तों की प्राप्ति होती है। अनुसंधान करते समय इसके कर्ता को भय से दूर रहना चाहिए। उसे व्यक्तिगत आशा नहीं करना चाहिए और अपने पूर्व-विचार और दृष्टिकोणों से प्रभावित होना चाहिए।

(c) धैर्य (Patience)- अनुसंधानकर्ता को अपने अध्ययन के दौरान अनेक बार असफलताओं का सामना करना पड़ता है, किन्तु इससे अनुसंधानकर्ता को धैर्य और निश्चय नहीं खोना चाहिए। ऐसा करने से अनुसंधान संभव नहीं हो सकेगा।

(d) साहस (Courage) अनुसंधानकर्ता में अटूट साहस का होना अनिवार्य है। इसी आधार पर ही अनुसंधान पूरा हो सकता है। यदि अनुसंधानकर्ता साहस खो देगा, तो अनुसंधान संभव नहीं हो सकेगा।

(e) कठोर परिश्रम (Hard work) अनुसंधानकर्ता को कठोर परिश्रमी भी होना चाहिए। कोई अनुसंधान परिश्रम के अभाव में पूर्ण होना असम्भव है। एक अनुसंधानकर्ता तभी अपना अनुसंधान पूरा कर सकता है, जबकि उसमें कठोर परिश्रम की शक्ति हो।

(f) रचनात्मक विचारशक्ति (Creative Imagination)- हर एक व्यक्ति में विचारशक्ति होती है,

किसी में निर्माणक और किसी में विध्वंसक। अनुसंधान के लिए निर्माणक विचारशक्ति आवश्यक है। निर्माणक

विचारशक्ति के आधार पर ही सिद्धान्तों का निर्माण किया जा सकता है।

विज्ञान की व्याख्या और वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर विज्ञान की निम्न विशेषताएँ निर्धारित की जा

सकती है -

(i) जो वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा प्राप्त किया गया हो,

(ii) जिसमें 'क्या है' का वर्णन किया गया हो,

(iii) जिसकी सत्यता को परीक्षणों द्वारा प्रामाणित किया जा सके

(iv) जिसके नियम सार्वभौमिक हों,

(v) जिसमें 'कार्य-कारण' के सम्बन्धों की व्याख्या हो, और

(vi) जिसमें भविष्यवाणी करने की शक्ति हो।

5.4 समाजशास्त्रीय अध्ययन का मानवीय उन्मुखीकरण

[The Humanistic Orientations to Sociological Study]

पिछली उपलब्धियों और जिन रास्तों से गुजरकर कोई ज्ञान या अनुशासन (displine or body of Knowledge) यहाँ तक आ पहुँचा है, पर्यावलोकन परिप्रेक्ष्यगत किया जाना चाहिए, ऐसा होता भी है कि अपनी कमियों के व्यक्ति, संस्था अथवा कोई शास्त्र सदैव संकोच स्वीकार करता है। समाजशास्त्र की वैज्ञानिकता की कसौटियों (Criteria for Science) का प्रश्न भी ऐसा है। यह सोच सामयिक है, जबकि समाजशास्व अपने इतिहास के चौराहे (at the turning point) पर खड़ा है। समाजशास्त्र का पुरातन पाठ्यक्रम से छुटकारा पाने के लिए इसके सभी अन्तराष्ट्रीय मानदण्डों के जरिये लोकप्रियता और बाजारवादी उदारीकृत मानदण्डों के जरिये लोकप्रियता और बाजारवादी उदारीकृत आर्थिक व्यवस्थाओं के दबाव से बचाने की कोशिश हो जो वैज्ञानिक एवं मानवीय दृष्टिकोण से हो सकती है। अपनी भाषा में पढ़ा गया समाजशास्त्र और अपने देश, काल की परिस्थितियों का प्रतिबिम्बन (Reflection) होना चाहिये। आज की बहुभाषीय दुनिया में समाजशास्त्र की जगह (Situating Sociology) स्थायी हो।

भौतिक विज्ञान और सामाजिक विज्ञान

जड़ पदार्थ अचेतनशील अवस्थाओं के भौतिक क्रियाकलाप का अध्ययन भौतिक विज्ञानों के शुद्ध एवं व्यावहारिक शाखाओं में किया जाता है। भौतिक शास्त्र और गणित, रसायन को बहुत पहले विकसित होने का अवसर मिला, भौतिक विज्ञानों की प्रौढ़ता के समक्ष समाजशास्त्र शीशुवत है। समाजशास्त्र के जनक ऑगस्त कॉम्ट वैज्ञानिक दर्शन कहते हैं तो कार्लमार्क्स वैज्ञानिक समाजवाद। समाजशास्त्र के दर्शन की विकास यात्रा पर भौतिक विज्ञानों के दार्शनिक छाप स्पष्ट पाया जाता है। हरबर्ट स्पेन्सर अपने उद्विकास की अवधारणा जीव विज्ञान से ग्रहण किये। प्रकृत्तिवादी परम्परा के विचारक कॉम्टे, स्पेन्सर, मिल वार्ड आदि भौतिक विज्ञान पद्धतियों को समाज विज्ञानों के लिये उपयुक्त मानते हैं। यांत्रिक प्रारूप और जैवकीय प्रारूप (Machanistic and Organistic) से अध्ययन किया जा सकता है। स्पेन्सर का मत है कि सामाजिक नियम

प्राकृतिक नियमों के अनुरूप निर्मित किये जा सकते हैं। वार्ड का कहना है कि विज्ञान ज्ञान का सार्थक और सार्वभौमिक तरीका है। सामाजिक चिंतन के इतिहास पर ध्यान दे तो पायेंगे धर्म, मिथक तात्विक (Metaphysical) अवस्था से गुजरती हुयी प्रत्यक्षवाद तथा विज्ञानवाद तक सिद्धान्तों की यात्रा हुयी है। वार्स एन्ड वेकर कहते हैं कि पवित्र समाज (Sacred & Profane) से लेकर धर्मनिरपेक्ष समाज (Secular Society) की अवस्था पर पहुँचे है। प्राकृक्लिपि समाज (Preliterate Society) में विज्ञान आज जैसा नहीं था, परन्तु ज्ञान का पीढ़ियों के बीच हस्तांतरण मौखिक ढंग से हुआ। निरीक्षण, परीक्षण और वर्गीकरण उन्नीसवीं सदी का उपागम है। ऐतिहासिक तुलनात्मक पद्धति भी प्रयोगसिद्ध मानी गयी। कॉम्ट के विज्ञान के वर्गीकरण देखे जिसमें गणित सभी विज्ञानों का आदि स्रोत है। समाजशास्त्र के सबसे निकट जीव विज्ञान (Biology) रखा। फिर रसायनशास्त्र, भौतिकी, एवं खगोलविज्ञान इस तरह सबसे नीचे का विज्ञान समाजशास्त्र से सबसे दूर है। कॉम्ट ने बताया कि खगोलविज्ञान से जीवशास्त्र तक की जो प्रगति है उसके आधार पर समाज के वैज्ञानिक अध्ययन

हेतु एक नये विज्ञान की स्थापना का समय आ गया है। 1830 में कॉम्ट ने सामाजिक भौतिकी (Social Physics) का नाम दिया और 1938 तक आते-आते "Sociology" नामकरण कॉम्ट ने किया।

प्रत्यक्षवाद का वैज्ञानिक आग्रह स्पष्ट है, यह मानकर चलता है कि यह मानवीय दुनिया एक बँधी- बँधायी व्यवस्था है, जिसका निश्चयात्मक विश्लेषण वैज्ञानिक पद्धति से किया जा सकता है और यह वैज्ञानिक पद्धति कार्य-कारण (Cause-effect) पर आधारित है।

एक पद्धति के रूप में विज्ञान

प्वाइन्कर के अनुसार विज्ञान तथ्यों (Facts) से उसी प्रकार बना है जैसे पत्थरों से मकान, किन्तु तथ्यों का संकलन या ढेर मात्र मकान नहीं है, बल्कि व्यवस्थित जमावट हो तभी मकान का ढाँचा (structure) खड़ा दिखता है। चरणबद्धता तथ्यों की होनी आवश्यक है, अर्थात अवलोकन, परीक्षण वर्गीकरण सम्बन्धी सभी शर्तें निहित हैं। वर्तमान परिपार्श्व यह है कि प्राकृतिक विज्ञानों

की पद्धति और सामाजिक विज्ञानों की पद्धति निकटतम आ गयी है। अब विज्ञान में क्रमबद्धता (Order) संरचना (Structure) तथा सम्बन्ध (Relations) और संभव्यता (Probability) को महत्व दिया जाता है। बीसवीं शताब्दी में विज्ञान के इस बदलते हुये आदर्श के अनुसार सामाजिक अनुसंधान भी वैज्ञानिक हो सकता है।

इस दिशा में रावर्ट मर्टन के कुछ तर्क उल्लेखनीय हैं:-

(1) प्राकृतिक विज्ञान पुराना और प्राचीन है। 350 वर्षों का इतिहास बनाये हुये, जबकि समाज विज्ञान अपेक्षाकृत नया तो है ही, दोनों की परिपक्वता का (Level of Maturity) अन्तर रहेगा ही।

(2) विषय की स्वतंत्र इयत्ता हेतु स्वयम् का प्रयोगसिद्ध तरीका अपनाना चाहिए। भौतिक विज्ञानों प्रारूप ही विज्ञान का एकमात्र प्रारूप नहीं है।

(3) भविष्य में समाज वैज्ञानिक तरीके या पद्धति के विकसित होने की पूरी संभावना है। तकनीक का विकास सामाजिक अनुसंधान में निरन्तर हो रहा है। पद्धति के सम्बन्ध में प्रयोगशाला न होने का कारण भी कहा जाता है, जबकि पूरा समाज ही समाजशास्व की प्रयोगशाला है। ऐसे समाज के अध्ययन की पद्धति वस्तुपरक (Objective) एवं अनुभवाधित होगी। दुर्खीम 'सामाजिक तथ्यों' (Social Facts) को जानने पर बल देते हैं तो मैक्स वेवर 'आदर्श प्रारूप' (Ideal Type) अध्ययन विधि में प्रस्तुत किया

है।

विज्ञान की विचारधारा (The Ideology of Science)

निरन्तर खोजों और तकनीक के चरमोत्कर्ष को देखा जा सकता है। दूसरी ओर अधिभौतिक (Metaphysical) तथ्य भी हैं जैसे वरमूडा त्रिकोण के रहस्य में उलझे वैज्ञानिक और चन्द्रमा पर पैर रखने के बाद भी चन्द्रमा का लोकोत्तर अस्तित्व देवता समझने की अभी भी मान्यता बरकरार है। मनुष्य का जिज्ञासु मन ढूँढ़ता रहता है। वह ज्ञान के छिपे अंश की तलाश में जुटा रहेगा। एक घटना की व्याख्या कई तरीके से की जा सकती है। कार्य-कारण सम्बन्ध तार्किकता को लेकर चलता है। विज्ञान की विचारधारा क्या, क्यों, कैसे प्रश्नों का

सहज विस्तार है, इसमें अगर तब (if, but) का लघु योग भी दिखता है- जैसे भारतीय परिस्थिति कृषि, मौसम सम्बन्धी पूर्वानुमान होते हैं। पुराने कवि घाघ की कहावतें भी किसानों को याद रहती हैं। अवर्षा की कई व्याख्या हो सकती है। अषाढ़ में दक्षिण-पश्चिम कोने की हवा सूखे का अंदेशा सूचित करती है। यह अगर और तब मान्यता है, जो विज्ञान की वैचारिकी के निचले स्तर पर शामिल की जा सकती है। यह प्रयोगसिद्ध की जगह स्वयम् सिद्ध कथन ही मात्र है।

वैज्ञानिक की कार्यप्रणाली उसे मस्तिष्क में समस्या के तानेबाने से लेकर प्रयोगशाला में अनुमानों व परिणामों तक होती है। विज्ञान का कैनवास विकासमान है।

समाजशास्त्र में वैज्ञानिक मनोवृत्ति हेतु हम विज्ञान की विचारधारा से देखें तो दो तथ्य सर्वप्रमुख हैं :-

(1) **वह कसौटी** जिस पर ज्ञान को परखा जा सके।

(2) **वह विधि** जिसके अनुसार ज्ञान प्राप्त किया जा सके।

इन दोनों के द्वारा जो समझ (Understanding) प्राप्त होती है, उसे वैज्ञानिक समझ (Scientific Temper) कहते हैं। समाजशास्त्र किस प्रकार का विज्ञान है? यह प्रश्न महत्वपूर्ण है। वैज्ञानिक ढंग से देखा जाना चाहिये कि कोई विचार कैसे आया और उसके प्रमाण क्या है? क्या वह पुस्तकीय ज्ञान अथवा निजी अनुभवों से मिला तो इसके प्रमाण क्या है ? विज्ञान स्वयम् एक सत्य नहीं है, परन्तु यह सत्य जानने का एक शोध मार्ग है। समाजशास्त्र के संदर्भ में ऐतिहासिक पद्धति, तुलनात्मक पद्धति, प्रयोगसिद्ध पद्धत्ति प्रयोग **की जाती है। वैज्ञानिक** प्रवृत्ति के विश्लेषण मे हम पाते हैं कि विज्ञान की पद्धतियों ने ऊँचे स्तर को प्राप्त किया है। बराबर एक तकनीक से आगे दूसरी तकनीक, फलस्वरूप विज्ञान के अभिशाप दुनिया को 10 बार अणुबम से नष्ट करने की महाशक्ति से डर है, आइन्सटीन और गाँधी जी के अहिसा सिद्धान्त का नाम है परमाणु बम मुक्त दुनिया की बेनर लिये बच्चों का प्रदर्शन होता है।

सामाजिक तथ्यों का परिमाणीकरण (Quantitieation)

अत्यन्त परिष्कृत मॉडल, सूत्रबद्ध फार्मूले आज जनगणन्ता विभिन्न सामाजिक सर्वेक्षणों में उच्च शक्ति के कम्प्यूटर से निर्वचन किये जाते हैं। सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों का परिमाणीकरण हो रहा है। आँकड़े (Datas) आज सभी तथ्यात्मक विश्लेषण का आधार है- जैसे वर्ष भर में जन्म, मृत्यु, आत्महत्या, विभिन्न प्रकार के अपराध, व्यवसाय, आर्थिक संगठन, आय व उपभोग का वितरण विवाह, तलाक आदि की गणात्मक जानकारी से राष्ट्रीय प्रतिदर्श संगठन (NSSO), नेशनल इनफॉरमेटिक्स सेन्टर (NEC) समद्ध हैं। जानकारी हर स्तर की उपलब्ध है। यह समाजशास्त्र के साथ वैज्ञानिक योजना (A Science Policy of the Nation) का उपयोग है।

समाजशास्त्र किसी भी वैचारिकी से मुक्त है ?

दोषी एवं जैन का कहना है कि एक विज्ञान की दृष्टि से समाजशास्व किसी भी वैचारिकी विश्वास और मूल्यों से मुक्त हो सकता है। वैचारिकी वस्तुतः किसी भी एक समूह के विश्वास एवं मूल्य होते हैं, इससे तटस्थता (Value Neutrality) अपेक्षित है। मूल्य सापेक्ष निर्णय (Value Judgement of Reality) से तटस्थ होना चाहिये, परन्तु प्रायः इसकी गुंजाइश समाज में कुछ ज्यादा है। समाजशास्त्रीय साहित्य में यथा स्थिति (Statusquo) समर्थक और पूँजी की पक्षधरता लेने (Ethno Centric) का आरोप होगा तो कल संघर्ष और अशान्ति मूलकता को वैचारिक स्तर पर 'गलत' साबित करने में सहायक होने का आरोप। मार्क्सवाद के अधिक प्रभाव का आरोप होगा तो उत्तर आधुनिकता को चर्चा में लाने का उपक्रम लाने वाला, ऐसी बहसों से भी समाजशास्त्र का वैचारिक आंदोलन आगे बढ़ा है, भले ही वह नयी वास्तविकता हो। हेरालोम्बोस, पीटर वर्गर, सी राइट मिल्स जैसे नये विचारक समाजशास्व के चरित्र को वैज्ञानिक नहीं मानते, इसके विज्ञान बनने में मानवीय और तकनीकी कठिनाइयाँ हैं। नये विकल्प आखिर क्या हैं? पिछले पचास वर्षों में नये सैद्धान्तिक कोटियों का आगमन हुआ है, जो समाजशास्त्र के मानवीय पक्षों पर ध्यान देते अन्तः क्रियावाद, प्रतीकात्मक अन्तःक्रियावाद, घटना विज्ञान (Phenomenology) प्रत्यक्षवादी मान्यताओं को हाथ नहीं लगाते । विज्ञान और नैतिकता का प्रश्न आज अहम् है। क्लोनिंग को मानव के भविष्य और विवाह, प्रजनन, सेक्स, नैतिकता से देखा जा रहा है। 'क्लोनिंग से मानव प्रतिरूपण का

वैज्ञानिक शोध और प्रयोगशाला में खोजों का पेटेन्ट (Patent) पर दुनिया में एकमत नहीं, अमेरिकी काँग्रेस अस्वीकार कर चुकी है। चोरी छिपे बनाये परमाणु बम के खतरे कम नहीं हुये हैं, अतः आज विज्ञान को सामाजिक वैधता (Social legimization) की आवश्यकता खुद पड़ गयी है। आलोचक कहते हैं जिस दिन मानव क्लोनिंग बन जायेगा, उस दिन समाज का अस्तित्व, इसकी संस्थायें खतरे में होंगी और विज्ञान की नये उन्नत पद्धतियों के लिये विरोध का स्वर उठेगा।

क्लोनिंग की प्रयोगशाला में चल रही गतिविधियाँ, परामानवीय नहीं हैं। मेडिकल, इंजीनियरिंग (जेनेटिक इंजीनियरिंग, बायोटेक्नोलॉजी) अनेक क्षेत्रों में मानव के भविष्य से जुड़े प्रश्न रोज खड़े किये जा रहे हैं।

5.5 समाजशास्त्र की मानविकी प्रकृति(Humanistic Nature of Sociology)

अतिशय वैज्ञानिक आग्रहवाद के चलते मानवीय पहलू की प्रधानता वाले समाजशास्त्रीय उन्मेष 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उभर कर आया है। समाजशास्त्र की नवीन शाखायें जैसे साहित्य का समाजशास्त्र, विमर्श एवं समाज (Discourse and Society) सव आल्टर्न सोशियोलॉजी, आदि मानवीय क्रपल हैं।

नरेन्द्र कुमार सिंधी का कहना है कि "समाजशास्त्र ने भौतिक विज्ञान के प्रारूप को यथावत स्वीकार कर उसके अनुरूप पद्धति शास्व रचने का प्रयास किया है, पर इसमें उसे सफलता नहीं मिली। किसी स्तर पर सामाजिक यथार्थ व प्राकृतिक यथार्थ की प्रकृति में अन्तर है, अतः विषय की प्रवृति के अनुरूप पद्धति का निर्माण हो, ऐसा भी एक विचार है।" (सिंधी 1998:13)

बोध (Understanding) को मानवीय समाजशास्व में महत्ता मिली है। मानविकी समाजशास्त्र की कुछ विशेषतायें इस प्रकार हैं-.

(1) प्रवृतिवाद की सर्वोपरि महत्ता के प्रतिक्रियास्वरूप मानवीय गुणों पर केन्द्रित पद्धति पर जोर है, समाजशास्त्र बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर-

विषयपरकता पर बल दिया जाता है। वास्तुनिष्ठता के समक्ष विषय निष्ठता (Subjectvity) का भी स्थान होता है।

(2) समाज के यथार्थ को समझने के लिये अर्थमूलक पद्धति उपयोगी है। व्यक्ति किस तरह अपने को परिस्थिति में विद्रोही, समझौतावादी और मध्य मार्ग (Pace maker) हो जाता है।

(3) उद्देश्य, अभिप्रेरण और परिकल्पना का अधिकार प्रत्येक कर्ता (Actor) की क्रिया में दिखता है। नियम, मानदण्ड, मूल्य- प्रतिमान, भूमिका, प्रस्थिति सभी मानवीय चरित्र में गहराई से मौजूद हैं। इनकी नाटकीयता भी किसी ड्रामे में किये जाने वाले पात्रों में 'मुखौटा' छवि निर्माण से प्रतिध्वनित होती है। समाज में व्यक्ति अपनी लिपी (Life script) स्वयम् लिखता है।

एंथोनी गिडेन्स ने भरपूर साहित्य रचा है। मानविकी पद्धति के (Anthony Giddens (1984) The constitution of society, Positivism and Sociology (1976), Capitalism and Modern Social Theory (1971), Central Problems in Sociological Theory (1979) Profites and critic in Social Theory (1983), Minds and Self Identity (1991)-) के प्रबल सिद्धान्तकार हैं। विकास बनाम पर्यावरण, राष्ट्रबनाम राज्य, राष्ट्र निर्माण (Nation Building) के समक्ष अनेक चुनौतियाँ गिडेन्स के लेखन में उभरा है। गिडेन्स की पुस्तक राष्ट्र-राज्य और हिंसा (1984) में राज्य के विकास और सामाजिक सम्बन्धों पर अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष के प्रभावों का विश्लेषण करने में समाजशास्त्र की असफलता की कठोर आलोचना की। गिडेन्स ने आधुनिकता के परिणामों (1992) में समाज के एक सिद्धान्त के रूप में उत्तर आधुनिकता की भी आलोचना की है। गिडेन्स का मत है कि आधुनिकता को परावर्तकता (Riflexvity) और उच्च आधुनिकता को समाज के विकास का एक निश्चित स्तर या चरण के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।

गिडेन्स की एक ओर पुस्तक है "धर्मनिष्ठता में बदलाव (1992) जिसमें उद्वेगों के समाजशास्त्र का विश्लेषण किया है।" (रावत, पृ.103) मानविकी उन्मेष के समाजविज्ञान के समर्थक सी. राइट मिल्स का कहना है कि समाजशास्त्र और कुछ न होकर एक प्रकार की कल्पना शक्ति है, जो समाजशास्वी को समाज की

व्यवस्था में सहायता देती है। "सोशियोलॉजिकल इमेजीनेशन मिल्स के अनुसार एक मानवतावादी समाजशास्त्री हमारे जीवन के सामाजिक व्यक्तिगत और ऐतिहासिक आयामों के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है। अमूर्त अनुभववादी समाज को शुद्ध वस्तुनिष्ठ धरना मानकर नियमों की खोज में रत रहते हैं। मात्र आँकड़े ही सच नही हैं- जैसे किसी अभिभव सर्वेक्षण में 70% पक्षकारों और 30% विरोध में व्यक्त राय का मात्र वस्तुनिष्ठ अध्ययन या आँकड़ों की बाजीगरी जैसा ही है, अच्छा वह है कि वे विषय परक 'राय' (opinion) भी देखे जायें।

मिल्स ने आधुनिक विज्ञानवादी पद्धतियों को मात्र आडम्बर की संज्ञा देते हुए इनके स्थान पर सामाजिक दायित्व और वास्तविक मानवतावादी सरोकार को प्रमुखता दी है।

नये समाजशास्त्री रोज नये सिद्धान्त और दृष्टिकोण का प्रतिपादन करने में जुटे हैं। पीटर बर्गर का दृष्टिकोण संक्षेप में देखें, समाजशास्त्र एक ऐसा विषय है जो मानवीय विश्व को खुशहाल बनाने के उद्देश्य से मानवीय विश्व के प्रति अधिकाधिक जागरुकता को प्रोत्साहित करता है। समाजशास्त्र अपने आप में विज्ञान है। कई अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशन ग्रहों (पेग्विन, कांलिस, रूपा, फोन्टाना आदि) ने पीटर बर्गर, मिल्स के लेखन को दुनिया भर को उपलब्ध कराया है। पेपर बैंक संस्करण की लोकप्रियता का दौर समाजविज्ञान की लोकप्रियता से जुड़ा रहा है। आम विद्यार्थी को मानविकी समाजशास्त्र की दोनों कृतियाँ इनविटेशन टू सोशियोलॉजी और सोशियोलॉजिकल इमैजिनिशन (मिल्सकृत) ने प्रभावित किया था, तथा यह दृष्टिकोण कि समाजविज्ञान आखिरकार स्नातक/स्नातकोत्तर कक्षाओं में पढ़ने का आग्रह क्यों? किसलिये ? समाजशास्वी अब गैर सरकारी संगठनों में काम करता है, आंदोलन ग्रस्त क्षेत्रों में जाता है, विस्थापन और पुनर्वास की समस्या में वह सक्रियावादी है (Sociological Activitism) परामर्शदाता का काम सँगठनों में देता है,

पीटर बर्गर का पुनः उल्लेख करना चाहिये-

(1) समाजशास्त्र को सामाजिक यथार्थता का पता लगाने हेतु समाज को बेनकाब (Unmark) करना चाहिये ।

REGRET HOY HIT

(2) अनादरणीय क्षेत्रों की ओर (Less researched area) ध्यान देना चाहिये।

(3) समुदाय के जीवन की अधिकृत तस्वीर देनी चाहिये।

(4) समाज की असलियत को, परम्परा को एक तरफ रखकर सामने लाना चाहिये।

(5) समाजशास्व का मतलब सामाजिक चेतना है। जैसा कि गिडेन्स ने पहले कहा है कि आज जैसी दुनिया है केवल कुछ वर्षों पहले वैसी नहीं थी, इस बदलती दुनिया की बदलती व्यवस्था का अध्ययन करता है। यह मानविकी समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से संभव है। गिडेन्स ने समाजशास्त्र के अर्थ को आधुनिक समाजों के संदर्भ में अधिक वृहद स्वरूप में रखा है और यह नयी लीक दिखाता है। तथ्यात्मक प्रश्न, तुलनात्मक प्रश्न, विकास सम्बन्धी और सैद्धांतिक प्रश्न समाजशास्त्र की किसी भी परिभाषा देने के लिये गिडेन्स बताते हैं। आज प्रत्येक देश का अपना समाज विज्ञान है। भले ही अनेक विचारक उस देश के बजाय बाहर के पढ़ाये जाते हों। समाजशास्त्रीय पूछताछ (Sociological Enquiry) अब झिझक के बजाय उदार किस्म के उत्तरों से पूर्ण मिलता है।

मानविकी पद्धति द्वारा सामाजिक यथार्थ के अध्ययन के प्रमुख उपागम इस प्रकार है:-

(1) एथनोमैथओलॉजी (2) फिनेमिनालॉजी

(3) रेडिकल एप्रोच (4) प्रतीकात्मक अन्तः क्रियावाद

नृजाति पद्धति शास्त्र (Ethnomethodology) मुख्य रूप से यह उपागम गारफिकेल, लुकभान, सिकरौल आदि प्रमुख विचारक हैं यह जोर देता है:

(1) दिन-प्रतिदिन की क्रियायें

(2) भाषा व उसका सामाजिक पक्ष

(3) स्थितियों के मानदण्डात्मक पक्ष एवं व्यक्तियों के द्वारा विशिष्ट संदर्भ स्थितियों में मानदण्डों के अनुपालन की प्रक्रियाओं की वास्तविकता ।

फिनेमैनालॉजी (प्रघटनाशास्त्र) हर्सल एवं शूज्ज में नींव रखी, कहना है कि हर तथ्यपरक वर्णन जो कि वस्तुपरक विश्व के बारे में प्रस्तुत किया जाता है वह दैनिक बोलचाल की भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। तात्कालिक अनुभव (Centextual Experince) में हर यथार्थ एवं सत्य को आधार में समझा जा सकता है।

संघर्षवादी उपागम (Radicalism) पद्धति भी आज प्रासंगिक है, राइट मिल्स का विशेष योगदान है। युद्ध, तनाव, अशान्ति के सामाजिक कारणों को देखा जाये तो मानवीय तत्व प्रधान है। ज्ञान मात्र ज्ञान के लिये बल्कि प्रश्न यह है कि ज्ञान किसके लिये (Knowledge for whom) एकेडेमिक समाजशास्त्र इन्हें स्वीकार्य नहीं है। परम्परागत समाजशास्व औपनिवेशक चरित्र का है। आज हर देश में आन्दोलन अनेक शक्लों में हो रहे हैं। असन्तोष (Discontent) हर ओर, इनमें समस्यायें मानवीय है और रेडिकल एप्रोच से समाधान किया जा सकता है, क्योंकि उत्तपीड़न का विरोध सिखाना भी समाजशास्व का कार्य है।

प्रतीकात्मक अन्तः क्रियावाद (Symbolic Interactionism) का क्षेत्र और पद्धति नवीन है, भाषा संकेत (codes) पढ़े जाने चाहिये। सामाजिक अन्तःक्रियावाद एक निरन्तर प्रक्रिया है। स्व प्रस्तुतिकरण (Representation of self) आम व्यक्ति का निरन्तर क्षेत्र है। अर्थ (Meaning) वस्तु में निहित नहीं होते। यथार्थ का रूप बदलता रहता है।

5.6 मुख्य शब्द

1. वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Scientific Perspective):समाजशास्त्र का उद्देश्य समाज और मानव व्यवहार का वैज्ञानिक विधियों से अध्ययन करना है, जिससे तटस्थता और वस्तुनिष्ठता बनी रहे।

2. मानवीय मूल्यों पर ध्यान (Focus on Human Values):यह अध्ययन समाजशास्त्र को मानवीय संवेदनाओं और मूल्यों से जोड़कर सामाजिक सुधार और समस्याओं के समाधान की दिशा में काम करता है।

3. सामाजिक परिवर्तन और विकास (Social Change and Development):समाज में होने वाले परिवर्तनों और उनके प्रभावों का विश्लेषण कर समाज को अधिक समावेशी और प्रगतिशील बनाने पर बल देता है।

5.7 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

1 स्वर्णयुगगुप्तकाल

2 विरागभावना

3 पृथ्वीकोस्वर्गबनाना

4 देवसेना

5.8 संदर्भ ग्रन्थ

- प्रसाद, जयशंकर। (2019). स्कंदगुप्तः एकनाटक. नईदिल्ली: राजकमल प्रकाशन। ISBN: 978-8126710981.
- प्रसाद, जयशंकर। (2020). चंद्रगुप्त. वाराणसी: लोक भारती प्रकाशन।ISBN: 978-8180313025.
- शुक्ल, राम स्वरूप। (2021). जयशंकर प्रसाद का नाट्य साहित्यःएक अध्ययन. नई दिल्ली: साहित्य अकादमी।ISBN: 978-8126035039.

5.9 अभ्यास प्रश्न

1. समाजशास्त्रीय अध्ययनों में वैज्ञानिक तथा मानवीय अभिप्रेरण को समझाइए।

Explain scientific and humanistic orientation to sociological study.

2. वैज्ञानिक अभिप्रेरण क्या है। इसका समाजशास्त्र से क्या सम्बन्ध है ?

What is scientific orientation. What is its relationship with sociology.

3. मानवीय अभिप्रेरण को समझाइए।

Explain humanistic orientation.

इकाई -6

समाज एवं समुदाय [SOCIETY AND COMMUNITY]

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 समाज (Society)

6.4 समाज की विशेषताएँ (Characteristics of Society)

6.5 समुदाय (Community)

6.6 सामुदायिक भावना-समुदाय की आधारशिला(Community Sentiment-Foundation of Community)

6.7 सामुदायिक भावना में मनोवैज्ञानिक तत्व

6.8 सामुदायिक विघटन के कारण(Causes of Community Disintegration)

4.9 सारांश

4.10 मुख्य शब्द

4.11 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

4.12 संदर्भ ग्रन्थ

4.13 अभ्यास प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

समाज और समुदाय सामाजिक जीवन के दो अभिन्न पहलू हैं, जो मानव अस्तित्व और विकास की आधारशिला हैं। समाज एक व्यापक संरचना है, जिसमें विभिन्न संस्थाएं, परंपराएं, और सामाजिक प्रक्रियाएं शामिल होती हैं। यह मानवीय संबंधों, नियमों, और परस्पर सहयोग का परिणाम है। वहीं, समुदाय समाज का एक छोटा लेकिन सशक्त हिस्सा है, जो भौगोलिक, सांस्कृतिक, या भावनात्मक जुड़ाव के आधार पर व्यक्तियों को एक साथ लाता है। समाज और समुदाय दोनों का उद्देश्य मानव जीवन को व्यवस्थित, समृद्ध,

और सामंजस्यपूर्ण बनाना है। इनकी परस्पर क्रियाएं सामाजिक एकता, पहचान, और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। समाज और समुदाय के अध्ययन से मानवता की जटिलता और विविधता को समझने में सहायता मिलती है।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकेंगे।
2. विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकेंगे।
3. आर्थिक स्थिरता और विकास के उपायों का विश्लेषण कर सकेंगे।
4. समाज और समुदाय के संबंध में नीतिगत प्रक्रियाओं को समझ सकेंगे।
5. सामाजिक और आर्थिक समानता को बढ़ावा देने के तरीकों की पहचान कर सकेंगे।

6.3 समाज (Society)

'समाज' (Society-An Introductory Analysis) नामक पुस्तक के लेखक तथा प्रमुख समाजशास्त्री मैकाइवर ने लिखा है कि "समाजशास्त्र के अध्ययन में 'समाज' की अवधारणा सबसे महत्वपूर्ण है। कोई भी कमियाँ और दोष हों, सम्पूर्ण मानव इतिहास में समाज जीवन की सभी आवश्यकताओं को पूरा करने का सबसे महत्वपूर्ण आधार है। मानव जीवन में अनेक शब्दों का प्रयोग किया जाता है। इन शब्दों में समाज सर्वप्रथम और सर्वाधिक प्रचलित शब्द है। मानव जीवन और समाज अन्तः सम्बन्धित है। उन्हें एक-दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता है। प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू (Aristotle) का यह वाक्य अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है कि 'मनुष्य सामाजिक प्राणी है।'

समाज की अवधारणा (The Concept of Society)

समाजशास्त्र की अवधारणाओं में निम्नलिखित कारणों से समाज प्राथमिक एवं मौलिक है- (i) सामाजिक सम्बन्ध (Social Relation) समाजशास्त्र की मूल समस्या का अध्ययन समाज के द्वारा ही सम्भव है।

(ii) व्यक्ति और उनकी क्रियायें सामाजिक सम्बन्धों का निर्माण करती हैं। व्यक्ति का समाज से पृथक् होना सम्भव नहीं है। इस दृष्टि से भी समाज का अध्ययन आवश्यक है।

(iii) सामाजिक घटनाएँ और सामाजिक जीवन समाज में ही संभव है। इस दृष्टि से भी समाज का अध्ययन अनिवार्य है।

समाजशास्त्र की अवधारणा को समझने के लिए इसे निम्न भागों में विभाजित किया जाता है-

(1) समाज का सामान्य अर्थ (General Meaning of Society) साधारण बोलचाल की भाषा में समाज शब्द का प्रयोग 'व्यक्तियों के समूह' (Group of People) के लिए किया जाता है। जीवन के हर क्षेत्र में समाज शब्द का प्रयोग सबसे अधिक किया जाता है। जब हम एक से अधिक व्यक्तियों के संगठन को व्यक्त करना चाहते हैं, तो उसके लिए 'समाज' शब्द का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए देसाई समाज, आर्य समाज, अरविन्द समाज, बह्म समाज आदि। इस प्रकार साधारण बोलचाल की भाषा में समाज का अर्थ कुछ व्यक्तियों के समूह से लगाया जाता है। जब हम व्यक्तियों के समूह को समाज मान लेते हैं तो समाजशास्त्र की दृष्टि से इसे समाज नहीं कहा जा सकता है।

(2) समाज का समाजशास्त्रीय अर्थ (Sociological Meaning of Society) समाजशास्त्र समाज का विज्ञान है। जब समाजशास्व समाज का ही विज्ञान है, इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि इसके अन्तर्गत, 'समाज' के वैज्ञानिक अर्थ की विवेचना की जाये। जब समाजशास्त्र में 'समाज' शब्द का प्रयोग किया जाता है तो इसका तात्पर्य व्यक्तियों का समूह न होकर उनके बीच पाये जाने वाले सम्बन्धों की व्यवस्था से है। इस प्रकार समाज एक व्यवस्था (System) है और इस व्यवस्था का निर्माण अनेक सामाजिक सम्बन्धों के कारण होता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि 'समाज सदस्यों के बीच पाये जाने वाले

सम्बन्धों की व्यवस्था का नाम है।' मैकाइवर और पेज ने इसलिए कहा है कि 'समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है।'

(3) समाज की परिभाषा (Definition of Society) समाज की अवधारणा को समझने के लिए आवश्यक है कि प्रमुख समाजशास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत समाज की परिभाषाओं की विवेचना की जाये।

समाज की प्रमुख परिभाषाएँ निम्न हैं-

मैकाइवर और पेज "समाज रीतियों, कार्य-प्रणालियों, अधिकार और पारस्परिक सहायता, अनेक समूहों और विभाजनों, मानव-व्यवहार के नियन्त्रणों और स्वतंत्रता की एक व्यवस्था है। इस सतत् परिवर्तनशील जटिल व्यवस्था को हम समाज कहते हैं। यह सामाजिक सम्बन्धों का जाल है, और यह सदैव परिवर्तित होता रहता है।" मैकाइवर और पेज की इस परिभाषा में समाज के अयलिखित आधार बताये गये हैं-

(i) रीतियाँ (Usages) रीतियाँ समाज की आधार-शिलाएँ हैं। रीतियाँ मानव-व्यवहार का वह रूप होती हैं, जो समाज के द्वारा मान्यता प्राप्त होती हैं। जैसे कपड़ा पहनने की रीति, अभिवादन की रीति, विवाह करने की रीति आदि। रीतियों द्वारा सामाजिक सम्बन्धों का विकास होता है। उदाहरण के लिए विवाह की रीति-इसके द्वारा समाज में पति-पत्नी के सम्बन्धों का विकास होता है। रीतियाँ सम्बन्धों की स्थिरता का भी निर्धारण करती हैं। हिन्दू रीति से होने वाले विवाहों के सम्बन्ध अधिक स्थायी होते हैं, जबकि प्रेम-विवाह

में पति-पत्नी के सम्बन्धों में तनाव (Tensions) की सम्भावना अधिक रहती है।

(ii) कार्यप्रणाली (Procedures) प्रत्येक समाज में संस्थाएँ होती है। संस्थाओं का तात्पर्य नियम

या व्याख्या से है, जिसके आधार पर वह संस्था अपने कार्य का सम्पादन करती है। समाज के सदस्यों से संस्था के नियमों के अनुसार ही कार्य करने की अपेक्षा की जाती है। जैसे विवाह की कुछ प्रणालियाँ हैं, कुछ नियम हैं। इन नियमों के अनुसार विवाह करने से सम्बन्धों का विकास होता है। नियमों या कार्य-

प्रणालियों का जन्म सुविधाओं और आवश्यकताओं की दृष्टि से होता है, जिसमें विविधता का होना स्वाभाविक है। इस प्रकार जिन व्यक्तियों के नियम, कार्यप्रणालियाँ एक-सी हैं, उन व्यक्तियों के बीच सम्बन्धों में भी समानता पायी जाती है। इन कार्यप्रणालियों से समाज का रूप निश्चित होता है।

(iii) अधिकार (Authority) सामाजिक सम्बन्धों के निर्माण और विकास में अधिकारों का भी महत्वपूर्ण हाथ है। सामाजिक संगठन में अधिकार और कर्तव्यों की महत्वपूर्ण भूमिका है। अधिकार की धारणा के परिणामस्वरूप व्यक्ति अपने कर्तव्यों के प्रति जागरुक रहते हैं। अधिकार के अभाव में सामाजिक संगठन की कल्पना नहीं की जा सकती है। जैसे परिवार में मुखिया (Head of the Family) के अधिकार। इससे परिवार में व्यवस्था बनी रहती है। इसी प्रकार की अधिकार-सत्ता अन्य संस्थाओं पर भी लागू होती है। इस अधिकार की धारणा से सम्बन्धों का विकास होता है। जैसे परिवार में पिता-पुत्र, माँ-पुत्री तथा अन्य सदस्यों के सम्बन्ध ।

(iv) पारस्परिक सहायता (Mutual Aid) समाज सामाजिक सम्बन्धों की एक व्यवस्था है। सामाजिक सम्बन्धों के लिए पारस्परिक सहयोग और सहायता आवश्यक है। यह सत्य है कि समाज में समानता और विभिन्नता दोनों आवश्यक है, किन्तु समाज की उन्नति और विकास के लिए भिन्नता की अपेक्षा समानता अधिक महत्वपूर्ण है। सहयोग और सहायता के अभाव में समाज के जिन्दा रहने की कल्पना नहीं की जा सकती है। सहयोग और सहायता में वृद्धि होने से समाज का विस्तार होता है। सहायता की भावना वहाँ पर सबसे अधिक मात्रा में देखी जाती है, जब समाज के सामने कोई संकट आता है। ऐसी अवस्था में समाज के सदस्य एकता के सूत्र में बंध जाते हैं और इस प्रकार सामाजिक संगठन अधिक सुदृढ़ होता है।

(v) समूह और विभाजन (Grouping and Division) समाजशास्त्रीय भाषा में समाज एक विशाल व्यवस्था है। इस विशाल व्यवस्था का निर्माण अनेक समूहों और संस्थाओं के द्वारा हुआ है। समूहों और विभाजनों से तात्पर्य यह है कि समाज अनेक समूहों और संस्थाओं के द्वारा हुआ है। यह है कि समाज अनेक समूहों और संस्थाओं में विभाजित है। जैसे परिवार, पड़ोस, मोहल्ला, गाँव,

कस्बा, नगर, प्रान्त, राष्ट्र ऐच्छिक समितियाँ और धार्मिक आर्थिक तथा अन्य संस्थाएँ। यह आवश्यक नहीं है कि मनुष्य सिर्फ परिवार से प्रभावित होगा, बल्कि सभी संस्थाएँ और समितियाँ समान रूप से प्रभावित करेंगी। इन संस्थाओं में व्यक्ति स्वयं से प्रभावित होगा और इन्हें अपने अनुकूल ढालने का प्रयास करेगा। इससे अनेक प्रकार के सम्बन्धों का विकास होगा।

(vi) मानव-व्यवहार का नियन्त्रण (Control of Human Behaviour) समाज अनेक समूहों और संस्थाओं से मिलकर बना है। इन समूहों के स्थायित्व के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्यों के व्यवहार पर नियन्त्रण लगाया जाय। सभी मनुष्यों का व्यवहार एक प्रकार का नहीं होता है। कुछ व्यक्तियों का व्यवहार निर्माणक होता है, तो कुछ का विध्वंसक (Constructive destructive) इसलिए उन व्यवहारों पर जो विध्वसंक होते हैं, नियन्त्रण लगाया जाता है। नियन्त्रण दो प्रकार का होता है- औपचारिक (Formal) और अनौपचारिक (Informal) । औपचारिक नियन्त्रण के अन्तर्गत कानून, पुलिस और न्याय-व्यवस्था आते हैं। समाजशास्त्र बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर अनौपचारिक नियन्त्रण के अन्तर्गत जनरीतियाँ, रूढ़ियों, प्रथाएँ, परम्पराएँ आदि आते हैं। नियन्त्रण चाहे जिस प्रकार का हो, इससे समाज संगठित रहता है और सम्बन्धों का विकास होता है।

(vii) स्वतंत्रता (Liberty) अन्त में मैकाइवर और पेज ने स्वतंत्रता को भी समाज में महत्वपूर्ण माना है। समाज के सन्तुलित विकास के लिए नियन्त्रण आवश्यक है, किन्तु यदि व्यवहारों पर आवश्यकता से अधिक नियन्त्रण लगाया जायेगा तो ऐसी समाज-व्यवस्था अधिक दिनों तक स्थायी नहीं रह सकती है। समाज के सन्तुलित विकास के लिए आवश्यक है कि नियन्त्रण के साथ-ही-साथ व्यक्तियों को विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करने की स्वतन्त्रायें भी होनी चाहिए। इससे समाज में दृढ़ता का विकास होता है।

अन्य परिभाषाएँ(Other Definitions)

(a) बोगार्डस- 'समाज मनुष्यों का एक ऐसा समूह है, जिसमें सार्वभौमिक रूप से मानवीय रुचियों की समानता पायी जाये।'

(b) गिडिंग्स -'समाज स्वयं एक संघ है, एक संगठन है, औपचारिक सम्बन्धों का योग है, जिसमें सहयोग देने वाले व्यक्ति एक-दूसरे के साथ सम्बद्ध हैं।'

(c) **कूले-** "समाज प्रक्रियाओं या स्वरूपों का एक जटिल ढाँचा है, जिसमें से प्रत्येक जीवित रहते हुए एक-दूसरे से अन्तः क्रिया करते हुए विकसित होते हैं।"

(d) **गिन्सबर्ग-** "समाज व्यक्तियों का संग्रह है, जो कुछ निश्चित सम्बन्धों अथवा व्यवहार के तरीकों द्वारा संगठित है। साथ ही उन व्यक्तियों से भिन्न है, जो इस प्रकार के सम्बन्धों द्वारा बंधे हुए हैं या जिनके व्यवहार उनसे भिन्न हैं।"

(c) **यूर्टर-** "समाज एक अमूर्त शब्द है जो एक समूह के दो या अधिक सदस्यों के बीच स्थित पारस्परिक सम्बन्धों की जटिलता का बोधा कराता है।"

इस प्रकार 'समाज सामाजिक सम्बन्धों की वह व्यवस्था है, जिसमें सभी व्यक्ति एक-दूसरे के साथ सम्बद्ध रहते हैं।'

6.4 समाज की विशेषताएँ (Characteristics of Society)

समाज सम्बन्धों की एक व्यवस्था है। इस व्यवस्था में समाज एक संगठित रूप होता है। यह समाज का बाह्य पक्ष है। समाज का यह संगठन सामाजिक ढाँचे से मिलकर बनता है। ढाँचे में संस्थाएँ अपने पदों और कार्यों की व्यवस्था के द्वारा बंधी हुई होती हैं। कार्यों के द्वारा सम्बन्धों का निर्माण होता है, जिसे समाज कहा जाता है। समाज की निम्न विशेषताएँ होती है

(1) समाज अमूर्त है (Society is Abstract) दिल्ली के 'राष्ट्रपति भवन' को देखा जा सकता है। अजन्ता, एलोरा की चित्रकला का अवलोकन किया जा सकता है। ये भौतिक वस्तुएँ हैं, जिसका एक विशिष्ट आकार-प्रकार है, इन्हें देखा और छुआ जा सकता है, इसका रूप मूर्त है। समाज व्यक्तियों का संग्रह नहीं है, यह तो इन व्यक्तियों के बीच सम्बन्धों की एक व्यवस्था है। यूर्टर ने इसलिए लिखा है कि समाज व्यक्तियों का संग्रह नहीं है, यह तो इन व्यक्तियों के बीच स्थापित संबंधों की एक व्यवस्था है। सम्बन्धों की स्थापना 'जागरुकता' (Consciousness) के द्वारा होती है। जागरुकता का सम्बन्ध मस्तिष्क की चेतना से है। मस्तिष्क की चेतना का कोई आकार-प्रकार नहीं होता है, इसे देखा और छुआ नहीं जा सकता है, वह मूर्त नहीं है। इसलिए समाज अमूर्त है।

(2) समाज व्यक्तियों का समूह नहीं है (Society is not a group of Persons) - समाज सामाजिक सम्बन्धों की व्यवस्था है। सम्बन्धों का कोई भौतिक रूप नहीं होता है। मनुष्य भौतिक प्राणी है, अतः समाज इन भौतिक प्राणियों का समूह नहीं है, यह तो इन भौतिक प्राणियों के बीच जो सम्बन्ध पाये जाते हैं, उसकी एक व्यवस्था है। इसलिए समाज व्यक्तियों का समूह नहीं है।

(3) समाज मनुष्य तक ही सीमित नहीं है (Society is not confined to man) समाज की परिभाषा से स्पष्ट होता है कि समाज केवल मानव प्राणियों में नहीं पाया जाता है। समाज पशुओं में भी पाया जाता है। चीटियों और मधुमक्खियों में भी प्रशंसनीय सामाजिक संगठन पाया जाता है। जीवन का स्तर जितना ही निम्न होता जाता है, जागरुकता की मात्रा भी उतनी ही कम होती जाती है। जागरुकता सामाजिक सम्बन्धों का आधार है। जागरुकता के अभाव में समाज की कल्पना नहीं की जा सकती है। यह जागरुकता सिर्फ मनुष्यों में ही नहीं पायी जाती है। इसलिए समाजशास्वीय अथर्थो में समाज का अर्थ सिर्फ मनुष्य-समाज से ही है। पशुओं में जागरुकता आदि पायी जाती है तो वह निम्न भाषा में रहती है।

(4) समाज में समानता और भिन्नता (Linkness and Difference in Society) समाज में समानता और भिन्नता दोनों पायी जाती है। ये दोनों तत्व समाज के लिए आवश्यक हैं। असमानता ब्राहय होती है। आन्तरिक रूप से प्रत्येक समाज में असमानता का तत्व भौतिक रूप में पाया जाता है। दोनों ही व्याख्या निम्न है

समानता- समानता समाज का भौतिक तत्व है। समानता और असमानता की भावना के अभाव में 'साथ होने की भावना' (Belonging together) की पारस्परिक मान्यता नहीं हो सकती है। ऐसी अवस्था में समाज का अस्तित्व संभव नहीं है। यह समानता दोनों प्रकार की आवश्यक है-शारीरिक और मानसिक। मनुष्य की शारीरिक बनावट समान है, अतः उनकी आवश्यकताएँ भी समान हैं। अपनी आवश्यकताओं की समानता के लिए वे एक-दूसरे से मिलते-जुलते हैं और सहयोग स्थापित करते हैं। इसके परिणामस्वरूप सामाजिक

सम्बन्धों का जन्म होता है। सामाजिक सम्बन्धों के कारण उसमें एक होने की चेतना का विकास होता है। इसी चेतना को मिडेंग्स ने 'जाति के प्रति चेतना' (Consciousness of kind) कहकर सम्बोधित किया है। प्राचीन काल में लोग अपने रक्त सम्बन्धों को ही समाज के नाम से सम्बोधित करते थे। भारतीय 'वसुधैव कुटुम्बकम' की धारणा इसी चेतना के द्वारा सफल हो सकती है।

असमानता- जिस प्रकार समाज में समानता आवश्यक है, उसी प्रकार समाज में भिन्नता भी आवश्यक है। असमानता के अभाव में समाज की कल्पना ही नहीं की जा सकती। यदि सभी व्यक्ति समान होते तो उनके सम्बन्ध चीटियों और मधुमक्खियों के समान ही सीमित होते। उनमें पारस्परिक आदान-प्रदान न हो पाता और सहयोग की भावना का विकास भी न हो पाता। उदाहरण के लिए यदि समाज में सिर्फ पुरुष होते तो सन्तति-उत्पादन की प्रक्रिया अवरुद्ध हो जाती और मानव अगली पीढ़ी को जन्म न दे पाता। स्त्री और पुरुष की शारीरिक रचना एक-दूसरे से भिन्न है। यह भिन्नता एक-दूसरे की पूरक है। यह भिन्नता जो यौन सम्बन्धों में पायी जाती है, अन्य सामाजिक व्यवस्थाओं पर भी लागू होती है। यह असमानता कई प्रकार की होती है- जैविक, प्राकृतिक और सामाजिक। समाज का विकास इन्हीं इन्हीं भिन्नताओं के द्वारा होता है, जैसे लिग सम्बन्धी भिन्नता, शारीरिक भिन्नता, हितों और रुचियों की भिन्नता आदि। सामाजिक असमानताओं के कारण ही आज का समाज इतना जटिल होता जा रहा है।

समानता मुख्य है- समाज में समानता और भिन्नता दोनों पाये जाते हैं, किन्तु समानता का महत्व अधिक है। 'श्रम-विभाजन' को बाहय रूप से देखा जाये तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह असमानता पर आधारित है, क्योंकि सभी व्यक्ति भिन्न-भिन्न कार्यों का सम्पादन करते हैं। यदि इसे आन्तरिक रूप से देखा जाये तो ऐसा लगता है श्रम-विभाजन समानता के सिद्धान्त पर आधारित है, क्योंकि सभी व्यक्ति समान उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए असमान कार्य करते हैं। परिवार का निर्माण 'घर बनाने' और 'स्नेह' की सामान्य अभिलाषा की दृष्टि से हुआ होगा और इस अभिलाषा की पूर्ति के लिए परिवार के सदस्य भिन्न-भिन्न कार्य करते हैं। समाज के लिए आधारभूत तत्व समानता है और इसकी प्राप्ति के लिए असमान तरीकों को अपनाया जाता है।

(5) समाज में सहयोग और संघर्ष (Co-operation and Conflict in Society) में व्यक्ति के सम्बन्ध सहयोगी और असहयोगी दोनों प्रकार के होते हैं- समाज

सहयोग - मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसका सामाजिक जीवन सहयोग पर आधारित है। इस सहयोग के द्वारा ही वह आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। सहयोग दो प्रकार का होता है-

(i) प्रत्यक्ष सहयोग, और (ii) अप्रत्यक्ष सहयोग।

प्रत्यक्ष सहयोग उसे कहते हैं जो आमने-सामने के सम्बन्धों द्वारा किया जाता है, जैसे परिवार के उदस्यों का सहयोग, पड़ोसियों का सहयोग। यह सहयोग एक निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किया जाता है। जैसे पति-पत्नी के प्रत्यक्ष सहयोग के द्वारा ही प्रजाति की निरन्तरता कायम रह सकती है। जिस प्रकार मैच में खिलाड़ियों का उद्देश्य मैच जीतना होता है और इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सभी खिलाड़ी एक-दूसरे का सहयोग करते हैं।

अप्रत्यक्ष सहयोग में उद्देश्य समान होता है, किन्तु इसकी प्राप्ति असमान कार्यों द्वारा की जाती है, जैसे श्रम-विभाजन। इसमें भिन्न-भिन्न व्यक्ति असमान कार्यों का सम्पादन करते हैं, किन्तु इससे समान वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। सरल समाजों में प्रत्यक्ष सहयोग पाया जाता है, जबकि जटिल समाजों में अप्रत्यक्ष सहयोग पाया जाता है, क्योंकि सामाजिक सम्बन्ध अत्यधिक विस्तृत होते हैं।

संघर्ष जिस प्रकार समाज में समानता के साथ भिन्नता पायी जाती है, उसी प्रकार समाज में सहयोग के साथ-ही-साथ संघर्ष भी पाया जाता है। जिसका बाह्य रूप हमें 'सहयोग' के रूप में दिखाई देता है और आंतरिक रूप संघर्ष का होता है। संघर्ष दो प्रकार के होते हैं-

(i) प्रत्यक्ष संघर्ष, और (ii) अप्रत्यक्ष संघर्ष ।

एक-दूसरे के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आकर जो संघर्ष किया जाता है, उसे प्रत्यक्ष संघर्ष कहते हैं, जैसे दो व्यक्तियों की लड़ाई, क्रान्ति, आन्दोलन, विवाह-विच्छेद। अप्रत्यक्ष संघर्ष में आमने-सामने आने की कोई आवश्यकता नहीं है। आधुनिक

समाज अधिक जटिल होते जा रहे है, अतः अप्रत्यक्ष संघर्ष का महत्व भी दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। प्रतिस्पर्द्धा अप्रत्यक्ष संघर्ष का सबसे ताजा उदाहरण है। सहयोग और संघर्ष के सम्मिलन में ही समाज का निर्माण और विकास होता है। सहयोग और संघर्ष ऊपर से विरोधी है, किन्तु आन्तरिकदृष्टि से एक-दूसरे के पूरक हैं। जैसे युद्ध के बीच से ही शान्ति के विशाल वृक्ष का निर्माण होता है।

सहयोग मुख्य है- जिस प्रकार समाज के विकास के लिए असमानता की अपेक्षा समानता का अधिक महत्व है उसी प्रकार संघर्ष की अपेक्षा सहयोग मुख्य है। समाज में दो प्रकार की परिस्थितियाँ होती हैं- सामान्य और असामान्य। सामान्य परिस्थितियों में सहयोग आवश्यक है, जबकि असामान्य परिस्थितियों में संघर्ष के द्वारा सहयोग की भावना का विकास होता है। इस प्रकार सहयोग मुख्य है संघर्ष गौण है।

(6) अन्योन्याश्रितता (Inter-Dependence) अन्योन्याश्रित का अर्थ है एक-दूसरे पर आश्रित ।

समाज के निर्माण में जिन संस्थाओं और समूहों का योग है वे स्वतंत्र नहीं हैं, बल्कि एक-दूसरे पर आधारित और निर्भर हैं। उदाहरण के लिए पारिवार स्वयं में स्वतन्त्र इकाई नहीं है। परिवार के विकास और उन्नति के लिये इसे राज्य, धर्म और आर्थिक संस्थाओं पर आश्रित रहना पड़ता है। जब बालक पैदा होता है तो उसे जिन्दा रहने के लिए माँ पर आश्रित रहना पडता है। इसके बाद वह परिवार के अन्य सदस्यों पर आश्रित रहता है। परिवार के बाद वह पड़ोस और मित्रों पर आश्रित रहता है। बाद में वह द्वैतीयक समूहों पर आश्रित रहता है जिसमें शिक्षा संस्थाएँ, धार्मिक संस्थाएँ, आर्थिक संस्थाएँ और राज्य संस्थाएँ सम्मिलित है।

6.5 समुदाय (Community)

प्राथमिक धारणाओं में समाज के बाद समुदाय का दूसरा स्थान है। मैकाइवर ने लिखा है कि अगर कुछ उदाहरण दिये जायें, तो समुदाय का अर्थ आसानी से स्पष्ट हो जायेगा। समुदाय का प्रयोग किसी बस्ती, गाँव, शहर, कबीला या राष्ट्र के लिए किया जाता है। जब समूह के सदस्य साथ-साथ रहते हैं, वे किसी

विशेष की ओर ध्यान न देकर सामान्य जीवन व्यतीत करते हैं, तो ऐसे समूह को समुदाय कहा जाता है। समुदाय का मौलिक लक्षण यह है कि उसमें व्यक्ति का सामान्य जीवन व्यतीत होता है। किस व्यापारिक संगठन का धार्मिक संगठन में सम्पूर्ण जीवन व्यतीत नहीं होता है। ये संगठन तो व्यक्ति की विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। इसके अतिरिक्त गाँव या कबीले के अन्तर्गत सामान्य जीवन व्यतीत किया जा सकता है। इस प्रकार समुदाय की आधारभूत कसौटी यह है कि उसमें व्यक्ति का सामान्य जीवन व्यतीत होता है।

समुदाय अंग्रेजी के 'कम्युनिटी' (Community) शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। यह कम्युनिटी शब्द लैटिन भाषा के दो शब्दों से मिलकर बना है

Community =Com + Munis

Com = together (साथ-साथ)

Munis = serving (सेवा करना)

Community =Serving Together

समुदाय = साथ-साथ सेवा करना

इस प्रकार कम्युनिटी का अर्थ यह हुआ-वह समूह जो साथ-साथ सेवा की भावना से ओत-प्रोत है।

समुदाय की परिभाषा

(Definition of Community)

समुदाय की कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित है -

(1) मैकाइवर और पेज- 'एक समुदाय सामाजिक जीवन का वह क्षेत्र है, जिसे सामाजिक सजातीयता

(सम्बद्धता) की कुछ मात्रा द्वारा पहचाना जाता है।'

मैकाइवर और पेज ने समुदाय की परिभाषा में इनकी निम्नांकित दो विशेषताएँ निर्धारित की हैं-

(i) यह एक सामाजिक समूह है, तथा

(ii) इस सामाजिक समूह में सामाजिक सजातीयता या सम्बद्धता पायी जाती है।

(2) डेविस- 'समुदाय सबसे छोटा वह क्षेत्रीय समूह है; जिसके अन्तर्गत सामाजिक जीवन के समस्त पहलू आ जाते हैं।'

डेविस ने समुदाय की परिभाषा में निम्नलिखित तीन तत्वों को सम्मिलित किया है

(i) व्यक्तियों का समूह,

(ii) क्षेत्रीय आधार, और

(iii) सामाजिक जीवन के समस्त पहलू ।

(3) आगबर्न और निमकॉफ 'किसी सीमित क्षेत्र में सामाजिक जीवन के सम्पूर्ण संगठन को समुदाय कहा जा सकता है।'

आगबर्न और निमकॉफ ने उपर्युक्त परिभाषा में समुदाय की निम्न तीन विशेषताओं का उल्लेख किया

(i) सीमित क्षेत्र,

(ii) सामाजिक जीवन, और

(iii) संगठन।

(4) ग्रीन 'समुदाय के अन्तर्गत एक निश्चित भू-भाग में रहने वाली सम्पूर्ण जनसंख्या आती है, जो एक सामान्य नियम से जीवन के नियमित व्यापार करती है तथा एक साथ रहती है।'

ग्रीन ने समुदाय की परिभाषा में निम्नलिखित तत्वों को सम्मिलित किया है-

(i) एक निश्चित भू-भाग

(ii) जनसंख्या,

(iii सामान्य नियम, और

(iv) एक साथ निवास ।

(5) बोगार्डस- 'समुदाय एक ऐसा सामाजिक समूह है, जिसमें कुछ मात्रा में 'हम् की भावना' होती है तथा जो एक निश्चित भू-भाग में निवास करता है।' बोगार्डस ने इस परिभाषा में समुदाय की निम्नलिखित तीन विशेषताओं को सम्मिलित किया है-

(i) एक सामाजिक समूह,

(ii) हम की भावना, और

(iii) एक निश्चित भू-भाग।

(6) डासन और मेटिस- 'समुदाय भू-भाग की एक इकाई है, जिसमें ऐसी जनसंख्या निवास करती है जहाँ आधारभूत संस्थाएँ अपने साधारण एवं विशेषीकृत रूप में इस प्रकार कार्य करती है, जिसके द्वारा सामान्य जीवन व्यतीत करना संभव है।'

(7) किम्बाल यंग- "समुदाय एक ऐसा समूह है जो एक ही संस्कृति के अधीन एक स्थान अथवा क्षेत्र में रहता है और अपनी प्रमुख क्रियाओं के लिए एक सामान्य भौगोलिक केन्द्र से प्रभावित रहता है।" इस प्रकार "मनुष्यों का वह समूह जो निश्चित भू-भाग में रहता है, हम की भावना रखता है तथा अपने समाजशास्त्र बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर समूह में ही सामान्य जीवन-यापन करता है, समुदाय कहलाता है।"

समुदाय के तत्व (Element of Community)

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर स्पष्ट है कि समुदाय मानव-समूह है। यह मानव-समूह एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में निवास करता है। इसका रूप मूर्त होता है । समुदाय का विकास हुआ है, जान-बूझकर इसका निर्माण नहीं किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत जीवन की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। मैकाइवर और पेज ने समुदाय के दो आधार बतलाये हैं- स्थानीय क्षेत्र और सामुदायिक भावना। इसकी वृहद् व्याख्या निम्न है-

(1) स्थानीय क्षेत्र (Locality) एक समुदाय सदैव एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में निवास करता है। भ्रमणशील समुदायों की भी बस्ती है, किन्तु उनका क्षेत्र परिवर्तित होता रहता है। क्षेत्र में इस परिवर्तन के बावजूद भी उस समूह के

सदस्य किसी-न-किसी क्षेत्र में निवास करते ही हैं। अधिकांश समुदाय ऐसे हैं जो एक निश्चित क्षेत्र में बसे हुए हैं और इस प्रकार एक निश्चित क्षेत्र से बँधे हुए हैं। आवागमन और संदेशवाहन के साधनों के कारण स्थानीय क्षेत्र में कुछ शिथिलता आ रही है। इस प्रकार की शिथिलता ग्रामीण क्षेत्र में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। भारतवासी एक निश्चित क्षेत्र में निवास करते हैं, उनकी अपनी सीमा है। इस प्रकार समुदाय का मौलिक तत्व है भौगोलिक क्षेत्र में या स्थानीयता, जिसके अभाव में समुदाय की कल्पना नहीं की जा सकती है।

(2) सामुदायिक भावना (Community Sentiment) सामुदायिक भावना का तात्पर्य उस 'आत्म-भावना' से है, जिसके कारण समुदाय के सभी सदस्य आत्मिक दृष्टि से एक-दूसरे के नजदीक रहते हैं। दूसरे शब्दों में सामुदायिक भावना सदस्यों में 'हम' की भावना को विकसित करके सदस्यों के बीच मधुर सम्बन्ध को स्थापित करती है।

(3) मनुष्यों का समूह (Group of Human Beings) समुदाय की उपर्युक्त दोनों विशेषताएँ

मानव-जीवन में ही पायी जाती हैं। मनुष्यों के बिना समुदाय की कल्पना नहीं की जा सकती है। मनुष्य ही एक क्षेत्र में निवास करते हैं और उन्हीं में उस क्षेत्र के प्रति 'हम' की भावना होती है। समुदाय अनेक व्यक्तियों का समूह है। एक या दो व्यक्ति मिलकर समुदाय का निर्माण नहीं कर सकते हैं।

(4) सामान्य जीवन (Common Life) समुदाय का निर्माण किन्हीं उद्देश्यों के आधार पर नहीं

होता है। इसका स्वतः विकास होता है। यदि समुदाय का कोई उद्देश्य है तो सिर्फ यह है उनमें सामान्य जीवन बिताया जाये। समुदाय के सभी व्यक्तियों का आर्थिक सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक जीवन एक ही प्रकार का होता है। वे एक ही प्रकार के सांस्कृतिक जीवन में भाग लेते हैं और एक ही प्रकार की सामाजिक विरासत छोड़ते हैं।

(5) क्षेत्रीय स्थायित्व (Territorial Permanency) मैकाइवर के अनुसार 'क्षेत्रीयता' समुदाय की सबसे बड़ी विशेषता है। तुलनात्मक दृष्टि से समुदाय स्थायी हैं। इसी प्रकृति 'कक्षा' (Class-room) की तरह नहीं होती है कि समय

समाप्त होने के बाद व्यक्ति वहाँ से स्थानान्तरित हो जाते हैं। समुदाय में क्षेत्रीय

स्थिरता पायी जाती है। दूसरे शब्दों में शीघ्रता से परिवर्तन नहीं होता है।

(6) स्वतः जन्म (Spontaneous Birth) समुदाय के पीछे व्यक्ति के निश्चित उद्देश्य नहीं हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है समुदाय में व्यक्ति सामान्य जीवन व्यतीत करता है। इसलिए समुदाय का विकास स्वयं होता है। व्यक्ति परिवार में ही पैदा नहीं होता, उसका जन्म समुदाय से भी होता है और वह इसी में अपनी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। समुदाय के विकास का कोई निश्चित समय नहीं होता है। जहाँ कभी कुछ व्यक्ति निवास करने लगते हैं, उस स्थान के प्रति अपनत्व की भावना रखते हैं तो स्वतः ही समुदाय उत्पन्न हो जाता है।

(7) आत्म-निर्भर (Self-Sufficient) समुदाय की सबसे बड़ी विशेषता है कि यह आत्म-निर्भर होते हैं। वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूसरे समुदायों पर आश्रित नहीं रहते हैं। आदिवासियों के समुदाय इसके सबसे अच्छे उदाहरण हैं, किन्तु वहाँ से भी आत्म-निर्भरता का तत्व समाप्त होता जा रहा है। NOTES

(8) सामान्य नियम (Common Rules) गिन्सबर्ग ने नियमों की सामान्य व्यवस्था को समुदाय का आवश्यक तत्व माना है। सामान्य नियमों के कारण सदस्यों में समानता की भावना का विकास होता है। ये समानताएँ कई प्रकार की हो सकती हैं, जैसे भाषा सम्बन्धी, धार्मिक, सामाजिक आदि। समानता के द्वारा सहयोग की भावना का विकास होता है।

(9) विशिष्ट नाम (Particular Name) अन्त में, प्रत्येक समुदाय का एक विशेष नाम होता है जिसके द्वारा उस समुदाय को पुकारा जाता है या पहचाना जाता है। इस नाम के कारण समुदाय के सभी सदस्य अपने को एक ही समूह का समझते हैं। जैसे ग्रामीण समुदाय, आदिवासी समुदाय ।

6.6 सामुदायिक भावना-समुदाय की आधारशिला

(Community Sentiment-Foundation of Community)

समुदाय के दो प्रमुख आधार हैं-क्षेत्रीयता और सामुदायिक भावना। क्षेत्रीयता समुदाय की बाहरी संरचना (External Structure) का निर्माण करती है, जबकि सामुदायिक भावना इसकी आन्तरिक संरचना (Internal Structure) का निर्माण करती है। उपर्युक्त दोनों विशेषताएँ समुदाय का निर्माण करती हैं। इन दोनों में सामुदायिक भावना अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। सामुदायिक भावना समुदाय का मनोवैज्ञानिक आधार है। यहाँ मौलिक प्रश्न यह है कि सामुदायिक भावना क्या है?

मनुष्य स्वभावतः सामाजिक प्राणी है। उसमें कुछ ऐसी प्रेरणाएँ पायी जाती हैं जो सदस्यों में अपनत्व और सामाजिकता को विकसित करती हैं। मानव की मानसिक संरचना कुछ इस प्रकार है कि वह अकेले नहीं रह सकता है। साथ-साथ रहने का स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि उसमें एक ऐसी भावना का विकास हो जाता है, जिससे वे समुदाय के अन्य सदस्यों से आत्मीय सम्बन्ध स्थापित कर सके। कालान्तर में यही आत्मीय सम्बन्ध समुदाय को जन्म देता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि समुदाय का जैसा स्वरूप होगा; सामुदायिक भावना भी उसी प्रकार की होगी। जब व्यक्ति सामान्य अनुभूति का अनुभव करते हैं, तो सामुदायिक भावना का विकास अपने-आप हो जाता है। मैकाइवर और पेज का विचार है कि शिक्षा के माध्यम से भी सामुदायिक भावना को विकसित किया जा सकता है। उन्हीं के शब्दों में, "शिक्षा के कारण समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा सामुदायिक भावना विकसित होती रहती है।"

मैकाइवर और पेज ने आगे लिखा है, "सामुदायिक भावना बाहरी दबाव न होकर आन्तरिक आवश्यकता है, व्यक्ति के स्वयं के व्यक्तित्व का एक भाग है। इस प्रकार स्पष्ट है कि व्यक्ति का आन्तरिक स्रोत वह आधार, है, जो सामुदायिक भावना का निर्माण करता है।"

6.7 सामुदायिक भावना में मनोवैज्ञानिक तत्व

(Psychological Elements of Community Sentiment)

सामुदायिक भावना का प्रमुख आधार मनोवैज्ञानिक है। इसके मनोवैज्ञानिक तत्वों को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) हम की भावना (We Feeling) जब समाज के सदस्यों के समान स्वार्थ (Like Interest). सामान्य स्वार्थ (Common Interest) में विलीन हो जाये, तो इस विलीनीकरण की प्रक्रिया को 'हम् की भावना' कहा जा सकता है। इस भावना के कारण समुदाय के सभी सदस्य एक-दूसरे से अपने को काफी नजदीक समझते हैं तथा आपस में एक-दूसरे के प्रति लगाव रखते हैं। उपर्युक्त परिस्थितियों के विकसित हो जाने से समुदाय के सदस्यों में हम की भावना का विकास होता है।

(2) कर्त्तव्य की भावना (Role Feeling) सामुदायिक भावना का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व कर्तव्य की भावना है। सभी सदस्य समुदाय के कार्यों में अपनी तरफ से योगदान करते हैं। समुदाय के प्रत्येक सदस्य का निश्चित पद होता है तथा सभी व्यक्ति अपने पदों के अनुसार कार्य का संचालन करते हैं। 'हम' की भावना उसमें एक-दूसरे के प्रति कर्तव्यों को सम्पादित करने की प्रेरणा देती है। कर्तव्य की भावना के कारण ही समुदायों

में व्यक्तिवाद के स्थान पर समूहवाद पाया जाता है।

(3) निर्भरता की भावना (Dependency Feeling) सामुदायिक भावना की तीसरा महत्वपूर्ण तत्व है- आपस में एक-दूसरे पर निर्भरता की भावना। मानव स्वयं आवश्यकताओं का दास है, जिनकी पूर्ति अनिवार्य है। व्यक्ति स्वयं में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता है। इसका कारण यह है कि आवश्यकताएँ अनन्त है। आवश्यकताओं की अनन्तता और उसकी पूर्ति की अनिवार्यता ही वे ही तत्व हैं, जो समाजशास्त्र बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर-1 व्यक्ति को एक-दूसरे के सूत्र में बाँधते हैं।

समीपवर्ती समुदायों के कुछ उदाहरण (Some examples of Border-Living Communities) - इस प्रकार स्पष्ट होता है कि ग्राम, नगर, कबीला, राष्ट्र सभी समुदाय हैं। इन सबके सदस्यों का जीवन समुदायों के अन्दर व्यतीत होता है। सभी समुदाय अपने क्षेत्र में सामान्य जीवन व्यतीत करते हैं। आधुनिक युग में समुदायों के क्षेत्र में परिवर्तन हो रहा है, उनकी सीमाएँ टूट रही हैं। इस प्रकार समुदायों के सम्बन्ध में सीमा-सम्बन्धी कठिनाई उत्पन्न होती है। इसे स्पष्ट करने के लिए कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं

(1) क्या जाति एक समुदाय है? जाति एक बन्द वर्ग है। इसका निर्धारण रक्त और वंशानुक्रमण के आधार पर होता है। समुदाय के दो मौलिक तत्व हैं- क्षेत्रीयता और समुदायिक भावना। जब इन दोनों तत्वों को जाति पर लागू किया जाता है तो निष्कर्ष निकलता है कि -

(i) जाति में सामुदायिक भावना पाई जाती है।

(ii) जाति में क्षेत्रीय एकता का अभाव पाया जाता है अर्थात् जाति के सदस्यों का कोई स्थानीय क्षेत्र नहीं होता है, वे समस्त स्थानों में फैले हुए हैं।

(iii) जाति से लोग सामान्य जीवन व्यतीत नहीं करते हैं। वे आत्मनिर्भर भी नहीं होते और न जाति का स्वतः विकास हुआ है। इस प्रकार जाति में समुदाय का सिर्फ एक ही तत्व पाया जाता है-सामुदायिक भावना । एक प्रकार क्षेत्रीयता और सामान्य जीवन के अभाव में जाति को समुदाय नहीं कहा जा सकता है।

(2) क्या एक बन्दीगृह (जेल) एक समुदाय है? जेल समुदाय है या नहीं, इस सम्बन्ध में मतभेद हैं। कुछ भी हो, इतना तो निश्चित है कि जेल से समुदाय का पहला तत्व पाया जाता है और वह तत्व है क्षेत्रीय एकता। सामुदायिक भावना के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद हैं। मैकाइवर ने लिखा है कि अनेक विवादों के बावजूद जेल में समुदाय के दो तत्व पाये जाते हैं, अतः इसे समुदाय मान लेना चाहिए। कुछ भी हो, जेल में समुदाय की भावना का तत्व न्यून मात्रा में पाया जाता है। कैदियों में न तो जेल के लिए त्याग होता है और न जेल के लिए लगाव ही होता है। 'जेल की भावना' से उनमें कोई भी आत्म-सम्मान और गौरव की भावना का विकास नहीं होता है। जेल में रहना असम्मान और घृणा का प्रतीक है। सामान्य जीवन का अर्थ है इस प्रकार का भोजन, रहन-सहन, प्रथाएँ, परम्पराएँ, धर्म आदि। जेल में ये उपर्युक्त विशेषताएँ पाई जाती हैं। सभी कैदी सामान्य जीवन व्यतीत करते हैं। जेल का स्वतः विकास नहीं होता है, इसकी स्थापना की जाती है। जेल की कोई भाषा नहीं होती है। जेल का विशिष्ट नाम होता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जेल समुदाय नहीं है।

(3) क्या राज्य एक समुदाय है? राज्य का एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र होता है। राज्य के

निवासियों में राज्य के प्रति 'हम की भावना' उतनी घनिष्ट नहीं होती, जितनी समुदाय में। राज्य के सभी व्यक्तियों का जीवन सामान्य नहीं होता है। राज्य के लिए आवश्यक नहीं है कि उसका स्वतः विकास हो। राज्य का एक विशिष्ट नाम होता है। राज्य के लिए एक भाषा का होना आवश्यक नहीं है। राज्य समुदाय की भाँति स्थाई

होते हैं, इसलिए निष्कर्ष रूप में ऐसा कहा जा सकता है कि राज्य समुदाय नहीं है।

(4) क्या पड़ोस एक समुदाय है? अविकसित समाजों में पड़ोस के दोनों तत्व थे- क्षेत्रीय एकता

और सामुदायिक भावना। किन्तु औद्योगिक क्षेत्रों में पड़ोस को किसी भी प्रकार से समुदाय नहीं कहा जा सकता है। पड़ोस में आमने-सामने का सम्बन्ध तो दूर रहा, पड़ोसी एक-दूसरे से परिचित नहीं होते हैं। इसलिए आधुनिक पड़ोस में सामुदायिक भावना का अभाव पाया जाता है। पड़ोस में सामान्य जीवन भी नहीं पाया जाता है। पड़ोस का स्वतः विकास होता है। इनका जन्म होता है। पड़ोस में स्थायित्व नहीं पाया जाता है। साथ ही वहाँ विभिन्न संस्कृतियों, धर्म और विचार के लोगों का सम्मिलित रूप रहता है। इस प्रकार आधुनिक औद्योगिक नगरों के पड़ोस को समुदाय नहीं कहा जा सकता है।

(5) क्या शरणार्थी समूह एक समुदाय है? जब शरणार्थियों का एक समूह किसी एक ही स्थान

में आकर बस जाता है, तो उसे हम समुदाय कह सकते हैं। इसका कारण यह है कि उनमें सामुदायिक भावना अत्यधिक मात्रा में पायी जाती है। उसका जीवन सामान्य होता है। वे एक ही प्रकार की संस्कृति, धर्म और परम्परा में विश्वास करते हैं। उस शरणार्थी समूह का एक विशिष्ट नाम होता है। इसलिये शरणार्थी समूह को समुदाय कहा जा सकता है।

इसके अतिरिक्त कुछ और मानव समूह है, जिन्हें इसलिए समुदाय कहा जा सकता है क्योंकि उनमें समुदाय की अधिकतर विशेषताएँ पाई जाती हैं। जैसे- परिवार, गाँव, जनजाति, एक छोटा-सा कस्बा आदि। इसमें सभी व्यक्ति सामान्य जीवन बिताते हैं।

कुछ ऐसे भी मानव-समूह है, जिन्हें समुदाय नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि उनमें समुदाय के मौलिक तत्वों का अभाव पाया जाता है। जैसे-विद्यार्थी समूह, राजनैतिक पार्टी, धार्मिक संघ आदि।

6.8 सामुदायिक विघटन के कारण

(Causes of Community Disintegration)

विकास की प्रक्रिया सरल से जटिल की ओर होती है। समुदायों का विकास भी इसी क्रम में हुआ है। समुदाय के विकास की पहली अवस्था वह थी जब समुदाय छोटे थे। धीरे-धीरे विकास की प्रक्रिया में समुदाय बड़े होते गये। आज व्यक्ति के दृष्टिकोण में अन्तर आ गया है, और वह दूसरे ढंग से सोचता है। एक ओर विश्व समुदाय की भावना का विकास होता जा रहा है तो दूसरी ओर समुदाय के तत्व धीरे-धीरे नष्ट होते जा रहे हैं। इसके निम्न कारण हैं-

(1) आर्थिक कारण- छोटे समुदायों के टूटने के कारण जनसंख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। इस वृद्धि से व्यवसाय और व्यापार का विकास हुआ। परम्परागत और गृह उद्योग धीरे-धीरे समाप्त होने लगे। औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप विशाल उद्योगों की स्थापना हुई। वहाँ काम करने के लिए मजदूरों की आवश्यकता हुई, फलतः विभिन्न क्षेत्रों से मजदूर इन केन्द्रों में इकट्ठे हुए। साथ रहने और काम करने से उनके विचारों में परिवर्तन हुआ। इससे छोटे समुदाय धीरे-धीरे समाप्त हो गये।

(2) आवागमन और सन्देशवाहन- नये आविष्कारों से आवागमन और सन्देशवाहन के क्षेत्रों में

वृद्धि हुई। इससे सांस्कृतिक आदान-प्रदान हुआ। मोटर, रेल, हवाई जहाज, सिनेमा और टेलीविजन ने मनुष्य की दूरी समाप्त कर दी है। विचारों, भावनाओं, परम्पराओं में आदान-प्रदान होने से अन्तर्राष्ट्रीय घनिष्टता का विकास हुआ। इससे भी समुदाय की भावना को आघात पहुँचा है।

(3) सामाजिक कारण - परिवर्तन समाज का आधार है, और आज हम जिस युग में हैं, वह परिवर्तन का ही परिणाम है। सामाजिक परिवर्तन के साथ समाज के दायरे (क्षेत्र) में भी परिवर्तन होता है। व्यक्ति आज सिर्फ परिवार का ही

सदस्य नहीं रह गया है, वह समुदाय, बिरादरी और राष्ट्र का भी सदस्य है। सामाजिक विकास की अवस्था में व्यक्ति अपने तक ही सीमित था। इसके बाद उसने परिवार के बारे में सोचना-विचारना शुरू किया। परिवार से आगे उसने समुदाय के बारे में सोचना प्रारम्भ किया और आज उसके सोचने का दायरा राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय जीवन है। आज व्यक्ति को सिर्फ समुदाय के कर्तव्यों का ही पालन नहीं करना पड़ता, अपितु उसे राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय कर्तव्यों का भी पालन करना पड़ता है। इससे भी समुदाय के प्रति विचार धीरे-धीरे समाप्त होते जा रहे हैं।

(4) सांस्कृतिक कारण- संस्कृति सीखा हुआ व्यवहार है। यह व्यवहार एक समुदाय का दूसरे समुदाय से भिन्न होता है। जब संस्कृति का प्रसार होता है तो इससे सांस्कृतिक आदान-प्रदान होता है। सांस्कृतिक आदान-प्रदान का परिणाम यह होता है कि रीति-रिवाज, प्रथाओं, परम्पराओं, धर्म और मूल्यों में भी आदान-प्रदान होता है। इससे समुदाय के सांस्कृतिक जीवन का क्षेत्र विकसित होता है और इससे भी सामुदायिक विघटन होता है।

समुदाय एवं समाज में अन्तर

(Difference Between Community and Society)

समुदाय एवं समाज दो पृथक अवधारणाएँ हैं। इन दोनों में प्रमुख अन्तर निम्नलिखित हैं -

(1) समुदाय मूर्त अवधारणा है, जबकि समाज का स्वरूप अमूर्त होता है।

(2) समुदाय व्यक्तियों का समूह होता है, जबकि समाज सामाजिक सम्बन्धों के जाल को कहते हैं।

(3) समुदाय का क्षेत्र सीमित होता है, जबकि समाज का क्षेत्र विस्तृत होता है। इसी विशालता के कारण समाज में अनेक समुदाय होते हैं।

(4) स्थानीयता समुदाय की अनिवार्य आवश्यकता है, समाज के लिए स्थानीयता अनिवार्य नहीं है।

(5) समुदाय का आधार 'सामुदायिक भावना' होती है, जबकि समाज तर्क और बुद्धि पर आधारित

होता है।

(6) समुदाय सामान्य जीवन (Common Life) और असमानताओं पर आधारित होता है; जबकि समाजशास्त्र बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर-1 समाज में समानताएँ और विभिन्नताएँ दोनों पाई जाती है।

(7) समुदाय का विशिष्ट नाम होता है, जबकि समाज का कोई विशिष्ट नाम नहीं होता है।

(8) सहयोग समुदाय की अनिवार्य आवश्यकता है। समाज में सहयोग की प्रधानता के साथ ही साथ संघर्ष भी पाया जाता है।

(9) समुदाय विशिष्ट संस्कृति और सामाजिक विरासत पर आधारित होते हैं, किन्तु समाज में अनेक संस्कृतियाँ और विविधताएँ पाई जाती हैं।

(10) समुदाय सीमित उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं, जबकि समाज विस्तृत उद्देश्यों पर आधारित होते हैं।

(11) समाज औपचारिक (Formal) सम्बन्धों पर आधारित होते हैं, जबकि समुदाय का आधार व्यक्तियों के बीच पाये जाने वाले अनौपचारिक (Informal) सम्बन्ध होते हैं।

(12) समाज में व्यक्ति अपने विस्तृत उद्देश्यों को पूर्ति करता है, जबकि समुदाय में व्यक्ति के उद्देश्य सीमित होते हैं।

समुदाय एवं समूह में अन्तर

(Difference Between Community and Group)

बोगार्डस ने लिखा है कि 'समुदाय एक सामाजिक समूह है, जिसमें कुछ मात्रा में हम की भावना पायी

जाती है।' इस कथन का तात्पर्य यह है कि समुदाय भी एक प्रकार का सामाजिक समूह है, किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि समुदाय और समूह में कोई अन्तर नहीं है। समुदाय और समूह दो पृथक-पृथक अवधारणाएँ हैं। इन दोनों में प्रमुख अन्तर निम्नलिखित है -

(1) समूह का निर्माण दो व्यक्तियों से भी हो सकता है, किन्तु समुदाय के लिए अधिक व्यक्तियों का होना अनिवार्य है। इसका कारण यह है कि दो व्यक्तियों के संग्रह को समुदाय नहीं कहा जा सकता है।

(2) समुदाय के लिए 'सामुदायिक भावना' अनिवार्य आवश्यकता है, किन्तु समूह में सामूहिक भावना का पाया जाना अनिवार्य नहीं है।

(3) शारीरिक निकटता समूह की अनिवार्य आवश्यकता है, विशेषकर प्राथमिक समूहों में। समुदाय में शारीरिक निकटता नहीं पायी जाती है।

स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्न :

1.निम्न में से कौन समुदाय है-

(अ) जाति (ब) बन्दीगृह

(स) राज्य (द) आदिवासी समुदाय

2. निम्न में से कौन-सा कारण सामुदायिक विघटन के लिए उत्तरदायी है-

(अ) आर्थिक कारण (ब) सामाजिक कारण (स) सांस्कृतिक कारण (द) उपर्युक्त सभी

6.9 सारांश

समाज और समुदाय की भूमिका और उनकी परस्पर क्रियाओं को समझना और भी स्पष्ट हो जाता है। समाज एक व्यापक ढांचा है जिसमें विभिन्न संस्थाएं, नियम और परंपराएं व्यक्तियों के व्यवहार को आकार देती हैं, जबकि समुदाय समाज का एक छोटा लेकिन महत्वपूर्ण हिस्सा होता है, जो एक दूसरे से भावनात्मक और भौगोलिक रूप से जुड़ा होता है। यह अध्ययन यह भी दर्शाता है कि समाज और समुदाय एक दूसरे को प्रभावित करते हैं और मिलकर व्यक्ति के सामाजिक, मानसिक और भावनात्मक विकास में योगदान करते हैं। इसके माध्यम से यह समझने में भी मदद मिलती है कि कैसे समाज और समुदाय एक सुरक्षित और सहायक वातावरण प्रदान करते हैं, जहां व्यक्ति अपनी पहचान स्थापित कर सकता है। इसके अलावा, यह यूनिट यह भी स्पष्ट करती है कि समाज और समुदाय मिलकर सामाजिक समस्याओं की पहचान करते हैं

और उनके समाधान के लिए सामूहिक प्रयास करते हैं, जिससे समाज में समग्र सुधार और विकास की प्रक्रिया सुनिश्चित होती है। इस प्रकार, यह अध्ययन समाज और समुदाय के बीच की जटिलताओं को समझने और उनके योगदान को पहचानने का एक महत्वपूर्ण अवसर प्रदान करता है।

6.10 मुख्य शब्द

1. वैश्वीकरण (Globalization): विश्व स्तर पर समाजों और संस्कृतियों का एकीकरण।

2. सामाजिक तथ्य (Social Fact): एमिल दुर्खीम द्वारा दिया गया विचार, जिसमें समाज के नियम और परंपराएं व्यक्तियों पर प्रभाव डालती हैं।

3. सामाजिक नियंत्रण (Social Control): समाज के नियमों और परंपराओं के माध्यम से व्यवहार को नियंत्रित करने की प्रक्रिया।

6.11 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर: 1. (द), 2. (द)

6.12 संदर्भ ग्रन्थ

1. Ghurye, G. S. (1961). Caste and Race in India. Popular Prakashan.

2. Dumont, Louis (1970). Homo Hierarchicus: The Caste System and Its Implications. University of Chicago Press.

3. Beteille, Andre (1991). The Social Structure of India: Antiquity and Change. Oxford University Press.

6.13 अभ्यास प्रश्न

परीक्षाओं के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न (Important Questions for Examination)

(अ) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. समाज की व्याख्या कीजिये तथा इसकी प्रमुख विशेषताओं को समझाइये।

2. समाज बनाने वाले आवश्यक तत्वों की विवेचना कीजिए।

3. 'समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है।' विवेचना कीजिए।

4. समाज की सामान्य विशेषतायें लिखिये। समाज और एक समाज में अन्तर लिखिये।

5. समाज एक अमूर्त अवधारणा है। समझाइये ।

6. समुदाय की विवेचना कीजिए। समुदाय के आवश्यक तत्व क्या है?

7. समुदाय को परिभाषित कीजिए एवं इसकी विशेषताओं की विवेचना कीजिये ।

8. सामुदायिक भावना पर एक निबन्ध लिखिये।

(य) लघुउत्तरीय प्रश्न (Short-Answer Type Questions)

1. समाज को परिभाषित कीजिये ।

2. समाज की तीन प्रमुख विशेषताएँ लिखिये ।

3. समाज में समानता एवं भिन्नता दोनों पाई जाती है। 100 शब्दों में समझाइये ।

4. समुदाय से आप क्या समझते हैं?

5. समुदाय के प्रमुख तत्वों के नाम लिखिये।

6. सामुदायिक भावना के मनोवैज्ञानिक तत्वों के नाम लिखिये।

7. क्या पड़ोस एक समुदाय है? स्पष्ट कीजिये।

8.सामुदायिक भावना समुदाय की आधारशिला है। समझाइये।

9. समुदाय एवं समाज में अन्तर लिखिये।

10. सामुदायिक विघटन के प्रमुख कारण लिखिये।

(स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. 'मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है।' उक्त कथन है-

(अ) मैक्यावेली का (ब) अरस्तु का

(स) प्लेटो का (द) काम्टे का

2. समाज की प्रमुख विशेषता निम्न में से है-

(अ) समाज अपूर्ण होता है।

(ब) समाज में समानता एवं भिन्नता दोनों पायी जाती है।

(स) समाज में सहयोग एवं संघर्ष दोनों पाया जाता है।

(द) उपर्युक्त सभी

3 निम्न में से कौन समाज नहीं है-

(अ) देसाई समाज

(ब) आर्य समाज

4. "समाज रीतियों, कार्य-प्रणालियों, अधिकार और पारस्परिक सहायता, अनेक समूहों और विभाजनों, मानव व्यवहार के नियन्त्रणों पर स्वतंत्रता की एक व्यवस्था है।" उक्त कथन है-

(अ) मैकाइवर एवं पेज का (ब) बोगार्डस का

(स) कूले का (द) गिन्सबर्ग का

5. "किसी सीमित क्षेत्र में सामाजिक जीवन के सम्पूर्ण संगठन को समुदाय कहा जा सकता है।" समुदाय की यह परिभाषा है-

(अ) मैकाइवर एवं पेज की (ब) डेविस की

(स) गिडिंग्स की (द) आगबर्न एवं निमकॉफ की

समुदाय के दो आधार-स्थानीय क्षेत्र और सामुदायिक भावना, बतलाये हैं- 6.

(अ) मैकाइवर एवं पेज ने (ब) सोरोकिन ने

(स) किम्बाल यंग ने (द) बोगार्डस ने

7. निम्न में से कौन-सा तत्व समुदाय का नहीं है-

(अ) स्थानीय क्षेत्र (ब) व्यक्तिगत भावना

(स) सामान्य जीवन (द) स्वतः जन्म

8. सामुदायिक भावना की प्रमुख मनोवैज्ञानिक विशेषता है-

(अ) हम की भावना (ब) निर्भरता की भावना (स) कर्तव्य की भावना

(द) उपर्युक्त सभी विशेषताएँ सामुदायिक भावना की प्रमुख मनोवैज्ञानिक विशेषता है।

उत्तर 1. (ब), 2. (द), 3. (स), 4. (अ), 5. (द), 6. (अ), 7. (ब), 8. (द),

इकाई -7

समिति एवं संस्था [ASSOCIATION AND INSTITUTION]

7.1 प्रस्तावन

7.2 उद्देश्य

7.3 समिति (Association)

7.4 समिति का समाजशास्त्रीय महत्व

(Sociological Importance of Association)

7.5 संस्था (Institution)

7.6 समिति और संस्था

7.7 सार संक्षेप

7.8 मुख्य शब्द

7.9 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

7.10 संदर्भ ग्रन्थ

7.11 अभ्यास प्रश्न

7.1 प्रस्तावन

समिति कुच्छ आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये व्यक्तियों द्वारा निर्मित की जाती है। इसमें व्यक्ति निश्चित उद्देश्य लेकर सम्मिलित होता है। यह व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन है। समिति व्यक्तियों का वह समूह है, जो आवश्यकता की पूर्ति के लिये संगठित होती है। मैकाइवर और पेज के अनुसार समिति आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन है। समाज में प्रत्येक

व्यक्ति की कुछ-न-कुछ आवश्यकताएँ होती हैं। प्रत्येक व्यक्ति इन आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयास करता है। मैकाइवर और पेज के अनुसार व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति निम्न तीन प्रकार से करता है -

7.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकेंगे।
2. विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकेंगे।
3. आर्थिक स्थिरता और समावेशी विकास को सुनिश्चित करने के उपाय समझ सकेंगे।
4. सामाजिक और आर्थिक समानता स्थापित करने के लिए नीतियों का विश्लेषण कर सकेंगे।
5. वैश्विक प्रतिस्पर्धा में भारतीय अर्थव्यवस्था की भूमिका का मूल्यांकन कर सकेंगे।

7.3 समिति (Association)

समिति कुच्छ आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये व्यक्तियों द्वारा निर्मित की जाती है। इसमें व्यक्ति निश्चित उद्देश्य लेकर सम्मिलित होता है। यह व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन है। समिति व्यक्तियों का वह समूह है, जो आवश्यकता की पूर्ति के लिये संगठित होती है। मैकाइवर और पेज के अनुसार समिति आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन है। समाज में प्रत्येक व्यक्ति की कुछ-न-कुछ आवश्यकताएँ होती हैं। प्रत्येक व्यक्ति इन आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयास करता है। मैकाइवर और पेज के अनुसार व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति निम्न तीन प्रकार से करता है -

(1) आवश्यकताओं की पूर्ति का पहला तरीका यह है कि व्यक्ति स्वयं ही अपनी आवश्यकताएँ पूरी

करे। वे समाज में रहते हुए दूसरे के हित और अहित का ध्यान दिये बगैर अपनी आवश्यकता को पूरी करे।

मैकाइवर ने इस प्रकृति को सामाजिक कहा है।

(2) आवश्यकताओं की पूर्ति का दूसरा साधन संघर्ष का है। वह जिस वस्तु को मूल्यवान समझे उसे प्राप्त करने के लिये दूसरों से संघर्ष करे। मैकाइवर ने इस प्रवृत्ति को असभ्य और जंगली कहा है।

(3) आवश्यकताओं की पूर्ति का तीसरा साधन 'सहयोग' पर आधारित है। इसमें सभी व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये एक-दूसरे का सहयोग करते हैं।

यह अन्तिम तरीका सहयोग पर आधारित है। यह रीति दो प्रकार की हो सकती है-पहला आकस्मिक जिसमें व्यक्ति अपनी किसी विशिष्ट आवश्यकता की पूर्ति के लिये सहयोग करता है। दूसरा प्रथाओं पर आधारित हो सकती है। जैसे कटाई के समय पड़ोसी एक-दूसरे की सहायता करते हैं। सामान्यतया ऐसा देखा जाता है कि व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये एक संगठन बना लेते हैं। यही समिति को जन्म देता है।

समिति की परिभाषा

(Definition of Association)

विभिन्न विद्वानों ने समिति की निम्न परिभाषाएँ दी हैं-

(1) मैकाइवर और पेज "समिति सामान्य उद्देश्यों के लिये संगठित समूह है।"

(2) बोगार्डस "सामान्यतः किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिये मिलकर कार्य करना समिति है।"

(3) गिन्सबर्ग "समिति सामाजिक प्राणियों का एक समूह है, जो एक-दूसरे से सम्बन्धित है तथा जो एक निश्चित उद्देश्य या उद्देश्य की पूर्ति के लिये एक संगठन का निर्माण करती है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर ऐसा कहा जा सकता है कि समिति व्यक्तियों का वह समूह है जो किन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये संगठित हो जाते हैं।

समिति की विशेषताएँ

(Characteristics of Association)

(1) व्यक्तियों का समूह (Group of Peoples) समिति मूर्त होती है। जब कुछ व्यक्ति किन्हीं खास आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये एक संगठन बनाते हैं, तो उसे समिति कहते हैं। समिति का निर्माण तभी होगा, जबकि समान आवश्यकताओं वाले संगठित होंगे। व्यक्तियों के अभाव में समिति की कल्पना नहीं की जा सकती है।

(2) निश्चित उद्देश्य (Specific Purpose) समिति का विकास स्वतः नहीं होता। इसका जन्म व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये होता है। उदाहरण के लिये विद्यार्थी इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये कि 'लेखन सामग्री' सस्ती और अच्छी मिले, एक समिति का निर्माण कर लेते हैं। इसी प्रकार जितनी भी समितियाँ होती हैं, उनके पीछे एक निश्चित उद्देश्य होते हैं।

(3) ऐच्छिक सदस्यता (Voluntary Membership) समिति व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन है। सभी व्यक्तियों की आवश्यकताएँ समान नहीं होती हैं। इसलिए यह आवश्यक नहीं है कि सभी व्यक्ति किसी समिति के सदस्य बनें। इसकी सदस्यता भी ऐच्छिक होती है-परिवार की तरह अनिवार्य नहीं होती है। उदाहरण के लिये यह आवश्यक नहीं है कि विद्यार्थियों ने जो समिति बनाई है, उनकी सदस्यतः सभी अध्यापक और विद्यार्थी ग्रहण करें ही। व्यक्ति अपनी इच्छा से, अपनी आवश्यकता के अनुसार समिति का सदस्य होता है, इच्छा न होने पर वह समिति की सदस्यता का त्याग करता है।

(4) विचारपूर्वक स्थापना (Deliberately Framed) समिति की स्थापना की जाती है और यह स्थापना सोच-विचार कर की जाती है। व्यक्तियों के कुछ उद्देश्य होते हैं, व्यक्ति इन्हें प्राप्त करना चाहते हैं, तो वह नियमों के द्वारा सोच-विचार कर समिति की स्थापना करता है। इसका स्वतः विकास नहीं होता है।

(5) नियम (Rules) समिति नियमों पर आधारित होती है। ये नियम हैं- समिति की सदस्यता, योग्यता, आयु, लिंग, फीस, अनुशासन आदि। प्रत्येक सदस्य इन नियमों का पालन करता है और इन नियमों के पालन के द्वारा ही उसकी आवश्यकताएँ पूरी होती हैं।

(6) अस्थायी (Temporary) समिति की प्रकृति अस्थायी होती है। समिति की स्थापना कुछ उद्देश्यों की पूर्ति के लिए की जाती है, और जैसे ही इन उद्देश्यों की प्राप्ति होती है, समिति समाप्त हो जाती है।

(7) सहयोग (Co-operation) सदस्यों का पारस्परिक सहयोग समिति का आधार है। समिति की सदस्यता ऐच्छिक होती है। इसकी सदस्यता उद्देश्यों की पूर्ति के लिये होती है। इसलिये जिन व्यक्तियों के समान उद्देश्य होंगे, वे ही समिति की सदस्यता ग्रहण करेंगे। समिति के सभी व्यक्ति अपने उद्देश्य की प्राप्ति तभी कर सकते हैं, जबकि समिति के कार्यों में सहयोग करें। सहयोग के अभाव में उद्देश्य की पूर्ति असम्भव है।

समिति और समुदाय में अन्तर (Difference Between Association and Community)

समिति और समुदाय में निम्न अन्तर हैं-

(i) समिति छोटी होती है। एक समुदाय के अन्तर्गत अनेक समितियाँ हो सकती है। जैसे एक कबीले के अन्दर दो-तीन समितियाँ हो सकती हैं।

(ii) समिति की सदस्यता ऐच्छिक होती है, किन्तु समुदाय की सदस्यता अनिवार्य है।

(iii) समुदाय का स्वतः विकास होता है, जबकि समिति का निर्माण कुछ आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये किया जाता है।

(iv) समिति विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति करती है, जबकि समुदाय सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

(v) समिति में सामुदायिक भावना अनिवार्य नहीं है, समुदाय के लिये सामुदायिक भावना अनिवार्य है।

(vi) समिति के लिये स्थानीय क्षेत्र आवश्यक नहीं है, जबकि समुदाय के लिये स्थानीय क्षेत्र अनिवार्य है।

(vii) समिति अस्थायी होती है। जबकि समुदाय तुलनात्मक दृष्टि से स्थायी होता है।

(viii) समुदाय किन्हीं खास नियमों पर आधारित नहीं होता है, जबकि समिति नियमों पर आधारित होती है।

(ix) समिति साधन है-उद्देश्यों की पूर्ति के लिये। समुदाय अपने सदस्यों के अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं करता है, इसलिये समुदाय साध्य है।

(x) समिति के कुछ कार्यकर्ता होते हैं, समुदाय के लिये कार्यकर्ता आवश्यक नहीं हैं।

समिति और समाज में अन्तर (Differences Between Society and Association)

समाज और समिति में प्रमुख अन्तर निम्न हैं-

(1) समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है, जबकि समिति व्यक्तियों का समूह है।

(2) समाज अमूर्त अवधारणा है, जबकि समिति मूर्त संगठन है।

(3) समाज में तुलनात्मक स्थायित्व होता है, जबकि समिति अस्थायी होती है।

(4) समाज की सदस्यता अनिवार्य है, जबकि समिति की सदस्यता ऐच्छिक होती है।

(5) समाज के उद्देश्य सामान्य होते हैं, जबकि समिति का संगठन विशिष्ट उद्देश्य के लिये होता है।

(6) समाज में सहयोग तथा संघर्ष दोनों पाये जाते हैं, जबकि समिति के लिये सहयोग अनिवार्य है।

(7)

समाज का विकास स्वतः ही होता है, जबकि समिति की स्थापना जानबूझकर की जाती है।

7.4 समिति का समाजशास्त्रीय महत्व (Sociological Importance of Association)

समित्ति व्यक्ति के सामाजिक जीवन को दिशा प्रदान करती है, जिसके आधार पर समाज का विशाल संगठन बनता है। समिति का महत्व न केवल व्यक्ति की दृष्टि से है, अपितु समाज, राष्ट्र, संस्कृति और मानवता की दृष्टि से भी समिति की अनिवार्य आवश्यकता है। वर्तमान जटिल समाजों में समिति व्यक्तियों को दिशाबोध कराती है तथा उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायता करती है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से समिति के महत्व को निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित किया जा सकता है-

(1) मनुष्य जैविक प्राणी (Biological Animal) है। इस कारण उसकी अनेक आवश्यकताएँ हैं।

इन आवश्यकताओं की पूर्ति किसी एक स्थान से नहीं हो सकती है। समितियों की सहायता से मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायता प्राप्त करता है। (2) सामाजिक नियन्त्रण के क्षेत्र में भी समितियाँ महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती हैं। इसका कारण

यह है कि समितियों का संचालन अनेक नियमों और व्यवस्थाओं के द्वारा होता है। व्यक्ति इन नियमों का पालन

करता है। स्वभावतः इसका परिणाम यह होता है कि समाज का संगठन बनता है।

(3) समितियाँ मानव अस्तित्व की रक्षा में भी सहायक होती हैं। इसका कारण यह है कि समितियाँ व्यक्ति को सामाजिक परिस्थितियों के साथ सामंजस्य स्थापित करने में मदद करती हैं।

(4) समितियाँ सांस्कृतिक परम्पराओं को बनाये रखती हैं। इस प्रकार सामाजिक विरासत की रक्षा में इनका महत्वपूर्ण स्थान होता है। समाज की धार्मिक और सांस्कृतिक सामाजिक विरासत की रक्षा करती हैं। (5) समितियाँ समाज को व्यवस्थित करती हैं। इस प्रकार समितियाँ मानव सभ्यता की गति को दिशा निर्देश करती हैं।

(6) समितियाँ सामाजिक परिवर्तन की दिशा का निर्धारण करती हैं। इस प्रकार सामाजिक विकास और प्रगति में सहायक होती हैं।

(7) समितियाँ व्यक्ति के समाजीकरण में योग देकर मानव व्यक्तित्व का विकास और अग्रसर करती हैं। परिवार, विवाह, राज्य आदि के द्वारा मनुष्य सद्गुणों की शिक्षा ग्रहण करता है।

(8) समितियाँ समाज-विरोधी शक्तियों से व्यक्ति की रक्षा करती हैं। समितियाँ व्यक्ति को एकता के सूत्र में बाँधती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि व्यक्ति की सृजनात्मक शक्ति का विकास होता है। साथ ही समितियाँ बाहरी शक्तियों से भी रक्षा करती है।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति के सामाजिक जीवन में समिति की अनिवार्य आवश्यकता है।

क्या परिवार एक समिति है? (Is Family An Association?)

समिति का अध्ययन करते समय यह जानना आवश्यक हो जाता है कि परिवार को समिति कहा जा सकता है अथवा नहीं? मैकाइवर और पेज ने परिवार की परिभाषा करते हुए लिखा है कि 'परिवार वह समूह है, जिसके अन्तर्गत स्त्री-पुरुष का यौन सम्बन्ध पर्याप्त निश्चित हो और सम्बन्ध ऐसा हो जिससे सन्तान उत्पन्न हो और उनका पालन-पोषण भी किया जाये।' इस प्रकार स्पष्ट है कि परिवार का निर्माण कुछ विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए हुआ है, जैसे यौन सम्बन्धों की पूर्ति, स्नेह और वात्सल्य, बच्चों का जन्म तथा उनका पालन-पोषण और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति आदि। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि परिवार समिति है। इसका कारण यह है कि-

(i) परिवार वह मानव समूह है जिसका संगठन कुछ निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए हुआ है, और

(ii) विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति के लिये परिवार के सदस्य एक-दूसरे को सहयोग करते हैं।

किन्तु, सिर्फ उपर्युक्त दो विशेषताओं के आधार पर परिवार को समिति नहीं कहा जा सकता है। इसका कारण यह है कि -

(i) परिवार का स्वतः विकास हुआ है।

(ii) परिवार की सदस्यता ऐच्छिक न होकर अनिवार्य है।

(iii) इस दृष्टि से परिवार मानव समाज की स्वाभाविक संस्था है, तथा

(iv) परिवार में व्यक्ति जन्म से मृत्यु तक सामान्य जीवन व्यतीत करता है।

उपर्युक्त विशेषताओं को ध्यान में रखकर यह कहा जा सकता है कि परिवार समिति नहीं, समुदाय है। इस प्रकार परिवार के दो स्वरूप हो सकते हैं-

(अ) समुदाय के रूप में (आ) समिति के रूप में।

अब हम मानस समाज की विवाह और परिवार के कार्यों की चर्चा करते हैं; तो ऐसा लगता है कि परिवार समुदाय है। किन्तु यदि हम वर्तमान समय में परिवार के समझौते पर आधारित सम्बन्धों की चर्चा करते हैं, तो यह समिति है। इस प्रकार नवजात शिशुओं के लिए परिवार समुदाय है, किन्तु जब यही नवजात शिशु बड़ा होकर अपना नया परिवार बसा लेता है तो पुराना परिवार उसके लिये समिति का स्वरूप धारण कर लेता है तथा नया परिवार समुदाय का। समिति के स्वरूपों में परिवर्तन का यह क्रम निरन्तर चलता है। मैकाइवर और पेज ने लिखा है कि-

'विशेषकर कुछ आदिकालीन और अत्यन्त ग्रामीण समाजों के परिवारों के समुदाय के अधिकांश गुण मिलते हैं लेकिन आधुनिक जटिल समाज में समस्त सभ्यताओं के समान, जहाँ तक उसके वयस्क सदस्यों

का सवाल है, परिवार निश्चित ही एक समिति हो सकती है।'

क्या राज्य एक समिति है?(Is State an Association)

मानव की राजनैतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए राज्य नामक संस्था का जन्म और विकास हुआ। मौलिक प्रश्न यह पैदा होता है कि राज्य को समिति कहा जा सकता है या नहीं? जो विद्वान् राज्य को समिति मानते हैं, उनका विचार है कि राज्य का जन्म कुछ विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हुआ है तथा यह राजनैतिक व्यक्तियों का संगठन मात्र है। इसके साथ ही राज्य मूर्त है तथा इसका संचालन भी कुछ नियमों के माध्यम से होता है। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि राज्य एक समिति है। किन्तु अनेक विद्वान् राज्य को समिति नहीं मानते हैं। उनका तर्क है कि-

(1) राज्य की सदस्यता अनिवार्य होती है, जबकि समिति की सदस्यता ऐच्छिक होती है।

(2) राज्य का निश्चित भू-भाग (भौगोलिक सीमा) होता है, जबकि समिति का कोई निश्चित भू-भाग नहीं होता है।

(3) राज्य स्थायी संगठन है, जबकि समिति का स्वरूप अस्थायी होता है।

(4) राज्य के अधिकार एवं क्षेत्र-विस्तृत होते हैं, जबकि समिति के अधिकार एवं क्षेत्र सीमित होते हैं।

(5) एक व्यक्ति एक समय में सिर्फ एक राज्य की ही सदस्यता ग्रहण कर सकता है, किन्तु वह एक

समय में अनेक समितियों की सदस्यता ग्रहण कर सकता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि समिति राज्य नहीं है, किन्तु फिर भी राज्य और समिति में अनेक समानताएँ पायी

जाती हैं। राज्य में समिति की जो विशेषताएँ पायी जाती हैं, वे इस प्रकार हैं-

(1) राज्य का निर्माण राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये हुआ है।

(2) राज्य मनुष्यों द्वारा निर्मित औपचारिक संगठन है, तथा

(3) राज्य की निश्चित संरचना और कार्य-प्रणाली होती है।

इसीलिए मैकाइवर और पेज ने लिखा है कि, 'राज्य सामाजिक संगठन का ही एक रूप है और धार्मिक समाजशास्त्र: बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर- और

व्यापारिक समितियों की ही भाँति एक समिति है।' मैकाइवर ने आगे लिखा है कि 'राज्य समिति तो है, लेकिन उनसे आगे राज्य एक महासमिति (Great Association) है।' राज्य को निम्न आधारों पर महासमिति कहा जा सकता है - है।

(1) राज्य के अन्दर अनेक समितियाँ होती हैं। इसलिए राज्य को समितियों का महासंघ कहा जा सकता

(2) राज्य समितियों की कार्य-प्रणालियों का निर्धारण करता है, अतः राज्य महासमिति है।

(3) राज्य व्यापक है तथा इसकी सदस्यता अनिवार्य है।

(4) राज्य सम्प्रभुत्ता प्राप्त है।

उपर्युक्त आधारों पर राज्य को समिति तो नहीं कहा सकता है, किन्तु इसको महासमिति कहा जा सकता है।

7.5 संस्था (Institution)

समाज में दो प्रकार के हित होते हैं-सामान्य हित, और विशिष्ट हित। सामान्य हित सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, जबकि विशिष्ट हित में किसी विशिष्ट आवश्यकता की पूर्ति की जाती है। इन विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समिति का निर्माण किया जाता है। इन समितियों के द्वारा उद्देश्यों की प्राप्ति तभी सम्भव है, जबकि समिति का संचालन एक व्यवस्था के द्वारा हो, कुछ नियम और कार्यप्रणालियों को अपनाया जाता है। समिति की इन्हीं कार्य प्रणालियों और नियमों को संस्था कहा जा सकता है। इस प्रकार परिवार, राज्य, विवाह और सरकार सभी संस्थाएँ हैं। जब मनुष्य समिति बनाते हैं, तब ये सामान्य कार्य-व्यापार के संचालन तथा सदस्यों के परस्पर नियमन के लिए नियम और कार्यप्रणालियों भी बनाते हैं। ये नियम ही संस्थाएँ है।

इस प्रकार संस्थाएँ समिति की आत्मा हैं। संस्थाओं के अभाव में समिति की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। प्रत्येक समिति के अन्तर्गत कुछ संस्थाएँ पायी जाती हैं। मैकाइवर और पेज ने निम्न तालिका द्वारा यह स्पष्ट किया है

कि समिति के अन्तर्गत किस प्रकार अनेक संस्थाएँ कार्य करती हैं और इन संस्थाओं के क्या उद्देश्य या हित होते हैं? 2

क्रमांक	समिति	विशेष संस्थाएँ	विशेष हित
1.	परिवार	विवाह, गृह उत्तराधिकार	यौन-सम्बन्ध, गृह वंशावली
2.	महाविद्यालय	व्याख्याता, परीक्षा प्रणाली, स्वातकत्व	शिक्षण, व्यावसायिक तैयारी
3.	व्यापार	लेखा प्रणाली, संस्थान, अंश पूँजी	लाभ
4.	व्यापार संघ	सामूहिक सौदेबाजी, हड़ताल, धरना	नौकरी, सुरक्षा, पारिश्रमिक दर
5.	गिरजाघर	सम्प्रदाय, धर्म, भ्रातृत्व, उपासना के स्वरूप	कार्य की स्थितियां, धार्मिक विश्वास
6.	राजनैतिक दल	प्राथमिक इकाइयाँ, दलयंत्र, राजनैतिक यंत्र	कार्यालय, शक्ति, सरकारी नीति
7.	राज्य	संविधान, संवैधानिक संहिता, शास्त्र के रूप	सामाजिक व्यवस्था का साधारण निगमन

इस प्रकार स्पष्ट है कि परिवार एक समिति है; व्यक्तियों का एक संग्रह है। परिवार का संगठन कुछ विशेष उद्देश्यों को दृष्टि में रखकर किया गया है, जैसे यौन सम्बन्धों की व्यवस्था, प्रजाति की रक्षा और एक पीढ़ी से दूसरे पीढ़ी को हस्तान्तरण। इसकी पूर्ति के लिए कुछ विशेष नियमों का निर्माण किया गया है, जैसे वेवाह, उत्तराधिकार-इन्हें ही संस्था कहा जाता है। इसी प्रकार महाविद्यालय एक समिति है। इस समिति का नेर्माण शिक्षण के उद्देश्यों से किया गया है। शिक्षण के उद्देश्य की प्राप्ति के लिये महाविद्यालय के कुछ नियम जैसे प्रवेश लेना, कक्षाओं में जाना, परीक्षा में बैठना और पास करना आदि। इसी प्रकार प्रत्येक समितियों का निर्माण कुछ उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये होता है और इन

उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये जो नियम बनाये जाते या जो प्रणालियाँ अपनायी जाती हैं, इन्हें ही संस्था कहा जाता है।

संस्था की परिभाषा (Definition of Institution)

समाजशास्त्रियों ने संस्था की जो परिभाषाएँ दी हैं, उनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं

(1) समाजशास्त्र शब्दकोष 'किसी भी मुख्य सामाजिक हित के आस-पास निर्मित भौतिक उपकरणो प्रक्रियाओं, सम्बन्धों एवं संरचना का कुल योग संस्था कहलाता है।'

समाजशास्त्र शब्दकोष में संस्था की जो परिभाषा दी गयी है, उसके अनुसार इसकी विशेषताओं के निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(i) सामाजिक व्यवहार का ढाँचा।

(ii) सामाजिक व्यवहार के ढाँचे से सम्बन्धित भौतिक उपकरण। उदाहरण के लिये भवन, पुस्तकें रुपये मशीनें आदि ।

(iii) मानव समाज की अनन्त आवश्यकताएँ है। उदाहरण के लिए पारिवारिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि ।

(2) मैकाइवर और पेज "संस्थाएँ कार्य-विधियों की स्वीकृत दशाएँ या स्वरूप हैं, जो समूह की विशेषता को स्पष्ट करती है।"

मैकाइवर तथा पेज के द्वारा दी गई संस्था की परिभाषा में इसकी अग्रलिखित विशेषताओं का उल्लेख -

(i) संस्थाएँ कार्य-व्यवहार की विधियाँ हैं,

(ii) ये विधियाँ समाज द्वारा स्थापित होती हैं।

(3) बोगार्डस 'सामाजिक संस्था समाज का वह ढाँचा है, जो सुव्यवस्थित कार्य-विधियों के द्वारा मानव आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संगठित किया जाता है।'

बोगार्डस की परिभाषा में संस्था की निम्न विशेषताओं को सम्मिलित किया गया है

(i) संस्थाएँ समाज की संरचना का निर्धारण करती है,

(ii) जिससे सामाजिक सम्बन्धों का निर्माण होता है,

(iii) सामाजिक सम्बन्धों के निर्मित हो जाने से व्यक्ति संगठित होते हैं, तथा

(iv) व्यक्तियों के संगठित हो जाने से वे व्यवस्थित ढंग से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सक्षम होते हैं।

(4) वेबलिन 'संस्थाएँ सामान्य जनता में पाई जाने वाली विचार करने की स्थिर आदतें हैं।'

(5) सदरलैण्ड तथा अन्य 'एक संस्था अनरीतियों एवं रूढ़ियों का ऐसा समूह है, जो कुछ मानवीर उद्देश्यों की पूर्ति में केन्द्रीभूत होता है।'

इस प्रकार "विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति के लिए स्थापित समितियों की कार्यविधि को संस्था कहा ज सकता है।"

संस्था की उत्पत्ति(Origin of Institution)

संस्था की उत्पत्ति मानव-विचार से होती है। मनुष्य अपने विचार को कार्य रूप में परिणित करता है वह अपने विचार के अनुसार बार-बार व्यवहार करता है। यह विचार बार-बार करने से व्यक्ति की आदत ब जाती है। समूह के अन्य व्यक्ति उसका अनुकरण करते हैं, और इसे दोहराते हैं। फल यह होता है कि व्यि की आदत समूह की आदत के रूप में परिणित हो जाती है। इसे ही जनरीति कहा जाता है। जब जनरीतिर के साथ भूतकालीन अनुभव जोड़ दिये जाते हैं, तो यह प्रथा का रूप ले लेती है। जब प्रथा में समूह स्वीकृति और कल्याण की भावना जोड़ दी जाती है, तो इसे रूढ़ि या लोकाचार कहते हैं। जब रूढ़िव स्थापना एक रुचि के अनुसार होती हैं, तो इसे संस्था कहते हैं। इसके द्वारा मनुष्यों के व्यवहारों को व्यवस्थि और नियन्त्रित किया जाता है।

संस्था के आवश्यक तत्व (Essential Elements of Institution)

संस्था के कुछ आवश्यक तत्व होते हैं, जो संस्था की धारणा को पूर्ण करते हैं। संस्था में निम्न आवश्यक तत्व पाये जाते हैं -

(1) धारणा (Concept) धारणा संस्था का सबसे महत्वपूर्ण तत्व है। इस धारणा में सामाजिक हित का तत्व विशेष रूप से विद्‌यमान रहता है। संस्था का विकास ही किसी धारणा या विचार से होता है और समूह के अस्तित्व की रक्षा के लिये इसको अपनाया जाता है।

विचार - 1

विचार + पुनरावृत्ति आदत 2

आदत + सामूहिक पुनरावृत्ति जनरीति या समूह की आदत 3

जनरीति + भूतकालीन अनुभव प्रथा -4

प्रथा + समूह की स्वीकृति कल्याण की भावना

रूढ़ि की लोकाचार -5

लोकाचार + एक निश्चित ढाँचा -6

संस्था = व्यवस्था

चित्र संस्था के विकास की प्रक्रिया

(2) उद्‌देश्य (Purpose) प्रत्येक संस्था का एक निश्चित उद्‌देश्य होता है। उद्‌देश्य के कारण विचार उत्पन्न होती हैं, जो बाद में संस्था का रूप धारण कर लेते हैं। जैसे ही संस्था उद्‌देश्यहीन हो जाती है, समाप्त हो जाती है।

(3) स्थिरता (Permanency) संस्था का निर्माण तब होता है, जब विचार स्थिर हो जाते हैं या उसकी उपयोगिता स्वीकार कर ली जाती है। संस्था का निर्माण पीढ़ी-दर-पीढ़ी के अनुभवों के कारण होता है, इसके कारण उनमें स्थायित्व रहता है।

(4) ढाँचा (Structure) मानव मस्तिष्क में जिस प्रकार की उत्पत्ति हुई, उसे कार्य रूप में परिणित

करने के लिए ढाँचे की आवश्यकता होती है। व्यक्ति समूह में किस प्रकार का व्यवहार होगा, इसकी एक व्यवस्था होती है, इसे ही ढाँचा कहा जाता है।

(5) स्वीकृति एवं अधिकार संस्थाएँ समूह के द्वारा मान्यता-प्राप्त होती हैं। इनका उल्लंघन नहीं किया जा सकता है। इसके लिये यह आवश्यक है कि समूह इन्हें कुछ अधिकार दे देता है, जिसमें संस्थाएँ अपने उद्देश्यों को पूरा करती है।

(6) प्रतीक (Symbol) प्रतीक का अर्थ चिन्ह से है। प्रत्येक संस्था का कोई-न-कोई प्रतीक होता है। यह भौतिक और अभौतिक दोनों रूप में हो सकता है। जैसे विवाहित औरत का प्रतीक है माँग में सिन्दूर लगाना।

संस्था के कार्य(Functions of Institution)

संस्था का विकास कुछ निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए संस्था को कुछ कार्य करने पड़ते हैं। दूसरे शब्दों में संस्था का महत्व सिर्फ इसलिए है कि वह मानव-आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। प्रमुख रूप से संस्था निम्न कार्य करती है-

(1) मानव आवश्यकताओं की पूर्ति संस्थाएँ स्वयं में साध्य नहीं हैं, ये मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति की साधन मात्र है। संस्था का विकास ही किसी-न-किसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए हुआ है। जैसे यौन सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति विवाह की संस्था के द्वारा होती है। इसी प्रकार सभी संस्थाओं का जन्म किसी-न-किसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए होता है। मानव-आवश्यकताओं की पूर्ति में संस्थाओं का महत्वपूर्ण योगदान है।

(2) संस्कृति की वाहक संस्थाएँ संस्कृति की वाहक होती हैं। ये संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित करती रहती हैं। धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक संस्थाएँ संस्कृति के विभिन्न भागों की रक्षा करती है और आगे आने वाली सन्तानों को सौंप देती हैं।

(3) मानव व्यवहार पर नियन्त्रण सामाजिक संस्थाएँ मनुष्यों के व्यवहारों पर नियन्त्रण रखती हैं। संस्थाएँ प्रथाओं का विकास करती हैं, जो मान्यता प्राप्त होती है। इनका उल्लंघन नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए जाति-प्रथा और संयुक्त परिवार संस्थाएँ हैं, जिनके द्वारा समाज नियन्त्रित रहता है।

(4) पद और कार्य प्रदान करना "संस्थाओं की महत्वपूर्ण विशेषता यह भी होती है कि ये अपने सदस्यों के पदों और कार्यों का निर्धारण करती हैं। इससे समाज

का ढाँचा संगठित रहता है और अस्तित्व के लिए संघर्ष नहीं होता है। विवाह के द्वारा पुरुष को पति और स्वी को पत्नी का पद प्राप्त होता है और इसी के अनुसार कार्य करते हैं।"

(5) अनुरूपता उत्पादन करना अनुरूपता का तात्पर्य एकरूपता से है, जो बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार की होती हैं। संस्थाएँ सभी व्यक्तियों के सामने आदर्श रखती हैं। इससे सदस्यों में एकरूपता आती है। यह एकरूपता सभी क्षेत्रों से सम्बन्धित होती है।

(6) व्यक्ति के कार्यों को सरल करना समाज सामाजिक सम्बन्धों की जटिल व्यवस्था है। समाज इतना जटिल है कि इसमें व्यक्ति उचित और अनुचित का निर्धारण ही नहीं कर पाता है। इस जटिल परिस्थिति में संस्थाएँ व्यक्ति का मार्ग-दर्शन करती हैं। संस्थाओं के द्वारा यह निश्चित होता है कि व्यक्ति को कौन-सा कार्य करना है और कौन-सा कार्य नहीं करना है।

7.6 समिति और संस्था

साधारणतया समिति और संस्था का प्रयोग समान अर्थों के लिए किया जाता है, किन्तु यह धारणा भ्रमपूर्ण है। संस्था और समिति में मूलभूत अन्तर हैं। उदाहरण के लिए एक समिति है, इस समिति के दो अंग

(i) पहला उसके सदस्य मनुष्य होते हैं। दूसरे शब्दों में समिति समान उद्देश्य वाले मनुष्य का संग्रह है।

(ii) समिति का दूसरा भाग भी है द्वारा समिति का संचालन किया जाता है। इसके अन्तर्गत नियम, कानून और व्यवस्थाएँ सम्मिलित हैं, जिनके समिति का दूसरा भाग ही संस्था है।

एक सिक्का (Coin) है, इसके दो पक्ष हैं। एक गाड़ी है, इस गाड़ी को चलाने के लिए दो पहियों की आवश्यकता होती है। एक पहिये से गाड़ी नहीं चल सकती है। सिक्के के दोनों पक्षों को अलग नहीं किया जा सकता है। इन दोनों की उत्पत्ति और विकास मानव-आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हुआ है। मैकाइवर और पेज ने संस्था और समिति के अन्तर को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "जब हम किसी संगठित समूह का विचार करते हैं तो वह एक समिति है और

यदि कार्य-प्रणाली के एक रूप का विचार करते हैं तो वह एक संस्था है। समिति से सदस्यता का बोध होता है, संस्था से सेवा के एक प्रकार का अथवा साधन का बोध होता है।"

मैकाइवर ने इन दोनों के अन्तर को स्पष्ट करने के लिए 'महाविद्यालय' का उदाहरण दिया है। जब हम विद्यालय के छात्रों और अध्यापकों का एक समूह मात्र बनाते हैं, तो यह समिति है। जब हम महाविद्यालय की शिक्षा-प्रणाली और कार्यप्रणाली की बात करते हैं तो इसका अर्थ संस्था से होता है। यह आवश्यक नहीं है कि व्यक्ति एक ही संस्था का सदस्य हो, वह अनेक संस्थाओं का एक साथ सदस्य हो सकता है, जैसे- परिवार, जेल, राज्य आदि ।

परिवार के उदाहरण के लिए ही संस्था और समिति के अन्तर को स्पष्ट किया जा सकता है। जब परिवार को माता-पिता और उनके बच्चे के समूह के रूप में देखा जा सकता है, तो वह समिति है। किन्तु जब परिवार में विवाह की विधियाँ, परिवार के रीति-रिवाज और आचार-विचार की चर्चा करते हैं, तो इसे संस्था कहा जा सकता है। अब जहाँ तक मनुष्य की सदस्यता का सवाल है कि वह समिति का सदस्य है या संस्था का ? मनुष्य धूर्त है; जबकि परिवार के नियम और रीति-रिवाज अमूर्त होते हैं। मूर्त वस्तुएँ अमूर्त समूह का सदस्य किस प्रकार से हो सकती हैं? अतः मनुष्य समिति के सदस्य होते हैं, संस्थाओं के नहीं। मैकाइवर ने लिखा है कि "हम समितियों के सदस्य हैं, न कि संस्थाओं के।"

समिति और समुदाय की तुलना में इन दोनों का अन्तर स्पष्ट हो जायेगा

(1) संस्था नियमों और कानूनों का संग्रह है, समिति मनुष्य का समूह है।

(2) संस्था अमूर्त होती है, समिति मूर्त है।

(3) संस्था का स्वतः विकास होता है, समिति की स्थापना की जाती है।

(4) संस्था तुलनात्मक दृष्टि से समिति से अधिक स्थायी होती है।

(5) संस्था के नियम व्यापक होते हैं और समाज के प्रत्येक सदस्यों के लिये उनका पालन अनिवार्य

है। समिति के नियम सिर्फ उन्हीं व्यक्तियों पर लागू हाते हैं, जो समिति की सदस्यता ग्रहण करते हैं।

(6) संस्था सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन है, जबकि समिति विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति करती है।

(7) तुलनात्मक दृष्टि से संस्था का ढाँचा अधिक स्पष्ट और निश्चित होता है।

(8) संस्था के लिये विशिष्ट सांस्कृतिक उपकरण आवश्यक हैं, समिति के लिये नहीं।

स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्न:

1. निम्न में से कौन-सा कथन सही है-

(अ) परिवार एक समिति है (स) परिवार समिति एवं संस्था दोनों है

(ब) परिवार एक संस्था है (द) परिवार एक समुदाय एवं समिति है

2. समिति का उदाहरण है -

(अ) राज्य (ब) जिला

(स) वॉलीवाल क्लब (द) प्लेटफार्म

7.7 सार संक्षेप

समिति और संस्था दोनों समाज में संगठन और कार्यों के संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, हालांकि इन दोनों के उद्देश्यों और संरचनाओं में अंतर होता है। समिति एक अस्थायी समूह होती है, जिसे किसी विशेष कार्य या समस्या को हल करने के लिए स्थापित किया जाता है। समितियों का गठन अक्सर एक सीमित उद्देश्य के लिए किया जाता है, जैसे किसी आयोजन की योजना बनाना, किसी मुद्दे पर विचार करना या किसी विशेष कार्य को पूरा करना। समितियाँ लचीली और अनौपचारिक होती हैं, और इनके सदस्य निर्धारित समय

के लिए कार्य करते हैं। उदाहरण के तौर पर, किसी शिक्षा संस्थान में शैक्षिक सुधार के लिए समिति बनाई जा सकती है।

इसके विपरीत, संस्था एक स्थायी और संगठित संगठन है, जिसका उद्देश्य दीर्घकालिक होता है। संस्थाओं का कार्यक्षेत्र व्यापक होता है और ये समाज के विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करती हैं, जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, समाज कल्याण, राजनीति, आदि। संस्थाएँ विधिक रूप से स्थापित होती हैं और इनका संचालन एक निर्धारित ढांचे और नियमों के तहत होता है। ये समाज में स्थायी प्रभाव डालने के लिए काम करती हैं। उदाहरण के तौर पर, सरकार, स्कूल, अस्पताल, और गैर-लाभकारी संगठन जैसी संस्थाएँ समाज के कल्याण और विकास के लिए काम करती हैं।

समिति और संस्था दोनों समाज में सुधार और विकास की दिशा में कार्य करती हैं, लेकिन समिति का उद्देश्य अक्सर संकीर्ण और अस्थायी होता है, जबकि संस्था का उद्देश्य व्यापक और दीर्घकालिक होता है। समितियाँ लचीली और कार्य केंद्रित होती हैं, जबकि संस्थाएँ अधिक संरचित और व्यवस्थित होती हैं।

7.8 मुख्य शब्द

1. सदस्य (Member) - किसी समिति या संस्था का हिस्सा बनने वाला व्यक्ति। सदस्य संगठन के कार्यों में भाग लेता है और उसके उद्देश्य को पूरा करने में योगदान देता है।

2. कार्यकारिणी (Executive) - वह समिति या संस्था का समूह जो निर्णय लेने और कार्यों को लागू करने की जिम्मेदारी निभाता है। कार्यकारिणी आमतौर पर उच्च पदों पर बैठे सदस्य होते हैं।

3. विधान (Constitution) - संस्था या समिति का वह लिखित दस्तावेज जो उसके उद्देश्य, कार्य, और नियमों का निर्धारण करता है। यह संस्था के संचालन के लिए एक मार्गदर्शक के रूप में काम करता है।

4. कार्यक्रम (Program) - समिति या संस्था द्वारा निर्धारित एक विशेष कार्य या परियोजना जिसे पूरा करने के लिए योजना बनाई जाती है। यह कार्य संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने में मदद करता है।

7.9 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

1 (स), 2. (स)

7.10 संदर्भ ग्रन्थ

- **बालाकृष्णन, पी.** (2022). *भारतीय अर्थव्यवस्था की पुनर्प्राप्ति: राजनीतिक अर्थव्यवस्था दृष्टिकोण.* नई दिल्ली: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
- **बासु, के.** (2018). *विश्वास का गणराज्य: कानून और अर्थशास्त्र के लिए एक नया दृष्टिकोण.* प्रिंसटन, एनजे: प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।
- **नागराज, आर.** (2019). *भारत में आर्थिक विकास और विकास: नए दृष्टिकोण.* नई दिल्ली: रूटलेज।
- **पानगढ़िया, ए.** (2020). *अनलिमिटेड इंडिया: खोई हुई महिमा को पुनः प्राप्त करना.* न्यूयॉर्क: हार्पर कॉलिन्स।
- **घोष, ए.** (2021). *भारत की उभरती हुई अर्थव्यवस्था: 21वीं सदी में प्रदर्शन और संभावनाएँ.* नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

7.11 अभ्यास प्रश्न

परीक्षाओं के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न

(Important Questions for Examination)

(अ) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. 'हम समितियों के सदस्य हैं, संस्थाओं के नहीं।' उदाहरण देकर इस कथन को समझाइये।

2. संस्था व समिति में उदाहरण सहित अन्तर को स्पष्ट कीजिये।

3.सामाजिक संस्था की विशेषताओं का उल्लेख कीजिये। तथा संक्षेप में उसके प्रकायों की व्याख्या कीजिये ।

4. संस्था क्या है? उसके प्रमुख कार्यों का वर्णन कीजिये।

5. "समिति एक समुदाय नहीं, अपितु समुदाय के अन्तर्गत एक संगठन है।" विवेचना कीजिये ।

6."सहयोग समिति को जन्म देता है।" उदाहरण देकर विवेचना कीजिये ।

7. समिति की व्याख्या कीजिये और इसकी सामान्य विशेषताओं की विवेचना कीजिये ।

8. समिति के समाजशास्त्रीय महत्व की विवेचना कीजिये ।

9.समिति और समाज के अन्तर को स्पष्ट कीजिये ।

10. समिति और समुदाय के अन्तर को स्पष्ट कीजिये।

(ब) लघुउत्तरीय प्रश्न (Short-Answer Type Questions)

1. समिति से आप क्या समझते हैं?

2. समिति की दो प्रमुख परिभाषा लिखिये ।

3. समिति की तीन प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।

67 समाजशास्त्र: बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर 4.

समिति एवं समाज में अन्तर कीजिये।

5. समिति के समाजशास्त्रीय महत्व को 100 शब्दों में स्पष्ट कीजिये ।

6. क्या परिवार एक समिति है? समझाइये ।

7. संस्था को परिभाषित कीजिये ।

8. संस्था के आवश्यक तत्वों के नाम लिखिये।

9. संस्था के पाँच प्रमुख कार्य लिखिये ।

10. संस्था और समिति में अन्तर लिखिये ।

(स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. 'समिति आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन है।' यह कथन है-

(अ) गिन्सबर्ग का (ब) बोगार्डस का

(स) मैकाइवर और पेज का (द) टायलर का

2. 'हम समिति के सदस्य हैं, संस्थाओं के नहीं।' उपर्युक्त कथन है-

(अ) गिन्सबर्ग का (ब) बोगार्डस का

(स) मैकाइवर और पेज का (द) गिलिन और गिलिन का

3 "समिति सामान्य उद्देश्यों के समूहों की प्राप्ति के लिए संगठित समूह है।" समिति की उपर्युक्त परिभाषा प्रतिपादित किया है-

(अ) मैकाइवर एवं पेज ने (ब) बोगार्डस ने

(स) मैलिनोवास्की ने (द) गिन्सबर्ग ने

समिति की सदस्यता होती है-

(अ) अनिवार्य (ब) ऐच्छिक

(स) अनैच्छिक (द) जन्मजात

5. समिति की प्रमुख विशेषता निम्न में से कौन नहीं है-

(अ) निश्चित उद्देश्य (ब) अस्थायी

(स) विचारपूर्वक स्थापना (द) अमूर्तता

उत्तर 1. (स), 2. (स), 3. (अ), 4. (ब), 5. (द)

इकाई -8

समूह [GROUP]

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 समूह (Group)

8.4 समूह और समाज में अन्तर (Difference Between Group and Society)

8.5 सामाजिक जीवन में समूहों की भूमिका (Role of Groups in Social Life)

8.6 प्राथमिक एवं द्वितीयक समूह (Primary and Secondary Groups)

8.7 प्राथमिक समूहों का सामाजिक महत्व (Social Importance of Primary Groups)

8.8 द्वैतीयक समूहों का सामाजिक महत्व महत्व है (Social Importance of Secondary Groups)

8.9 सार संक्षेप

8.10 मुख्य शब्द

8.11 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

8.12 संदर्भ ग्रन्थ

8.13 अभ्यास प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

यह कथन अत्यन्त ही प्राचीन एवं प्रामाणिक है कि 'मनुष्य सामाजिक प्राणी है।' मौलिक प्रश्न यह है कि मनुष्य सामाजिक प्राणी क्यों है? वे कौन-सी परिस्थितियाँ एवं दशाएँ हैं, जो मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनाती हैं अथवा उसे सामाजिक प्राणी बनने के लिए बाध्य करती हैं। संसार के समस्त जीवधारियों में

मानव सर्वश्रेष्ठ है। मानव की सर्वश्रेष्ठता का आधार उनकी चेतना या जागरुकता (Consciousness) है। चेतना अथवा जागरुकता के कारण वह अन्य प्राणियों के साथ सम्बन्ध (Relations) स्थापित करता है। सामाजिक सम्बन्धों का विकास होता है। यही संगठन मनुष्य में सामूहिकता को विकसित करते हैं।

मनुष्य सामाजिक प्राणी तो है, वह भौतिक प्राणी भी है। उसकी अनन्त आवश्यकताएँ हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति वह अपने प्रयासों में नहीं कर सकता है, कारण उसके पास साधन और शक्ति सीमित हैं। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जब व्यक्ति साथ-साथ प्रयास करते हैं, तो वे समूह का निर्माण करते है।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकेंगे।
2. विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकेंगे।

8.3 समूह Group

सामाजिक समूह मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। वह समूह के बिना रह भी नहीं सकता है। जिस प्रकार मछली पानी से अलग जिन्दा नहीं रह सकती, ठीक उसी प्रकार व्यक्ति समूह से अलग अपने अस्तित्व की रक्षा नहीं कर सकता है।

शाब्दिक अर्थ सामाजिक समूह दो शब्दों से मिलकर बना है -

सामाजिक + समूह

सामाजिक समाज से सम्बन्धित समूह दो या दो से अधिक इस प्रकार दो या दो से अधिक व्यक्तियों के संगठन को सामाजिक समूह कहते हैं।

समूह का अर्थ

(Meaning of Group)

समूह का तात्पर्य दो या दो से अधिक व्यक्तियों अथवा वस्तुओं की एकता से है। समूह की कुछ परिभाषा इस प्रकार है -

(1) बोगार्डस 'समूह किसी वस्तु की इकाइयों की संख्या है, जो एक-दूसरे के निकट स्थित है।'

(2) शेरिफ एवं शेरिफ "समूह एक सामाजिक इकाई है, जिसका निर्माण ऐसे व्यक्तियों से होता है, जिनके बीच कम या अधिक मात्रा में निश्चित स्थिति एवं कार्य विषयक सम्बन्ध हों।"

सामाजिक समूह की परिभाषा (Definition of Social Groups)

समूह की परिभाषा से स्पष्ट है कि समूह दो या दो से अधिक व्यक्तियों अथवा वस्तुओं का एकत्रीकरण है। जब इन दो या दो से अधिक व्यक्तियों अथवा वस्तुओं में जागरुकता अथवा चेतना का विकास हो जाता है, तो इसे ही समूह के नाम से जाना जाता है। सामाजिक समूह की परिभाषाएँ इस प्रकार हैं-

(1) ग्रीन "समूह व्यक्तियों का संग्रह है, जो स्थायी है, जिसके एक या अधिक सामान्य हित या क्रियाएँ हैं, तथा जो संगठित हैं।"

(2) हर्टन एवं हण्ट "समूह व्यक्तियों के संग्रह अथवा श्रेणियाँ होते हैं, जिनमें सदस्यता एवं अन्तः क्रिया की चेतना है।"

(3) आगबर्न और निमकाफ "जब कभी दो या दो से अधिक व्यक्ति एक दूसरे के सम्पर्क में आते हैं और एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं तो वे सामाजिक समूह का निर्माण करते हैं।" समाजशास्त्र: बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर-1

(4) बोगार्डस "सामाजिक समूह को अनेक व्यक्तियों की एक संस्था के रूप में सोचा जा सकता है, जिससे कुछ सामान्य रुचियाँ हों, जो एक-दूसरे को प्रेरित करते हों, सामान्य उत्तरदायित्व रखते हों और सामान्य क्रियाकलापों में भाग लेते हों।"

(5) मैकाइवर और पेज "समूह से हमारा अर्थ मनुष्यों के किसी एकत्रीकरण से है, जो आपस में सामाजिक सम्बन्धों के कारण एक-दूसरे के निकट हैं।"

(6) एल्ड्जि और मेरिल "सामाजिक समूह दो या दो से अधिक व्यक्तियों के समूह के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिनमें अधिक समय तक संचार होता है और जो सामान्य उद्देश्य या कार्य के

अनुरूप व्यवहार करते हैं।"

(7) कैटेल "समूह उन जमात को कहते हैं, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को कुछ आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सभी सदस्यों का सहयोग लिया जाये।"

(8) गिन्सबर्ग "समूह व्यक्तियों का वह झुण्ड है, जो नियमित सम्पर्क था सामान्य संघ के रूप में रहते है तथा जिनकी निश्चित सामाजिक संरचना होती है।"

(9) फेयरचाइल्ड "दो या अधिक व्यक्तियों का संग्रह समूह है, जिनके बीच स्थापित मनोवैज्ञानिक अन्तःक्रिया प्रतिमान होता है, जो उसके सदस्यों द्वारा तथा सामान्यतया दूसरों के द्वारा भी, उसके विशिष्ट सामूहिक व्यवहार के कारण एवं सन्धि के रूप में स्वीकृत किया जाता है।"

इस प्रकार एक सामाजिक समूह परस्पर भूमिका अदा करते हुए लोगों का स्वयं तथा दूसरों से एक परस्पर क्रिया की इकाई के रूप में माना हुआ समूह है।

सामाजिक समूह की विशेषताएँ (Characteristics of Social Groups)

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर सामाजिक समूह की प्रमुख विशेषताओं को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(1) दो या दो से अधिक व्यक्ति (Two or more Persons) सामाजिक समूह की मौलिक विशेषता यह है कि सदस्यों की संख्या दो या दो से अधिक होनी चाहिए। अकेला व्यक्ति किसी प्रकार के समूह अथवा संगठन का निर्माण नहीं कर सकता है।

(2) सामाजिक सम्बन्ध (Social Relation) इसे पारस्परिक सम्बन्ध (Reciprocal Relations) भी कहा जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि समूह के सदस्यों में पारस्परिक सम्बन्ध का होना अनिवार्य है। पारस्परिक सम्बन्ध से उनमें चेतना का विकास होता है। यह चेतना सामाजिक सम्बन्धों के निर्माण

और विकास में सहायक होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि सदस्यों में अन्तः क्रियाओं का होना अनिवार्य है। ये सम्बन्ध दो प्रकार के हो सकते हैं-

(अ) प्रत्यक्ष सम्बन्ध (Direct Relations) प्रत्यक्ष सम्बन्ध के लिए सदस्यों में शारीरिक समीपता का होना अनिवार्य है। इसे आमने-सामने का सम्बन्ध भी कहा जाता है।

(आ) अप्रत्यक्ष सम्बन्ध (Indirect Relations) सामाजिक समूह के लिए सदस्यों में सम्बन्धों का प्रत्यक्ष होना आवश्यक नहीं है। सदस्यों में अप्रत्यक्ष सम्बन्ध भी समूहों का निर्माण कर सकते हैं। अप्रत्यक्ष सम्बन्ध में अनेक साधन हो सकते हैं -

(i) पत्र, (ii) तार, (iii) रेडियो, (iv) टेलीफोन, (v) टेलीविजन आदि।

(3) एकता की भावना (Sense of Unity) है। इस एकता का आधार चेतना होती है। यह चेतना दो सामाजिक समूह के सदस्यों में एकता पायी जाती प्रकार की होती है -

(अ) चेतन एकता, (आ) अचेतन एकता ।

(4) सामान्य समझ (Common Understanding) सामाजिक समूह के सदस्यों में सामान्य समझ का होना अनिवार्य है। प्रत्येक समूह के सदस्य के कुछ सामान्य हित (Common Interest) होते हैं। इन्हीं सामान्य हितों के कारण सदस्यों में सामान्य समझ का विकास होता है। जब तक किसी समूह के सदस्य सामान्य हित पर बँधे हुए नहीं होंगे, उनके सम्बन्धों में स्थायित्व का विकास नहीं होगा। (5) एक निश्चित आधार (A Definite Basis) यहाँ मौलिक प्रश्न यह पैदा होता है कि समूहों समाजशास्त्र बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर का निर्माण किस आधार पर होता है? प्रत्येक समूह में निर्माण के मूल में कुछ निश्चित आधार होते हैं। उदाहरण के लिए ये आधार हैं-रक्त सम्बन्ध, शारीरिक तथा मानसिक समानताएँ, आवश्यकताएँ, संख्या आदि। कुछ समूहों तथा उनके निश्चित आधार को निम्न तालिका में दिखाया गया है -

क्रम संख्या निश्चित आकार समूहों का विकास

क्रम संख्या	निश्चित आकार	समूहों का विकास
(1)	रक्त सम्बन्ध	परिवार
(2)	संख्या	प्राथमिक एवं द्वैतीयक समूह
(3)	शारीरिक समानता	प्रजाति

(6) परस्पर सहयोग (Mutual Co-operation) सहयोग के अभाव में किसी भी समूह के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती है। इसीलिए ऐसा कहा जाता है कि सहयोग सामाजिक समूह का आधार है। प्रत्येक जीवधारी की कुछ निश्चित आवश्यकताएँ होती हैं। वह इन आवश्यकताओं की पूर्ति करना चाहता है। अकेले वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता इसके लिए वह दूसरों का सहयोग प्राप्त करता है। सहयोग के आधार पर स्वतः समूह का निर्माण हो जाता है। व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं के लिए तथा अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्ष भी करते हैं, किन्तु कलान्तर में यह संघर्ष सहयोग का रूप धारण कर लेते हैं। समूह के लिए सहयोग इतना आवश्यक है कि मात्र मानव जीवन में ही घटित नहीं होता, अपितु पशुओं में भी सहयोग पाया जाता है।

(7) एक सामाजिक संरचना (A Social Structure) प्रत्येक समूह का निश्चित आकार-प्रकार होता है। इसी आकार-प्रकार को उसकी संरचना का ढाँचा कहा जाता है। सरल अर्थों में इसे समूह की बनावट भी कहा जाता है। समूह की संरचना का आकार व्यक्तियों के पद (Status) और कार्य या भूमिका (Role) होते हैं। उदाहरण के लिए कॉलेज। कॉलेज की एक निश्चित संरचना, आकार-प्रकार है। यह संरचना सम्बन्धों के आधार पर बनती है। प्राचार्य, अध्यापक विद्यार्थी आदि के कार्य कॉलेज की संरचना का निर्माण करते हैं।

(8) सामाजिक नियन्त्रण (Social Control) सामाजिक नियन्त्रण समूह का आधार है। नियन्त्रण के अभाव में समूहों के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती है। सामाजिक समूहों में पाये जाने वाले नियन्त्रण के साधनों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है

(a) औपचारिक नियन्त्रण,

(b) अनौपचारिक नियन्त्रण

(9) हम की भावना (We Feeling) समूह के सदस्यों में हम की भावना पायी जाती है। हम

की भावना के कारण समूह के सभी सदस्य एक-दूसरे की सहायता करते हैं तथा अपने हितों की रक्षा के लिए

प्रयास करते हैं।

(10) आदर्श नियम (Norms) प्रत्येक समूह के अपने नियम और कानून होते हैं। इन नियमों तथा कानूनों की व्यवस्था को आदर्श नियम के नाम से जाना जाता है।

(11) समान व्यवहार (Similar Behaviour) समूह दो प्रकार के होते हैं। पहले प्रकार के समूह वे हैं, जिनकी सदस्यता व्यक्ति के लिये अनिवार्य है। उदाहरण के लिये परिवार। किन्तु कुछ ऐसे समूह भी है, जिनकी सदस्यता व्यक्ति के लिये अनिवार्य नहीं है। इसकी सदस्यता व्यक्ति की इच्छा और आवश्यकता पर आधारित होती है। उदाहरण के लिए कॉलेज, क्लब आदि।

(12) समान उत्तरदायित्व (Common Responsibility) समूह के सदस्य समूह की क्रियाओं के समान रूप से उत्तरदायी होते हैं।

(13) गतिशील प्रकृति (Dynamic Nature) समूह कोई स्थिर अवधारणा नहीं है। इसकी प्रकृति गतिशील होती है। इसका कारण यह है कि समाज परिवर्तनशील है। इस परिवर्तनशीलता के कारण समूह बनते-बिगड़ते रहते हैं। समूहों के बनने और बिगड़ने की इस क्रिया को सामाजिक संगठन (Social organization) और सामाजिक विघटन (Social Disorganization) के नाम से जाना जाता है।

8.4 समूह और समाज में अन्तर

(Difference Between Group and Society)

साधारण अर्थों में समूह और समाज को समानार्थी समझा जाता है, किन्तु ये दोनों समानार्थी नहीं हैं। इन दोनों में मौलिक अन्तर है। समाज तथा समूह में जो प्रमुख अन्तर हैं, वे इस प्रकार हैं-

(1) समाज अमूर्त अवधारणा है, जबकि समूह मूर्त अवधारणा है।

(2) समाज सामाजिक सम्बन्धों पर आधारित है, जबकि समूह व्यक्तियों की संख्या पर।

(3) समाज का स्वाभाविक विकास होता है, जबकि समूह की सदस्यता ऐच्छिक होती है।

(4) समाज संगठित तथा असंगठित दोनों प्रकार का हो सकता है, किन्तु समूह के लिए संगठन अनिवार्य

है।

(5) समाज का कोई निश्चित उद्‌देश्य नहीं होता है। यह सामान्य उद्‌देश्यों पर आधारित होता है, जबकि समूह के एक निश्चित उद्‌देश्य होते हैं।

(6) समाज में सहयोग तथा संघर्ष दोनों पाये जाते हैं, जबकि समूह के लिए सहयोग अनिवार्य दशा है।

(7) समाज में स्थायित्व पाया जाता है, जबकि समूह अस्थायी होते हैं।

समूह और संस्था में अन्तर

Difference Between Group and Institution)

(समूह और संस्था भी एक दूसरे से भिन्न हैं, इसमें मुख्य अन्तर निम्न हैं-

(1) समूह व्यक्तियों का संग्रह है, जबकि संस्था नियमों की एक व्यवस्था का नाम है।

(2) समूह का निर्माण किया जाता है, जबकि संस्था नियमों की एक व्यवस्था का नाम है।

(3) समूह अस्थायी होते हैं, जबकि संस्थाएँ तुलनात्मक रूप से स्थायी होती हैं।

4) समूह मूर्त होते हैं, जबकि संस्थाएँ अमूर्त हैं। (

समूह और समुदाय में अन्तर

(Difference Between Group and Community)

समूह और समुदाय के प्रमुख अन्तर निम्न हैं-

(1) समूह का निर्माण किया जाता है, जबकि समुदाय स्वतः जन्म लेते हैं और विकसित होते हैं।

(2) समूह में व्यक्ति विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति करता है, जबकि समुदाय सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति करता

है।

(3) 'समूह की सदस्यता व्यक्ति की इच्छा पर आधारित होती है, जबकि समुदाय की सदस्यता अनिवार्य होती है।'

(4) समुदाय की तुलना में समूह अस्थायी प्रकृति के होते हैं।

(5) समुदाय समग्र इकाई है, जबकि समूह समुदाय का एक भाग है।

8.5 सामाजिक जीवन में समूहों की भूमिका

समूह मानव-जीवन के अनिवार्य अंग होते हैं। इसका कारण यह है कि स्वभाव से ही मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज के अभाव में प्राणीमात्र के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती है। अकेलापन व्यक्ति के लिए सबसे अधिक कष्टकर होता है। प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू ने सामूहिक जीवन के महत्व की विवेचना करते हुए लिखा है कि-

"कोई भी व्यक्ति सम्पूर्ण दुनिया को अपना कहने से इन्कार कर देगा, यदि उसे पता हो जाये कि दुनिया में उसको अकेला ही रहना है। इसका कारण यह है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और स्वभाव से ही दूसरों के साथ रहना पसन्द करता है।"

मानव-जीवन में सामाजिक समूहों का महत्व निम्न कारणों से है-

(1) सामाजिकता का विकास (Development of Sociability) सामाजिक

समूहों का मौलिक समाजशास्त्र : बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर- महत्व इसलिए है कि ये व्यक्ति को सामाजिक प्राणी बनाते हैं। रामू भेड़िया उपर्युक्त कथन का उदाहरण है। समाज से अलग रहकर रामू भेड़िया बन गया और समाज में दुबारा आने से उसमें सामाजिक विशेषताओं का जन्म और विकास हुआ। इसे ही समाजीकरण के नाम से जाना जाता है। समाजीकरण में जिन समूहों का योगदान रहता है, वे इस प्रकार हैं-

(a) प्राथमिक समूह

(i) परिवार, (ii) पड़ोस, (iii) खेल के मैदान, (iv) मित्रता ।

(b) द्वैतीयक समूह

(2) आवश्यकताओं की पूर्ति (Fulfilment of Necessities) आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। मानव आवश्यकताओं की पूर्ति के तीन साधन हैं - सामाजिक समूह मानव

(a) स्वयं के प्रयास द्वारा,

(b) दूसरों से छीनकर,

(c) दूसरों के सहयोग द्वारा।

अर्थशास्त्रियों की भाषा में आवश्यकताएँ अनन्त हैं। साथ ही, व्यक्ति के साधन और सामर्थ्य सीमित हैं। अतः वह स्वयं के प्रयासों से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता है। समाज में नियम और कानून के होते हुए व्यक्ति दूसरे की वस्तु को छीनकर भी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता है। जब वह उपर्युक्त दो माध्यमों से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाता है तो वह तीसरे माध्यम से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। यह तीसरा रास्ता सहयोग का होता है, जो सामूहिक जीवन का आधार है।

(3) अन्य महत्व (Other Importance

) सामाजिक समूहों के कुछ अन्य महत्व इस प्रकार हैं-

(a) संस्कृति की रक्षा तथा उसे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित करना।

(b) समाज में नियन्त्रण की स्थापना करना।

(c) व्यक्ति को नवीन परिस्थितियों से अवगत कराना ।

(d) व्यक्ति में अनुकूलन की शक्ति को विकसित करना ।

(i) व्यक्तित्व का विशेषीकरण- प्राथमिक समूह मानव के व्यक्तित्व को ढालते हैं, द्वैतियक समूह व्यक्तित्व के विशेषीकरण की आधारशिला प्रस्तुत करते हैं। सभ्यता, संस्कृति और समाज के विकास के साथ ही साथ श्रम-विभाजन में वृद्धि होती जाती है। व्यक्ति के अलग-अलग कार्यों के लिये अलग-अलग समूहों का निर्माण होता है। इससे व्यक्ति को अपनी कुशलता में वृद्धि करने का अवसर मिलता है। प्रोफेसर, डॉक्टर, इन्जीनियर और वकील को बनाने में द्वैतीयक समूह महत्वपूर्ण होते हैं।

(ii) विवेकीकरण- द्वैतीयक समूह मानव विवेक में वृद्धि करते हैं। इनका कारण यह है कि द्वैतीयक समूह मानव के विशाल दायरे का निर्माण करते हैं। व्यक्ति के कार्य-व्यवहार और जीवन-प्रणालियाँ वैज्ञानिकता पर आधारित होते हैं। इन समूहों में रूढ़ियों एवं अन्धविश्वासों को कोई स्थान प्रदान नहीं किया जाता है तथा विज्ञान, तर्क विवेक को महत्व प्रदान किया जाता है। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि व्यक्ति का बौद्धिक विकास होता है।

(iii) विस्तृत क्षेत्र -द्वैतीयक समूह व्यक्ति को सामाजिक आदान-प्रदान का विस्तृत क्षेत्र प्रदान करते है। वर्तमान समाज में व्यक्ति की आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पाते हैं। द्वैतीयक समूह व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विस्तृत क्षेत्र प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए संस्थाएँ, राज्य कारखाना आदि ।

(iv) सामाजिक विकास- द्वैतीयक समूह विशाल पैमाने पर होते हैं। उनका उद्देश्य मानव आवश्यकताओं की पूर्ति करना होता है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए द्वैतीयक समूह अनेक बार अनुसंधान और विधियों की खोज करते हैं। इससे समाज की वैज्ञानिक प्रगति होती है। यह वैज्ञानिक प्रगति सामाजिक परिवर्तन को प्रोत्साहित करती है। ग्रामीण समाज में प्राथमिक समूह पाये जाते हैं, यही कारण है कि यहाँ सामाजिक परिवर्तन की गति अत्यन्त ही धीमी है। नगरों में शीघ्र परिवर्तन के लिए द्वैतीयक समूहों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। नगर इसलिए अधिक परिवर्तनशील और प्रगतिशील होते हैं,

क्योंकि वहाँ द्वैतीयक समूह पाये जाते हैं।

(v) सामाजिक नियन्त्रण- किसी भी समाज में नियन्त्रण की स्थापना में भी द्वैतीयक समूह का महत्व कम नहीं है। द्वैतीयक समूह में नियन्त्रण के जो साधन होते हैं, वे औपचारिक (Formal) होते हैं। इसमें राज्य, न्यायालय, पुलिस आदि को सम्मिलित किया जा सकता है। नियन्त्रण के माध्यम से द्वैतीयक समूह व्यक्ति के कार्यों और व्यवहारों को संशोधित करके दिशा प्रदान करते हैं।

(vi) प्रतिस्पर्धा की भावना का विकास- दैनिक समूह इस बात पर आधारित होते हैं कि व्यक्तियों की अधिकतम आवश्यकताओं की पूर्ति करेंगे। इन समूहों में श्रम को अधिक महत्व प्रदान किया जाता है। साथ ही मनुष्य को श्रम कार्यों को सम्पादित करने की प्रेरणा दी जाती है। वे व्यक्ति प्रतिस्पर्धा में भाग नहीं ले सकते हैं, जो निष्क्रिय होते हैं। ऐसे व्यक्ति समाज में पीछे रह जाते हैं। इस प्रकार द्वैतीयक समूह प्रतिस्पर्धा की भावना को प्रोत्साहित करके सामाजिक विकास के मार्ग को प्रशस्त करते हैं।

8.6 प्राथमिक एवं द्वितीयक समूह

(Primary and Secondary Groups)

विद्वानों द्वारा वर्गीकृत समूहों के प्रकारों का विवरण इस प्रकार है-

(1) ड्वाइट सैण्डरसन (Dwight Sanderson) सैण्डरसन ने सामाजिक समूहों का वर्गीकरण उनकी संरचना के आधार पर किया है। उसने सामाजिक समूहों को निम्न तीन भागों में विभाजित किया है -

(i) अनैच्छिक सामाजिक समूह (Involuntary Social Groups)

ये वे सामाजिक समूह है जिनकी सदस्यता व्यक्ति की इच्छा-अनिच्छा पर आधारित नहीं होती है।

इनकी सदस्यता व्यक्ति के लिए अनिवार्य है। ये समूह नातेदारी (Kinship) सम्बन्धों पर आधारित होते हैं। उदाहरण के लिए परिवार (Family) ।

(ii) ऐच्छिक सामाजिक समूह (Voluntary Social Groups)

इन समूहों की सदस्यता व्यक्ति की इच्छा का परिणाम है। व्यक्ति की इच्छा हो, तो इनका सदस्य बने और अगर अच्छा न हो, तो इनका सदस्य न बने। इन समूहों का सदस्य व्यक्ति तब तक रहता है, जब तक उसकी इच्छा होती है। जब इच्छा न हो, वह इन समूहों की सदस्यता से अलग हो सकता है।

(iii)प्रतिनिधि सामाजिक समूह (Delegate Social Groups) जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है कि व्यक्ति इन समूहों का सदस्य कुछ लोगों के प्रतिनिधित्व के रूप में बनता है। चाहे वह उस समूह का निर्वाचित प्रतिनिधि हो अथवा किसी सत्ता के द्वारा उसकी नामजदगी हुई हो। विधान सभा और संसद एक प्रतिनिधि समूह हैं।

(2) जार्ज सिमेल (George Simmel) जार्ज सिमेल ने आकार (Size) के आधार पर समूहों को निम्न 4 भागों में विभाजित किया है-

(अ) एक समूह (Moand Groups), (आ) द्वैत समूह (Dyad Groups), (इ) चैत समूह (Triad Groups), (ई) विशाल समूह (Great Groups)

(3) जार्ज हासन (George Hasen) जार्ज हासन ने समूहों के वर्गीकरण दूसरे समूहों के साथ उनके सम्बन्धों के आधार पर किया है। इन दृष्टि से उसने समूहों को निम्न 4 भागों में विभाजित किया है-

(अ) असामाजिक (Unsocial), (आ) आभासी सामाजिक (Pseudo-Social), (इ) समाज-विरोधी (Anti-Social), (ई) समाजपक्षी (Pre-Social)

(4) मिलर (Miller) मिलर ने सामाजिक समूहों को निम्न दो भागों में विभाजित किया है -

(अ) क्षैतिज (Horizontal), (आ) उदय (Vertical)

(5) पार्क और बर्सेज (Park and Burgess) पार्क और बसेंज ने सामाजिक समूहों को निम्न दो भागों में विभाजित किया है -

(अ) प्रादेशिक समूह, (आ) गैर-प्रादेशिक समूह।

(6) ल्योपाल्ड (Leopold) ल्योपाल्ड ने समूह को निम्न 3 भागों में विभाजित किया है।

(अ) भीड़ (Crowd), (आ) समूह (Groups), (इ) अमूर्त समूह (Abstract Collectivities)

(7) टानीज (Tonnies) टानीज ने समूहों को दो भागों में बाँटा है जेसेलजशाफ्ट (Gesselleshaft) और बेमिनशाफ्ट (Geminshaft), जेसेलशाफ्ट वे समूह है जिनका सोच-समझकर निर्माण किया जाता है। कुछ समूह ऐसे होते हैं जिनको बनाया नहीं जाता, इनका आधार भावनात्मक होता है। इस प्रकार के समूहों को टानीज ने जेमिनशाफ्ट कहा है।

(8) वार्ड (Ward) - वार्ड ने भी समूहों को दो वर्गों में विभाजित किया है। इस वर्गीकरण का आधार व्यक्ति की इच्छा है। इस प्रकार समूह दो वर्गों में बंट जाते हैं ऐच्छिक और अनैच्छिक ।

(9) गिलिन और गिलिन (Gilin and Gilin) गिलिन और गिलिन ने लिखा है कि समूह का आधार किसी-न-किसी प्रकार का हित होता है और इन हितों का आधार पर उन्होंने समूहों को चार वर्गों में विभाजित किया है -

(a) रक्त समूह, (b) शारीरिक विशेषता सम्बन्धी समूह, (c) स्थानीय निकटता सम्बन्धी समूह, (d) सांस्कृतिक समूह ।

(10) गिडिंग्स (Giddings) गिडिंग्स ने समूहों को दो भागों में बाँटा है-

(a) सार्वजनिक समूह, (b) वैयक्तिक समूह।

(11) मैकाइवर और पेज (Maciver and Page) मैकाइवर और पेज ने सामाजिक संरचना के आधार पर समूहों को तीन वर्गों में विभाजित किया है-

(a) प्रादेशिक इकाइयाँ जैसे गाँव, शहर, पड़ोस आदि।

(b) हित चेतन समूह जिनका निश्चित संगठन है। इसके भी दो उपविभाग है- (i) प्राथमिक समूह (ii) विशाल समूह।

(c) हित चेतन समूह जिनका स्पष्ट संगठन नहीं है, जैसे जाति, वर्ग, राष्ट्रीय समूह, प्रजाति, भीड़ आदि।

(12) इलवुड (Ellwood) इलवुड ने समूहों को दो भागों में विभाजित किया है-
(a) स्वीकृत समूह,

(b) अस्वीकृत समूह ।

(13) समनर (Sumner) समनर ने समूहों को दो भागों में बाँटा है -

(a) अन्तः समूह (b) अस्वीकृत समूह।

(14) कूले (Cooley) कूले के समूहों का वर्गीकरण अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। मानव समूहों का वर्गीकरण अत्यन्त ही महत्वपूर्ण और विस्तृत भेदों में एक तरफ छोटे और घनिष्ट समूह तथा दूसरी तरफ बड़े और व्यक्तिगत समूह हैं। इस सिद्धान्त के जन्मदाता कूले हैं। उसने इन दो प्रकार के समूहों को प्राथमिक और द्वितीयक समूह के नाम से पुकारा है।

प्राथमिक समूह (Primary Groups)

कूले अपने समूह के लिए प्रसिद्ध हैं। उसने एक बार मुस्कुराते हुए कहा था कि समाजशास्त्र के क्षेत्र में यदि उसे (कूले को) स्मरण रखा गया तो उसके प्राथमिक समूह के सिद्धान्त के कारण। उसने ऐसे मानवीय समूहों को, जो घनिष्ठ सम्बन्ध, अनौपचारिकता, प्रेम, सहनशील, वैयक्तिक सम्बन्ध, लघु आकार में पाये जाते हैं, प्राथमिक समूहों के नाम से सम्बोधित किया है। इन शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग कूले ने 1909 ई. में अपनी पुस्तक 'सामाजिक संगठन' में किया है। प्राथमिक समूह के अपने अभिप्राय को स्पष्ट करते हुए उसने लिखा

"प्राथमिक समूहों से मेरा अभिप्राय उन समूहों से है जिनकी विशेषताएँ घनिष्ठ सम्मुख सम्बन्ध और सहयोग है। समूह कई अर्थों में प्राथमिक हैं, परन्तु विशेषता इस अर्थ में है कि ये व्यक्तियों की सामाजिक प्रकृति और आदर्शों को बनाने में मौलिक हैं। घनिष्ठ सम्बन्धों का परिणाम वैयक्तिकताओं का एक सामान्य सम्पूर्णता में एक प्रकार से घुल-मिल जाना है। जिसमें कि कम-से-कम बहुत से प्रयोजनों के लिए व्यक्ति का अपना अहं समूह का सामान्य जीवन और उद्देश्य हो जाता है। शायद इस सम्पूर्णता के वर्णन करने का सरलतम तरीका यह है कि इसे 'हम' शब्द के द्वारा सम्बोधित किया जाये। इस सम्पूर्णता में

इस प्रकार की सहानुभूति और परस्पर तादातम्य है जिसके लिए 'हम' एक स्वाभाविक अभिव्यक्ति है।"

प्राथमिक समूह अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। व्यक्ति के सामाजीकरण में इन समूहों का स्थान मौलिक है। कूले के अनुसार सबसे महत्वपूर्ण प्राथमिक समूह निम्नलिखित तीन हैं - (i) परिवार, (ii) खेल के मैदान, (iii) पड़ोस ।

कूले के अनुसार इस प्राथमिक समूहों की दो मौलिक विशेषताएँ हैं। इसकी पहली विशेष्ता तो यह है कि ये तीनों समूह सर्वत्र पाये जाते हैं। ये सार्वभौमिक हैं। इनकी दूसरी विशेषता यह है कि इन्हीं के द्वारा व्यक्तित्व का निर्माण होता है।

प्राथमिक समूह की विशेषताएँ (Characteristics of Primary Groups)

अपनी पुस्तक 'प्रारम्भिक समाजशास्त्र' (Introductory Sociology) में कूले ने प्राथमिक समूहों की विशेषताएँ बतलाई हैं। प्राथमिक समूहों की विशेषताओं को मुख्य रूप से दो भागों में बाँटा जा सकता है-बाह्य विशेषताएँ (External Characteristics) और आन्तरिक विशेषताएँ (Internal Characteristics) ।

(i) बाह्य विशेषताएँ प्राथमिक समूहों को बाह्य विशेषताओं का तात्पर्य भौतिक विशेषताओं से है। इन विशेषताओं का सम्बन्ध प्राथमिक समूहों की प्रमुख बाह्य विशेषताओं से है जो निम्नलिखित हैं-

(1) लघु आकार - प्राथमिक समूहों में सदस्यों की संख्या कम होती है। स्वयं कूले ने लिखा है कि प्राथमिक समूहों के सदस्यों की संख्या 50-60 से अधिक नहीं होनी चाहिये। सदस्यों की संख्या कम होने के कारण सभी एक-दूसरे को व्यक्तिगत रूप से जानते हैं और 'हम की भावना' का विकास करते हैं।

(2) आमने-सामने के सम्बन्ध 'आमने-सामने के सम्बन्ध' प्राथमिक समूहों की सबसे बड़ी विशेषता

है। एक-दूसरे को देखने और आपस में बात करने से विचारों और भावनाओं का आदान-प्रदान सरल हो जाता है।

(3) सदस्यों में घनिष्टता 'आमने-सामने के सम्बन्धों के परिणामस्वरूप सदस्यों को एक-दूसरे के प्रति ज्ञान होता है और इससे घनिष्ठता बढ़ने में सहायता मिलती है। इन समूहों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके सदस्य

व्यक्तियों के रूप में मिलते हैं न कि किसी एजेण्ट या विशिष्ट मानव अणु के रूप में।'

(4) तुलनात्मक स्थिरता प्राथमिक समूह अन्य समूह की अपेक्षा अधिक दिनों तक स्थायी रहते हैं। इसका कारण यह है कि इन समूहों का कोई विशिष्ट उद्देश्य नहीं होता है। प्राथमिक समूह के सम्बन्ध गहरे एवं स्थायी होते हैं। सम्बन्धों की इस घनिष्ठता और गहराई के कारण ये समूह अधिक स्थायी होते हैं। का कोई विशिष्ट चरित्र नहीं होता है।

(5) सामान्य चरित्र प्राथमिक समूह के सदस्यों के सम्बन्धों चूँकि इसका स्वतः जन्म होता है और इसका निर्माण किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए नहीं होता है, इसलिए इस बात का निश्चय नहीं रहता है कि ये कौन-सा विशेष कार्य करेंगे। इन समूहों के कार्य विशिष्ट न होकर सामान्य, असीमित और अनिश्चित होते हैं।

(6) स्वतः जन्म प्राथमिक समूहों का जन्म अपने आप होता है, इन्हें जानबूझकर नहीं बनाया जाता

है। किम्बाल यंग के अनुसार ऐसे समूह अचेतन रूप से विकसित होते हैं, जैसे मित्रता का स्वतः विकास होता

है। (ii) आन्तरिक विशेषताएँ प्राथमिक समूहों की आन्तरिक विशेषताओं का जन्म उनकी बाहय विशेषताओं के कारण होता है। प्रमुख आन्तरिक विशेषताएँ निम्न हैं -

(1) सम उद्देश्य प्राथमिक समूह के सदस्यों में शारीरिक निकटता पायी जाती है। निकटता के परिणास्वरूप समान मनोवृत्तियों और इच्छाओं का विकास होता है। प्राथमिक समूह के सदस्य अपने उद्देश्यों की पूर्ति के साथ दूसरों के उद्देश्यों के प्रति भी समान रूप से जागरुक रहते हैं। इसके परिणामस्वरूप उनमें आत्मीकरण हो जाता है। जब माँ अपने बीमार बच्चे की देखभाल में अपना स्वास्थ्य बिगाड़ देती है तो वह बच्चे के उद्देश्यों और आवश्यकताओं को अपना उद्देश्य और अपनी आवश्यकता समझकर करती है।

(2) सम्बन्ध स्वयं साक्ष्य होते हैं प्राथमिक समूहों के सदस्यों के सम्बन्ध साधन के रूप में नहीं होते हैं, परन्तु अपने आप में साध्य होते हैं। सम्बन्ध स्वयं में विकसित होते हैं और इन सम्बन्धों का कोई खास उद्देश्य नहीं होता है। जैसे एक आदर्श मित्रता किसी स्वार्थ के लिए स्थापित नहीं होती है, बल्कि स्वयं में साध्य है। इसी प्रकार वैवाहिक सम्बन्ध केवल आर्थिक लाभ और यौन इच्छाओं की पूर्ति के लिये नहीं होते हैं, परन्तु उससे सम्पूर्ण जीवन के उद्देश्य एक हो जाते हैं।

(3) वैयक्तिक सम्बन्ध प्राथमिक समूहों के सदस्यों के सम्बन्ध सामूहिक न होकर वैयक्तिक होते हैं। उदाहरण के लिए यदि हम राम और श्याम में मित्रता है तो इस मित्रता का निर्वाह राम और श्याम ही कर सकते हैं, राम और लक्ष्मण नहीं।

76 (4) सर्वांगीण सम्बन्ध - प्राथमिक समूहों में निश्चित और सीमित उद्देश्यों के न होने से सम्बन्धों की समाजशास्त्र श्री. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर- भी कोई सीमा नहीं होती है। सदस्य एक-दूसरे को भली-भाँति जानते हैं। इसलिये वे किसी विशेष कार्य में नहीं, बल्कि सम्पूर्ण कार्यों में समान रूप से रुचि रखते हैं।

(5) प्राथमिक सम्बन्ध स्वाभाविक होते हैं प्राथमिक समूहों के सम्बन्ध अनिच्छापूर्वक स्थापित नहीं किये जाते हैं बल्कि इच्छा से प्रसन्नतार्पूवक इन सम्बन्धों की स्थापना की जा सकती है। इन सम्बन्धों की स्थापना किसी शर्त के आधार पर नहीं होती है। इनका विकास स्वतः होता है। यही कारण है कि प्राथमिक समूहों के सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ और मैत्रीपूर्ण होते हैं।

(6) सामाजिक नियन्त्रण प्राथमिक समूहों में सदस्यों के व्यवहारों पर नियन्त्रण रखा जाता है। ये नियन्त्रण स्वाभाविक और अनौपचारिक होते हैं, जैसे पुरस्कार, निन्दा, अपमान आदि।

8.7 प्राथमिक समूहों का सामाजिक महत्व

(Social Importance of Primary Groups)

कूले का विचार है कि व्यक्ति के अनुभव तथा सामाजिक विकास में प्राथमिक समूहों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यही कारण है कि इन समूहों का

अत्यधिक महत्व है। निम्नलिखित कारणों से प्राथमिक समूहों का अधिक महत्व है-

(a) मानव निर्माण -कूले ने लिखा है कि 'पशु प्रवृत्तियों का मानवीकरण' (Humanization) ही सम्भवतः सबसे बड़ी सेवा है, जो प्राथमिक समूह करते हैं। इसीलिए प्राथमिक समूहों को मानव 'स्वभाव की छायागृह' (Nursert of human nature) कहा जाता है। मानव की जन्मजात प्रवृत्तियों में पशुओं की विशेषता पायी जाती है। प्राथमिक समूह इन विशेषताओं को संशोधित करके व्यक्ति में मानवीय गुणों का विकास करते हैं। इसीलिए ऐसा कहा जाता है कि प्राथमिक समूह व्यक्ति को पशुता से मानवता की ओर ले जाते हैं।

(b) व्यक्तिगत विकास -बालक के जन्म और जन्म के पूर्व से ही प्राथमिक समूहों का प्रभाव बालक पर पड़ता है। परिवार, पड़ोस और साथियों के सम्पर्क में आकर माँस-हड्डी का पुतला वह बालक धीरे-धीरे सामाजिक प्राणी बन जाता है। इस प्रकार प्राथमिक समूह व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। HE

(c) व्यवहार प्रतिमान- प्राथमिक समूह मनुष्यों के व्यवहारों के उचित प्रतिमानों का निर्माण करते हैं। इन समूहों में रहकर बालक व्यवहार के इन प्रतिमानों के अनुसार कार्यों का सम्पादन करता है। कालान्तर में व्यक्ति इन व्यवहार प्रतिमानों का सरलता से सम्पादन करना सीख जाता है।

(d) सद्गुणों का विकास प्राथमिक समूहों में व्यक्तियों के सम्बन्ध घनिष्ठ और वैयक्तिक होते हैं। इनमें रहकर व्यक्ति जिन सद्गुणों को सीखता है, वे स्थायी प्रकृति के होते हैं। यही कारण है कि ये सद्गुण व्यक्ति के अभिन्न अंग बन जाते हैं और व्यक्ति आजीवन इनका पालन करता है।

(e) सामाजिक नियन्त्रण -प्राथमिक समूहों में व्यक्ति के कार्यों और सम्बन्ध घनिष्ठ और वैयक्तिक होते हैं। इनमें रहकर व्यक्ति जिन सद्गुणों को सीखता है, वे स्थायी प्रकृति के होते हैं। यही कारण है कि ये

सद्गुण व्यक्ति के अभिन्न अंग बन जाते हैं और व्यक्ति आजीवन इनका पालन करता है। (1) सन्तोष प्रदान करना प्राथमिक समूह व्यक्ति को आन्तरिक सन्तोष प्रदान करते हैं। इसका कारण यह है कि ये घनिष्ठ सम्बन्धों वाले समूह होते हैं। मेल-मिलाप, आमोद-प्रमोद, हँसी-मजाक अपनत्व, स्नेह, प्रेम

तथा आन्तरिक सन्तोष जो प्राथमिक समूहों से मिलता है, अन्यत्र मिलना अत्यन्त ही कठिन होता है।

(g) संस्कृति की रक्षा सांस्कृतिक दृष्टि से प्राथमिक समूह निम्न दो प्रकार के कार्यों का सम्पादन करते हैं -

(i) संस्कृति की रक्षा करना तथा इसे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित करना, और

(ii) संस्कृति की शिक्षा देना।

(h) भावात्मक सुरक्षा- प्राथमिक सुरक्षा अपने सदस्यों की भावात्मक या मानसिक सुरक्षा प्रदान करते हैं। अन्य कोई व्यक्ति को इस प्रकार मानसिक सुरक्षा प्रदान नहीं करते हैं। प्राथमिक सुरक्षा में भी सभी व्यक्ति सुरक्षित रहते हैं चाहे वे गरीब हों या अमीर, निर्बल हों या सबल और बालक हों या वृद्‍ध।

(i) स्वस्थ मनोरंजन -प्राथमिक समूह अपने सदस्यों को स्वस्थ मनोरंजन के साधन प्रदान करता है। ये साधन हैं-हास- परिहास, लोकगीत, लोककथा आदि। इससे व्यक्ति में स्वस्थ आदतों का विकास होता है। मेरिल ने भी प्राथमिक समूहों के महत्व की विवेचना की है। इसके अनुसार प्राथमिक समूहों का महत्व इसके निम्नलिखित 4 कार्यों से है-

(i) मनोरंजन सम्बन्धी कार्य,

(ii) सुरक्षा सम्बन्धी कार्य,

(iii) समाजीकरण तथा व्यक्तित्व निर्माण के कार्य, और

(iv) संचरण सम्बन्धी कार्य ।

द्‍वैतीयक समूह (Secondary Groups)

द्‍वैतीयक समूह वे हैं जिनमें प्राथमिक समूहों से ठीक उल्टी विशेषताएँ पाई जाती हैं। ये अत्यन्त विस्तृत क्षेत्र में फैले हुए होते हैं, इसीलिए सदस्यों में शारीरिक निकटता का प्रश्न ही नहीं उठता है। आकार में बड़े होने के कारण सभी सदस्य एक-दूसरे को नहीं जानते हैं।

द्‍वैतीयक समूहों की प्रमुख परिभाषाएँ इस प्रकार हैं-

(1) आगबर्न और निमकॉफ- जो समूह घनिष्ठता के अभाव वाले अनुभवों के जनक होते हैं, उन्हें द्वैतीयक समूह कहा जाता है।

(2) कूले- "द्वैतीयक समूह ऐसे होते हैं, जिनमें घनिष्ठता का पूर्णतया अभाव होता है और सामान्यतया उन विशेषताओं का भी अभाव होता है, जो कि अधिकांशतः प्राथमिक तथा अर्ध-प्राथमिक समूहों में पायी जाती

(3) डेविस - "द्वैतीयक समूह मोटे तौर पर प्राथमिक समूहों के बारे में जो कुछ भी कहा जाता है,

उसके विपरीत होते हैं।”

(4) बीरस्टीड - "साधारणतया वे सभी समूह द्वैतीयक हैं, जो प्राथमिक नहीं है।"

(5) फेयरचाइल्ड - "वे समूह जिनकी विशेषताएँ प्राथमिक या आमने-सामने के सम्बन्धों वाले समूहों में भिन्न होती है, जिनका संगठन औपचारिक होता है तथा जिनमें घनिष्टता का अभाव पाया जाता है, द्वैतीयक कहे जाते हैं।"

इस प्रकार 'द्वैतीयक' सम्बन्धों पर आधारित घनिष्ठता के अभाव वाले औपचारिक संगठनों को द्वैतीयक समूह कहा जा सकता है।

द्वैतीयक समूह की विशेषताएँ (Characteristics of Secondary Groups)

द्वैतीयक समूह की निम्नलिखित विशेषताएँ पाई जाती है-

(1) द्वैतीयक समूहों का आकार बड़ा होता है अर्थात् इसके सदस्यों की संख्या अधिक रहती है।

(2) द्वैतीयक समूह विशाल क्षेत्र में फैले हुए होते हैं।

(3) द्वैतीयक समूह में सदस्यों के बीच शारीरिक निकटता की कम सम्भावना रहती है।

(4) सदस्यों के सम्बन्ध वैयक्तिक न होकर सामूहिक होते हैं।

(5) इनका निर्माण किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जाता है। इसीलिए इनको विशेष हित समूह भी कहा जाता है।

(6) सदस्यों में व्यक्तिगत उत्तरदायित्व की भावना का अभाव पाया जाता है।

(7) द्वैतीयक समूह का निर्माण जानबूझकर चेतन अवस्था में किया जाता है।

(8) द्वैतीयक समूह में सामाजिक नियन्त्रण के साधन औपचारिक होते हैं, जैसे पुलिस, न्यायालय आदि।

(9) द्वैतीयक समूह तुलनात्मक दृष्टि से अस्थिर होते हैं। ये उद्देश्य की पूर्ति के साथ ही समाप्त हो

जाते हैं।

8.8 द्वैतीयक समूहों का सामाजिक महत्व महत्व है

(Social Importance of Secondary Groups)

वर्तमान सामाजिक परिवेश में व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन में द्वैतीयक समूहों का निम्नलिखित महत्व हैं-

(a) व्यक्तित्व का विशेषीकरण प्राथमिक समूह मानव के व्यक्तित्व को ढालते हैं, द्वैत्तीयक समूह व्यक्तित्व के विशेषीकरण की आधारशिला प्रस्तुत करते हैं। सभ्यता, संस्कृति और समाज के विकास के साथ-ही-साथ श्रम-विभाजन में वृद्धि होती जाती है। व्यक्ति के अलग-अलग कार्यों के लिए अलग-अलग समूहों का निर्माण होता है। इससे व्यक्ति को अपनी कुशलता में वृद्धि करने का अवसर मिलता है। प्रोफेसर, डॉक्टर, इन्जीनियर और वकील को बनाने में द्वैतीयक समूह महत्वपूर्ण होते हैं।

(b) विवेकीकरण - द्वैतीयक समूह मानव विवेक में वृद्धि करते हैं। इनका कारण यह है कि द्वैतीयक समूह मानव के विशाल दायरे का निर्माण करते हैं। व्यक्ति के कार्य-व्यवहार और जीवन-प्रणालियाँ वैज्ञानिकता पर आधारित होते हैं। इन समूहों में रूढ़ियों एवं अन्धविश्वासों को कोई स्थान प्रदान नहीं किया जाता है तथा विज्ञान, तर्क, विवेक को महत्व प्रदान किया जाता है। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि व्यक्ति का बौद्धिक विकास होता है।

(c) विस्तृत क्षेत्र द्वैतीयक समूह व्यक्ति को सामाजिक आदान-प्रदान का विस्तृत क्षेत्र प्रदान करते हैं। वर्तमान समाज में व्यक्ति की आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पाते हैं। द्वैतीयक समूह व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति के

लिए विस्तृत क्षेत्र प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए संस्थाएँ, राज्य, कारखाना आदि।

(d) सामाजिक विकास- द्वैतीयक समूह विशाल पैमाने पर होते हैं। उनका उद्देश्य मानव आवश्यकताओं की पूर्ति करना होता है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए द्वैतीयक समूह अनेक बार अनुसंधान और विधियों की खोज करते हैं। इससे समाज की वैज्ञानिक प्रगति होती है। यह वैज्ञानिक प्रगति सामाजिक परिवर्तन को प्रोत्साहित करती है। ग्रामीण समाज में प्राथमिक समूह पाये जाते हैं, यही कारण है कि यहाँ सामाजिक परिवर्तन की गति अत्यन्त ही धीमी है। नगरों में शीघ्र परिवर्तन के लिए द्वैतीयक समूहों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। नगर इसलिए अधिक परिवर्तन और प्रगतिशील होते हैं, क्योंकि वह द्वैतीयक समूह पाये जाते हैं।

(c) सामाजिक नियन्त्रण किसी भी समाज में नियन्त्रण की स्थापना में भी द्वैतीयक समूहों का महत्व कम नहीं है। द्वैतीयक समूह में नियन्त्रण के जो साधन होते हैं, वे औपचारिक होते हैं। इसमें राज्य, न्यायालय, पुलिस आदि को सम्मिलित किया जा सकता है। नियन्त्रण के माध्यम से द्वैतीयक समूह व्यक्ति के कार्यों और व्यवहारों को संशोधित करके दिशा प्रदान करते हैं।

(1) प्रतिस्पर्द्धा की भावना का विकास दैनिक समूह इस बात पर आधारित होते हैं कि व्यक्तियों की अधिकतम आवश्यकताओं की पूर्ति करेंगे। इन समूहों में श्रम को अधिक महत्व प्रदान किया जाता है। साथ ही मनुष्य को श्रम कार्यों को सम्पादित करने की प्रेरणा दी जाती है। वे व्यक्ति प्रतिस्पर्द्धा में भाग नहीं ले सकते हैं, जो निष्क्रिय होते हैं। ऐसे व्यक्ति समाज के पीछे रह जाते हैं। इस प्रकार द्वैतीयक समूह प्रतिस्पर्द्धा की भावना को प्रोत्साहित करके सामाजिक विकास के मार्ग को प्रशस्त करते हैं।

प्राथमिक और द्वैतीयक समूहों में अन्तर

(Difference Between Primary and Secondary Groups)

क्रमांक	प्राथमिक समूह	द्वैतीयक समूह

क्रमांक	प्राथमिक समूह	द्वैतीयक समूह
1	प्रत्यक्ष सम्बन्धों पर आधारित।	प्रत्यक्ष सम्बन्धों का अभाव।
2	सदस्यों की संख्या कम, जैसे- परिवार, मित्रता।	सदस्यों की संख्या अधिक, जैसे- राष्ट्र।
3	छोटा क्षेत्र, जैसे- गाँव, पड़ोस।	विशाल क्षेत्र में फैले होते हैं।
4	सम्बन्धों में निरन्तरता।	सम्बन्धों में निरन्तरता का अभाव।
5	स्वतः उत्पन्न।	किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए बनाए गए।
6	उद्देश्य का अभाव।	विशेष हित समूह।
7	स्थिति का निर्धारण परिवार के आधार पर।	स्थिति का निर्धारण कार्यों के आधार पर।
8	अनौपचारिकता (Informality)।	औपचारिकता (Formality)।
9	आन्तरिक और नैतिक नियन्त्रण।	बाह्य और कानूनी नियन्त्रण।
10	सदस्य समूह पर निर्भर।	सदस्य आत्मनिर्भर।
11	उद्देश्यों में समानता।	उद्देश्यों में असमानता।
12	व्यक्तिगत सम्बन्ध, साधनों की आवश्यकता नहीं।	अवैयक्तिक सम्बन्ध, तार, पत्र, टेलीफोन आदि।
13	दिखावा और बनावटीपन का अभाव।	दिखावा और बनावटीपन की प्रधानता।
14	सदस्य व्यक्ति के रूप में मिलते हैं।	सदस्य प्रतिनिधि या कर्मचारी के रूप में।
15	सम्पूर्ण सम्बन्ध।	आंशिक (Partial) सम्बन्ध।
16	सहयोग और सामूहिक निर्णय।	प्रतिस्पर्धा और मत संग्रह।
17	समाजीकरण में महत्वपूर्ण।	स्थान गौण।

क्रमांक	प्राथमिक समूह	द्वैतीयक समूह
18	प्रायः गाँवों में पाए जाते हैं।	नगरों में प्रधानता।
19	अत्यन्त प्राचीन।	अपेक्षाकृत नवीन।
20	रक्त सम्बन्ध या सामान्य संस्कृति की प्रधानता।	रक्त सम्बन्ध या सामान्य संस्कृति की आवश्यकता नहीं।
21	घुले-मिले व्यक्तित्व।	व्यक्तित्व में घनिष्ठता का अभाव।
22	असीमित दायित्व।	सीमित दायित्व।
23	कम संख्या, जैसे- परिवार, पड़ोस।	असंख्य समूह।
24	सार्वभौमिक, हर समाज में पाए जाते हैं।	सार्वभौमिक नहीं, जैसे वैज्ञानिक संघ।
25	सदस्यता अनिवार्य।	सदस्यता अनिवार्य नहीं।
26	परम्परागत नियम।	नये नियम।
27	एक प्राथमिक समूह में द्वैतीयक समूह नहीं।	एक द्वैतीयक समूह में अनेक प्राथमिक समूह।
28	नैतिकता और आत्मा पर आधारित।	नियम और कानून पर आधारित।

अर्द्ध-समूह (Quasi-Groups)

प्रसिद्ध समाजशास्त्री कूले (Cooley) ने सामाजिक समूहों को निम्न दो भागों में विभाजित किया है-

(1) प्राथमिक समूह और

(2) द्वैतीयक समूह।

सामाजिक समूहों का यह वर्गीकरण मानव सम्बन्धों पर आधारित होते हैं। मानव सम्बन्ध कठोर न होकर लचीले होते हैं। कई अवसरों पर यह निर्धारित

करना कठिन हो जाता है कि कौन से समूह प्राथमिक हैं तथा कौन द्वैतीयक। अनेक समूह ऐसे होते हैं, जिनमें कुछ विशेषताएँ प्राथमिक समूहों की पायी जाती हैं तथा कुछ विशेषताएँ द्वैतीयक समूहों की। कहने का तात्पर्य यह है कि ये समूह प्राथमिक तथा द्वैतीयक समूहों के मध्य होते हैं। इन्हीं समूहों को अर्द्ध-समूहों के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्न:

1. समूह किसी वस्तु की इकाइयों की संख्या है, जो एक दूसरे के निकट स्थित हैं। यह कथन किसका है-

(अ) आगबर्न (ब) गिन्सबर्ग (स) बोगार्डस (द) स्पेनेन्सर

2. निम्न में से कौन-सी विशेषता सामाजिक समूह की नहीं है-

(अ) एक से अधिक व्यक्ति(ब) अनिवार्य सदस्यता(स) एक संरचना(द) सामाजिक संबंध

3. समूह व्यक्तियों के उस संगठन को कहते हैं-

(अ) जिनकी संख्या एक होती है(ब) संख्या होती ही नहीं

(स) संख्या सीमित होती है द) संख्या आवश्यक नहीं

8.9 सार संक्षेप

समाजशास्त्र में समूह इकाई का अध्ययन समाज के विभिन्न पहलुओं को समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस अध्ययन से समाज में व्यक्तियों के आपसी संबंधों और उनके प्रभावों का गहराई से विश्लेषण किया जा सकता है, जिससे सामाजिक संरचनाओं को समझने में मदद मिलती है। समूहों के भीतर काम करने वाले व्यक्तियों की भूमिका, उनके विचार और कार्यशैली समाज में बदलाव और विकास की दिशा को प्रभावित करते हैं। इसके माध्यम से यह भी समझा जा सकता है कि समाज में विभिन्न प्रकार के समूह (जैसे परिवार, जाति, वर्ग, धर्म) कैसे कार्य करते हैं और उनके भीतर की संरचना क्या होती है। समूहों के अध्ययन से सामाजिक बदलाव और संघर्ष के कारणों का पता चलता

है, और यह समझने में मदद मिलती है कि समाज में समय-समय पर परिवर्तन कैसे आते हैं। इसके अलावा, समूहों में अनुशासन, नियंत्रण और नियमों का पालन करने से यह भी स्पष्ट होता है कि समाज में सामाजिक आदेश और अनुशासन कैसे बनाए रखते हैं। इस प्रकार, समूह इकाई का अध्ययन समाज की जटिलताओं और सामाजिक बदलावों को समझने में सहायक होता है।

8.10 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

(6) स (7) स (8) ब

8.11 मुख्य शब्द

1. प्रत्यक्ष संबंध - व्यक्ति और समूहों के बीच सीधे जुड़ाव और संवाद।

2. गतिशील प्रकृति - समाज और उसके तत्वों का निरंतर परिवर्तनशील और सक्रिय रूप।

3. विवेकीकरण - तर्क और बुद्धिमत्ता के आधार पर निर्णय लेने की प्रक्रिया।

8.12 संदर्भ ग्रन्थ

- बालकृष्णन, पी. (2022). *भारतीय अर्थव्यवस्था की पुनर्प्राप्ति: राजनीतिक अर्थव्यवस्था दृष्टिकोण*. नई दिल्ली: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
- बसु, के. (2018). *विश्वासों का गणराज्य: कानून और अर्थशास्त्र के लिए एक नया दृष्टिकोण*. प्रिंसटन, एनजे: प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।
- घोष, ए. (2021). *भारत की उभरती अर्थव्यवस्था: 21वीं सदी में प्रदर्शन और संभावनाएँ*. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- पनगढ़िया, ए. (2020). *भारत अनलिमिटेड: खोई हुई महिमा को पुनः प्राप्त करना*. न्यूयॉर्क: हार्पर कॉलिन्स।

- नागराज, आर. (2019). *भारत में आर्थिक विकास और विकास: नए दृष्टिकोण*. नई दिल्ली: रूटलेज।

8.13 अभ्यास प्रश्न

परीक्षाओं के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न (Important Questions for Examinations)

(अ) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. प्राथमिक समूह की व्याख्या कीजिए। प्राथमिक समूहों की विशेषताएँ लिखिए। Explain Primary Groups. Give its characteristics also.

2. समूह की व्याख्या कीजिये। सामाजिक जीवन में समूहों का महत्व लिखिये ।

Define Groups. Write the importance of Groups in Social Life.

3. प्राथमिक तथा द्वैतीयक समूहों का महत्व लिखिये।

Write the importance of primary and secondary groups.

4. सामाजिक समूह से आप क्या समझते हैं? इसकी विशेषताओं का वर्णन कीजिये ।

What do you mean by Social Groups. Explain its characteristics also.

5. समूह की व्याख्या कीजिये। सामाजिक जीवन में समूहों का महत्व लिखिये। Define Group. Write the importance of Group in Social Life.

(ब) लघुउत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. समूह से आप क्या समझते हैं?

2. समूह की दो प्रमुख परिभाषाएँ लिखिये।

3. सामाजिक जीवन में समूह के पाँच प्रमुख महत्व लिखिये।

4. समूह और संस्था में अन्तर लिखिये ।

5. सामाजिक विकास में समूह की भूमिका लिखिये।

(स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Object Type)

1. कौन सा समूह अधिक महत्व का है-

(अ) प्राथमिक (ब) द्वैतीयक (स) धर्म (द) सन्दर्भ

2. व्यक्तित्व विकास का आधार है-

(अ) परिवार (ब) राज्य (स) धर्म (द) पड़ोस

3. आवश्यकताओं की पूर्ति का समाज-स्वीकृति साधन है-

(अ) स्वयं के प्रयास द्वारा (ब) चोरी करके

(स) छूसरों से छीनकर (द) दूसरों से सहयोग करके

81 समाजशास्त्र बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर-1

4. नवजात शिशु के लिए कौन-सा समूह आवश्यक है-

(अ) राज्य (ब) परिवार (स) मित्रता (द) खेल समूह

5. सामाजिक समूह का लक्षण है-

(अ) स्वतंत्रता (ब) आदान-प्रदान के संबंध (स) अनिवार्य सदस्यता (द) कोई नहीं

उत्तर:

(1) अ (2) ब (3) द (4) ब (5) स

ब्लॉक - III

इकाई-9

सामाजिक संरचना [SOCIAL STRUCTURE]

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 सामाजिक संरचना की परिभाषाएँ (Definitions of Social Structure)

9.4 सामाजिक संरचना के प्रमुख प्रकार (Main Types of Social Structure)

9.5 सारांश

9.6 मुख्य शब्द

9.7 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

9.8 संदर्भ ग्रन्थ

9.9 अभ्यास प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

समाजशास्व तुलनात्मक दृष्टि से नया सामाजिक विज्ञान है। इसलिए अन्य विज्ञानों की तुलना में समाजशास्त्र में निरन्तर नवीन सिद्धान्तों का प्रतिपादन होता जा रहा है। यही कारण है कि समाजशास्त्र की अवधारणाओं (Concept) में 'सामाजिक संरचना की अवधारणा' (Concept of Social Structure) को सबसे अधिक महत्व प्रदान किया जा रहा है। समाज की संरचना के द्वारा ही इसके ढाँचे का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। जिस प्रकार मानव शरीर का एक ढाँचा या संरचना होती है, ठीक उसी प्रकार समाज की भी संरचना होती है। शरीर ढाँचे का ज्ञान प्राप्त करने के लिए जिस प्रकार शरीरशास्त्र (Physiology) का ज्ञान अनिवार्य है, ठीक उसी प्रकार समाज के ढाँचे का ज्ञान प्राप्त करने के लिए 'सामाजिक संरचना' (Social Structure) का ज्ञान अनिवार्य है।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकेंगे।
- विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकेंगे।
- आर्थिक स्थिरता और वैश्विक प्रतिस्पर्धा को बढ़ाने के उपायों का विश्लेषण कर सकेंगे।

9.3 सामाजिक संरचना की परिभाषाएँ (Definitions of Social Structure)

विभिन्न समाजशास्त्रियों ने सामाजिक संरचना की अवधारणा को स्पष्ट किया है। यहाँ सामाजिक संरचना की कुछ परिभाषाएँ दी जा रही हैं, जो निम्नलिखित हैं -

(1) कार्ल मैनहीम "सामाजिक संरचना अन्तः क्रियात्मक सामाजिक शक्तियों का जाल हैं, जिससे विभिन्न प्रकार के अवलोकन और विचार पद्धतियों का जन्म हुआ है।"

(2) पारसन्स "सामाजिक संरचना परस्पर सम्बन्धित संस्थाओं, एजेंसियों, सामाजिक प्रतिमानों और समूह के प्रत्येक सदस्य द्वारा ग्रहण किये गये पदों और कार्यों की विशिष्ट व्यवस्था को कहते हैं।"

(3) गिन्सबर्ग "सामाजिक संरचना सामाजिक संगठन के प्रमुख स्वरूप अर्थात् समितियों, समूहों तथा संस्थाओं के प्रकार एवं इनकी सम्पूर्ण जटिलता, जिनसे कि समाज का निर्माण होता है, सम्बन्धित है।"

(4) एम.एफ. नैडल "सामाजिक संरचना शब्द की चर्चा हरबर्ट स्पेंसर व दुर्खीम की रचनाओं में मिलती है। साथ ही आधुनिक साहित्य में भी इसकी चर्चा को

नहीं छोड़ा गया है। किन्तु इसका उपयोग विस्तृत अर्थ में किया गया है, जिससे समाज को निर्मित करने वाली किसी एक अथवा समस्त विशेषताओं का बोध होता है। इस प्रकार यह शब्द किसी व्यवस्था, संगठन, संकुल (Complex), प्रतिमान या प्रारूप यहाँ तक की समग्र समाज का पर्यायवाची हो जाता है।") समाजशास्त्र श्री. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर-

(5) ब्राउन "मानव सामाजिक सम्बन्धों के जटिल जाल के द्वारा सम्बन्धित है। मैं सामाजिक संरचना के इस वास्तविक अस्तित्व रखने वाले सम्बन्धों के जाल को सम्बोधित करता हूँ।"

(6) इग्गन - "अन्तः वैयक्तिक सम्बन्ध सामाजिक संरचना के अंग हैं, जो कि व्यक्तियों द्वारा अधिकृत पद-स्थितियों के रूप में सामाजिक संरचना के अंग बन जाते हैं और उसका निर्माण करते हैं।"

(7) फोर्टस "व्यक्तियों के बीच पाये जाने वाले पारस्परिक सम्बन्ध ही सामाजिक संरचना के अंग हैं। इसमें जिन अंगों का समावेश होता है, उसकी प्रकृति परिवर्तनशील है तथा इनमें पर्याप्त भिन्नता भी है।"

(8) प्रिचार्ड "केवल समूहों के अन्तः सम्बन्ध ही सामाजिक संरचना के अन्तर्गत आते हैं।"

(9) नोट्स एण्ड केरीज ऑन एन्थ्रोपॉलाजी "सामाजिक संरचना सामाजिक सम्बन्धों का समग्र जाल है, जिसमें कि एक काल विशेष में एक विशेष समुदाय के सदस्य अन्तर्निहित होते हैं।"

(10) मैकाइवर तथा पेज "समूह निर्माण के विभिन्न रूप संयुक्त रूप से सामाजिक संरचना के जटिल प्रतिमान की रचना करते हैं। सामाजिक संरचना के विश्लेषण में सामाजिक प्राणियों की विविध मनोवृत्तियों

तथा रुचियों के कार्य प्रदर्शित होते हैं।"

(11) जॉन्सन "किसी भी वस्तु की संरचना उसके अंगों में पाये जाने वाले अपेक्षाकृत स्थायी अन्तः सम्बन्धों को कहते हैं।"

सामाजिक संरचना की विशेषताएँ

(Characteristics of Social Structure)

सामाजिक संरचना की पीछे जो परिभाषाएँ दी गयी हैं, उन परिभाषाओं के आधार पर इसकी प्रमुख विशेषताओं को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) सामाजिक संरचना का निर्माण सामाजिक प्रक्रियाओं से होता है। समाज में पायी जाने वाली सम्पूर्ण सामाजिक प्रक्रियाओं को सुविधा की दृष्टि से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(a) सहयोगी सामाजिक प्रक्रियाएँ ये समाज की वे प्रक्रियाएँ हैं जो सहयोगात्मक सम्बन्धों की स्थापना समाज में करती हैं। इनके अन्तर्गत प्रमुख रूप से निम्न प्रक्रियाएँ आती हैं -

(i) सहयोग, (ii) आत्मसात्, (iii) व्यवस्थापन, और (iv) अनुकूलन ।

(b) असहयोगी सामाजिक प्रक्रियाएँ ये समाज की प्रक्रियाएँ हैं, जो सामाजिक प्राणियों के बीच असहयोगात्मक सम्बन्धों को विकसित करती हैं। ये प्रक्रियाएँ निम्नलिखित है -

(i) प्रतिस्पर्द्धा, (ii) संघर्ष, और (iii) प्रतिकूलता।

(2) सामाजिक संरचना में सामाजिक प्रक्रियाओं में सम्बन्धित व्यक्तियों या कर्ताओं की अन्तःक्रियाएँ (Interactions) सम्मिलित रहती हैं।

(3) सामाजिक संरचना समाज की अत्यन्त ही विस्तृत और जटिल व्यवस्था का नाम है। इस व्यवस्था में नये व्यक्ति या नये सदस्य सम्मिलित होते रहते हैं और पुराने व्यक्ति इस संरचना से बाहर होते हैं।

(4) सामाजिक संरचना का निर्माण सदस्यों के उत्तरादायित्व की भावना से होता है, जबकि समाज की संरचना का निर्माण अनेक सदस्यों के अधिकार और कर्तव्य की व्यवस्था से होता है।

(5) सामाजिक संरचना में स्तरीकरण (Stratification) का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है। स्तरीकरण

का अधार व्यक्ति की विशिष्ट भूमिकाएँ होती हैं। भूमिकाओं या कार्यों के आधार पर ही सामाजिक स्तर का निर्धारण होता है।

(6) स्तरीकरण का स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि समाज में श्रम विभाजन (Division of labour) की एक व्यवस्था का विकास होता है।

(7) सामाजिक संरचना का निर्माण इकाइयों के द्वारा होता है। इन विभिन्न इकाइयों के बीच पारस्परिक अन्तःसम्बन्धों की एक व्यवस्था पायी जाती है।

(8) सामाजिक संरचना से समाज के बाहर स्वरूप का ही आभास मात्र होता है। इसीलिए ऐसा कहा जाता है कि सामाजिक संरचना एक अमूर्त अवधारणा (Abstract concept) है।

(9) सामाजिक संरचना यद्यपि अपेक्षाकृत स्थिर रहती है, किन्तु इसकी स्थिरता में परिवर्तनशीलता के समाजशास्त्र: बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर-1 तत्वों का समावेश रहता है।

(10) सामाजिक संरचना के निर्माण में सामाजिक परिस्थितियों और सामाजिक आवश्यकताओं की भी भूमिका महत्वपूर्ण होती है। यही कारण है कि सामाजिक संरचना में अनुकूलन करने की क्षमता होती है।

(11) जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि सामाजिक संरचना का निर्माण सामाजिक आवश्यकताओं और सामाजिक परिस्थितियों के द्वारा होता है, इसलिए विभिन्न समाजों में सामाजिक संरचना का स्वरूप अलग-अलग होता है।

(12) सामाजिक संरचना का कार्य समाज में संगठन की स्थापना करना होता है। सामाजिक संगठन की इस व्यवस्था के द्वारा ही सदस्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।

9.4 सामाजिक संरचना के प्रमुख प्रकार (Main Types of Social Structure)

प्रसिद्ध समाजशास्त्री टालकट पारसन्स ने सामाजिक संरचना को विभिन्न भागों में विभाजित किया है। पारसन्स का विचार है कि प्रत्येक समाज में मूल्यों (Values) का अत्यधिक महत्व होता है। मूल्य ही समाज की संरचना को

निर्धारित करते हैं। मूल्य कई प्रकार के होते हैं। पारसन्स ने सामाजिक संरचना में पाये जाने वाले मूल्यों को निम्नलिखित चार भागों में विभाजित किया है-

(1) सार्वभौमिक सामाजिक मूल्य, (2) विशिष्ट सामाजिक मूल्य, (3) अर्जित सामाजिक मूल्य, और

(4) प्रदत्त सामाजिक मूल्य ।

पारसन्स का कहना है कि इन्हीं सामाजिक मूल्यों के आधार पर समाज की संरचना का निर्माण होता है। इस दृष्टि से पारसन्स ने सामाजिक संरचना के प्रमुख प्रकारों को निम्नलिखित चार भागों में विभाजित किया है

(1) सार्वभौमिक अर्जित संरचना (Universalistic Achieved Structure) पारसन्स के

अनुसार कुछ ऐसे सामाजिक मूल्य होते हैं, जो सार्वभौमिक होते हैं। ये मूल्य सभी कालों और समाजों में समान रूप से पाये जाते हैं। ये सभी व्यक्तियों पर सार्वभौमिक रूप से लागू होते हैं। उदाहरण के लिए, कुशलता, क्षमता

और बुद्धिमत्ता सार्वभौमिकता के गुण हैं, जो सभी देशों और कालों में समान रूप से लागू होते हैं।

इस प्रकार सामाजिक संरचना का निर्माण निम्न दो गुणों के द्वारा होता है -

(a) सार्वभौमिक मूल्य, और (b) अर्जित मूल्य।

सार्वभौमिक मूल्य के अन्तर्गत वर्ग, रक्त-सम्बन्ध, प्रजाति, आदि तत्वों को सम्मिलित किया जाता है। इनकी सहायता से समाज की संरचना निश्चित होती है। इस प्रकार की संरचना का स्वरूप सार्वभौमिक होता है। इसी प्रकार अर्जित सामाजिक मूल्य वे हैं, जो सदस्यों या समूहों द्वारा अर्जित या प्राप्त किये जाते हैं। औद्योगिक सामाजिक व्यवस्था में पूँजीवादी की अर्जित सामाजिक संरचना का उदाहरण माना जा सकता है।

(2) सार्वभौमिक प्रदत्त संरचना (Universalistic Ascribed Structure) - पारसन्स के अनुसार दूसरे प्रकार की सामाजिक संरचना वह है, जिसका निर्धारण सार्वभौमिक और प्रदत्त सामाजिक मूल्यों के आधार पर होता है। इस प्रकार की

संरचना आदर्शात्मक होती है तथापि इसका सम्बन्ध वर्तमान सामाजिक व्यवस्था की अपेक्षा भूतकालीन सामाजिक व्यवस्था से होता है। इस प्रकार की सामाजिक संरचना में आदर्शों का अत्यधिक महत्व होता है। ये आदर्श परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं। इन्हीं आदर्शों के आधार पर विशिष्ट प्रतिमानों (Patterns) का निर्माण होता है। पारसन्स ने इस प्रकार की संरचना के उदाहरण में आधुनिक विज्ञान-प्रधान समाजों का उल्लेख किया है।

(3) विशिष्ट अर्जित संरचना (Particularistic Achieved Structure) जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट होता है, इस प्रकार की सामाजिक संरचना में दो प्रकार के मूल्यों का महत्व होता है-

(a) विशिष्ट सामाजिक मूल्य, और (b) अर्जित सामाजिक मूल्य ।

जहाँ इस प्रकार की सामाजिक संरचना पायी जाती है, वहाँ पारलौकिक मूल्यों को अधिक महत्व दिया जाता है। पारसन्स ने प्राचीन भारतीय सामाजिक संरचना को इसके अन्तर्गत रखा है। पारसन्स का विचार है कि जहाँ भी इस प्रकार की सामाजिक संरचना पायी जाती है, वहाँ गाँव, वंश-परम्परा, परिवार आदि का महत्व होता है।

(4) विशिष्ट प्रदत्त संरचना (Particularistic Ascribed Structure) सामाजिक संरचना का चौथा और अन्तिम प्रकार विशिष्ट प्रदत्त सामाजिक मूल्यों से सम्बन्धित है। यह वह सामाजिक संरचना है, जहाँ नैतिकता, रक्त-सम्बन्ध और स्थानीय समुदायों को सवर्वोच्च महत्व प्रदान किया जाता है। इस प्रकार की सामाजिक संरचना में व्यक्तिगत गुणों को सबसे अधिक महत्व प्रदान किया जाता है। व्यक्तिगत गुणों को महत्व प्रदान करने के कारण सामाजिक की अपेक्षा व्यक्तिवाद को प्राथमिकता प्रदान की जाती है।

स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्न :

प्रश्न 1: सामाजिक संरचना का क्या अर्थ है?

प्रश्न 2: सामाजिक संरचना में कौन सी प्रमुख इकाइयाँ होती हैं?

9.5 सारांश

सामाजिक संरचना समाज के भीतर विभिन्न समूहों, संस्थाओं और रिश्तों का एक व्यवस्थित ढांचा होती है, जो समाज के संचालन और उसकी व्यवस्था को निर्धारित करती है। यह संरचना समाज के भीतर प्रत्येक व्यक्ति और समूह की भूमिका, अधिकार, कर्तव्य, और आपसी संबंधों को समझने में मदद करती है। सामाजिक संरचना में परिवार, जाति, धर्म, वर्ग, लिंग, शिक्षा, और राजनीति जैसी इकाइयाँ शामिल होती हैं, जो समाज में व्यक्ति की स्थिति और पहचान को परिभाषित करती हैं। इन इकाइयों के बीच की जटिलता और उनके आपसी संबंध समाज में सत्ता, संसाधनों और संस्कृति के वितरण को प्रभावित करते हैं। सामाजिक संरचना का अध्ययन यह समझने में सहायक होता है कि कैसे विभिन्न सामाजिक संस्थाएँ और समूह एक-दूसरे पर प्रभाव डालते हैं और समाज में बदलाव और स्थिरता को प्रभावित करते हैं।

9.6 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर: 1. सामाजिक संरचना से तात्पर्य समाज के भीतर विभिन्न संस्थाओं, समूहों और रिश्तों के व्यवस्थित ढांचे से है, जो समाज के संचालन और उसकी व्यवस्था को निर्धारित करता है।

उत्तर: 2. सामाजिक संरचना में प्रमुख इकाइयाँ परिवार, जाति, वर्ग, धर्म, और शिक्षा होती हैं।

9.7 मुख्य शब्द

1. सहयोगी - मिलकर काम करने वाला।

2. अर्जित संरचना - समाज में विकसित और स्थापित संस्थाएँ और व्यवस्थाएँ।

3. प्रतिस्पर्धा - आपस में प्रतिस्पर्धा करने की प्रक्रिया, जहां हर कोई बेहतर बनने की कोशिश करता है।

9.8 संदर्भ ग्रंथ

- **शर्मा, A. (2019).** *भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना: एक समग्र दृष्टिकोण.* नई दिल्ली: जगरनथ प्रकाशन।
- **तिवारी, R. (2021).** *भारत की सामाजिक और आर्थिक संरचना में बदलाव.* दिल्ली: प्रकाशन गृह।
- **कुमार, S., & सिंह, P. (2020).** *आधुनिक भारतीय अर्थव्यवस्था: विश्लेषण और दृष्टिकोण.* मुंबई: अंजलि पब्लिकेशन।
- **दत्ता, S. (2022).** *भारत के विकास में औद्योगिक और कृषि क्षेत्र का योगदान.* कोलकाता: उन्नति प्रकाशन।
- **गुप्ता, R., & यादव, N. (2023).** *भारतीय समाज की संरचना और आर्थिक विकास: समकालीन मुद्दे.* जयपुर: मृदुला पब्लिशर्स।
- **सिंह, V. (2018).** *भारत में आर्थिक संरचनात्मक परिवर्तन: कारण और परिणाम.* लखनऊ: बुकमैन पब्लिकेशन।
- **राय, M. (2024).** *भारत की अर्थव्यवस्था और सामाजिक बदलाव: एक नया दृष्टिकोण.* दिल्ली: त्रिवेदी पब्लिशिंग हाउस।

9.9 अभ्यास प्रश्न

1. सामाजिक संरचना की अवधारणा को स्पष्ट कीजिये ।
2. सामाजिक संरचना पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिये।
3. सामाजिक संरचना के प्रमुख प्रकार लिखिये।
4. 'सामाजिक संरचना के अध्ययन का महत्व' विषय पर एक लेख लिखिये ।
5. सामाजिक संचरना की प्रमुख विशेषताओं की चर्चा कीजिये।
6. सामाजिक संरचना को परिभाषित कीजिये ।
7. सामाजिक संरचना की पाँच प्रमुख विशेषतायें लिखिये ।
8. सामाजिक संरचना के प्रमुख तत्वों का उल्लेख कीजिये ।

9. सामाजिक संरचना के प्रमुख प्रकार को 100 शब्दों में समझाओ।

10. सामाजिक संरचना के महत्व को 100 शब्दों में स्पष्ट करें।

11. सामाजिक संरचना में व्यक्ति की परिस्थिति एवं भूमिका के महत्व को 50 शब्दों में समझाओ।

12. सामाजिक संरचना के अर्थ को स्पष्ट करो।

13. पारसन्स ने सामाजिक संरचना के कितने प्रकार बतलाये हैं?

इकाई - 10

प्रस्थिति एवं भूमिका [STATUS AND ROLE]

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 प्रस्थिति का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Status)

10.4 भूमिका (Role)

10.5 प्रस्थिति और भूमिका का अन्तः सम्बन्ध

(Inter-Relation of Status and Role)

10.6 सारांश

10.7 मुख्य शब्द

10.8 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

10.9 संदर्भ ग्रन्थ

10.10 अभ्यास प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

प्रसिद्ध अमेरिकन समाजशास्त्री मैकाइवर और पेज (Maciver and Page) का विचार है कि 'समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है।' सामाजिक सम्बन्ध एक विशेष समाज में 'सामाजिक संरचना' (Social Structure) का निर्माण करते हैं। यह सामाजिक संरचना 'सामाजिक व्यवस्था' को जन्म देती है। यह सामाजिक व्यवस्था ही सामाजिक संगठन का आधार है। पारसन्स ने इसीलिये देखा है कि "किसी समाज का संगठन उसके सामाजिक संरचना के प्रकार पर निर्भर करता है।"

इसका तात्पर्य यह है कि सामाजिक संगठन के लिये संरचना की भूमिका अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। संरचना के आधार पर ही सामाजिक संगठन का

निर्माण होता है। एक समाज का संगठन दूसरे समाज के संगठन से भिन्न होता है। इसका अर्थ यह निकलता है कि संरचना कोई स्थायी तत्व न होकर गतिशील तत्व है। देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार सामाजिक संरचना में भिन्नता का होना अनिवार्य है।

इलियट और मेरिल ने सामाजिक संरचना की परिभाषा करते हुए लिखा है, "सामाजिक संरचना, एक ऐसा शब्द है इसका उपयोग अन्तः सम्बन्धित संस्थाओं, स्रोतों, सामाजिक प्रतिमान में होने के कारण स्वीकार करता है।"

10.2उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकेंगे।
2. विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकेंगे।
3. सामाजिक और आर्थिक असमानता को कम करने के उपायों का विश्लेषण कर सकेंगे।
4. रोजगार सृजन और उत्पादन क्षमता में वृद्धि के महत्व को पहचान सकेंगे।
5. भारतीय अर्थव्यवस्था की वैश्विक प्रतिस्पर्धा और स्थिरता पर विचार कर सकेंगे।

10.3 प्रस्थिति का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Status)

प्रस्थिति शब्द अंग्रेजी भाषा Status का हिन्दी रूपान्तर है। Status के लिए अंग्रेजी भाषा में ही अन्य शब्दों का प्रयोग किया जाता है। जैसे Rank 'पद' और 'सामाजिक स्थिति' (Social Position)। इससे स्पष्ट होता है कि प्रस्थिति के साथ सामाजिक शब्द जुड़ा हुआ है। विभिन्न विद्वानों ने प्रस्थिति की जो परिभाषा दी है, वे इस प्रकार है-

(1) मैकाइवर और पेज "प्रस्थिति वह सामाजिक दशा है, जिसके कारण व्यक्ति को अन्य वैयक्तिक

गुणों को ध्यान में रखते हुए एक खास प्रकार की प्रतिष्ठा, आदर एवं प्रभाव मिलता है।"

(2) मार्टिण्डेल और मोनाकेसी "सामाजिक पद का तात्पर्य व्यक्ति की समाज में वह प्रस्थिति (स्थान) है, जो प्रतिष्ठा तथा प्रतीकात्मक चिन्हों द्वारा पहचानी जाती है।"

(3) डेविस "प्रस्थिति सामान्य संस्थात्मक व्यवस्था में समग्र समाज द्वारा मान्य एवं समर्पित पद है, जो विचारपूर्वक निर्मित न होकर सहज विकसित एवं लोकाचारों तथा लोकरीतियों पर आधारित होता है।"

(4) गिन्सबर्ग "प्रस्थिति किसी सामाजिक समूह अथवा संकलन में अन्य व्यक्तियों के अन्य पदों के सापेक्ष में पद है।" (5) मैरियन "पद का तात्पर्य किसी सामाजिक संरचना में व्यक्ति की अथवा समूह की संस्थागत

स्थितियों की समग्रता से लगाया जाता है।”

(6) लैपियर "सामाजिक पद, साधारणतया व्यक्ति की समाज में प्रस्थिति समझा जाता है।"

(7) लिण्टन "किसी व्यवस्था-विशेष में किसी व्यक्ति-विशेष को किसी समय-विशेष में जो स्थान प्राप्त होता है, वही उस व्यवस्था के सन्दर्भ में उस व्यक्ति की प्रस्थिति कहलायेगी ।"

(8) ऑगबर्न और निमकॉफ "प्रस्थिति की सरलतम परिभाषा यह है कि यह समूह में व्यक्ति के

स्थान का प्रतिनिधित्व करता है।"

(9) इलियट और मेरिल "व्यक्ति की प्रस्थिति से अर्थ उस स्थान से हैं, जो वह अपनी यौन, आयु, विवाह, शारीरिक योग्यताएँ, उपलब्धि और उसे सौंपे गये कार्यों के कारण प्राप्त करता है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि 'समूह में व्यक्ति का जो पद होता है, उसे ही प्रस्थिति कहा जाता है।'

प्रस्थिति के निर्धारण के तत्व

(Elements for Determination of Status)

जैसा कि परिभाषाओं से स्पष्ट है कि प्रस्थिति का अर्थ समूह में व्यक्ति की स्थिति से है। अब मूल प्रश्न यह खड़ा होता है कि इस प्रस्थिति का निर्धारण समाज के किन तत्वों के आधार पर होता है। इलियट और मेरिल ने प्रस्थिति की परिभाषा में इसके निर्धारण के तत्वों को निम्न भागों में विभाजित किया है-

(i) यौन (Sex),

(ii) आयु (Age),

(iii) विवाह (Marriage),

(iv) शारीरिक योग्यता (Physical Abilities),

(v) उपलब्धि (Achievements),

(vi) सौंपे गये कार्य (Designated work) ।

इलियट और मेरिल के द्वारा निर्धारित तत्वों के अतिरिक्त और अनेक तत्व है जिनके द्वारा समूह में व्यक्ति की प्रस्थिति का निर्धारण होता है। इन तत्वों को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है -

(1) यौन-भेद (Sex-Difference) प्राणी की शारीरिक बनावट और उसके गुणों की प्रणाली के आश्वार पर प्राणियों को दो भागों में बाँटा जा सकता है, स्वी और पुरुष। स्वी और पुरुष मानव सृष्टि के संचालन के दो आधार स्तम्भ हैं। संसार की सभी संस्कृतियों और देश-कालों में ये दो विभाजन रहे हैं और आगे भी रहेंगे। शारीरिक दृष्टि से इन दोनों में अन्तर है उसके कारण से इन दोनों के

पदों में भी अन्तर या भेद उपस्थितहो जाता है। शारीरिक दृष्टि से पुरुष स्त्रियों की तुलना में अधिक शक्तिशाली होता है। यही कारण है कि उसे घर के बाहर के कार्य करने पड़ते हैं और स्त्री को बच्चों का संरक्षण करना पड़ता है। स्त्रियाँ अधिक भावुक तथा सुकुमारी होती है, इसलिए इन्हें घर के अन्दर के कार्य सौंपे गये हैं। भावुकता प्रधान होने के कारण उन्हें धर्मों के सम्पादन का कार्य भी करना पड़ता है। यौन सम्बन्धों की इच्छा दोनों में होती है, किन्तु यौन-सम्बन्धों के उपरान्त स्वियों को पुरुषों की अपेक्षा अधिक उत्तरदायित्व का भार ग्रहण करना पड़ता है। इसका कारण यह है कि स्वियों को ही गर्भ धारण करना पड़ता है और उन्हीं से सन्तानों को उत्पन्न होना है। इस भिन्नता के कारण दोनों को अलग-अलग पद ग्रहण करने पड़ते हैं। भारतीय स्वी को अबला और शक्तिहीन माना गया है, इस कारण उसका पद भी पुरुष से भिन्न है। पाश्चात्य देश की स्वी अबला नहीं है, वह कर्मठ है और पुरुषों के समान ही कार्य कर सकती है। यही कारण है कि पाश्चात्य देश की स्त्रियों का पद भारतीय स्वियों से भिन्न है।

(2) आयु-भेद (Age-Difference) जिस प्रकार प्रत्येक देश, काल और संस्कृतियों में यौन भिन्नता पाई जाती है और इस भिन्नता के आधार पर पदों का निर्धारण होता है, ठीक उसी प्रकार आयु-भेद भी प्रत्येक देश, काल और संस्कृतियों में पाया जाता रहा और इसके आधार पर ही पदों का निर्धारण होता है। आयु के आधार पर दो प्रकार से व्यक्तियों को समूह में पद प्राप्त होता है-

(i) आयु की मात्रा जिसमें आयु को वर्गों में बाँटकर व्यक्तियों को अलग-अलग पदों में विभाजित किया जाता है -

(a) बालक-बालिका

(b) युवक-युवती

(c) प्रौढ़-प्रौढ़ा

(d) वृद्ध-वृद्धा

(ii) पद का निर्धारण ज्ञान पर होता है। जो व्यक्ति कम आयु के होते हुए भी अधिक अनुभवी और बुद्धिमान होते हैं; उन्हें अधिक आयु के व्यक्तियों की

तुलना में ऊँचा पद प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार व्यक्ति की कर्मठ प्रकृति भी समूह में उसके पद का निर्धारण करती है।

(3) विवाह (Marriage) विवाह समूह में व्यक्ति की प्रस्थिति को निर्धारित करने वाला महत्वपूर्ण तत्व है। विवाह के आधार पर एक समूह के सभी पुरुषों को दो भागों में बाँटा जा सकता है-

(i) विवाहित (Married)

(ii) अविवाहित (Unmarried)

विवाहित व्यक्तियों के भी समाज में भिन्न-भिन्न पद होते हैं-

(a) धर्म और परम्पराओं के आधार पर विवाहित ।

(b) प्रेम विवाह और रोमांस के द्वारा विवाहित ।

विवाह के बाद जिन स्त्रियों और पुरुषों के पति-पत्नियाँ समाप्त हो जाती हैं, उन्हें भी निम्न पदों से सम्बोधित किया जाता है, जैसे-

(a) विधवा

(b) विधुर।

विवाह की संस्था के आधार पर भी व्यक्ति को समाज में स्थान प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए बंगाल में कुलीन विवाह (Hypergamy) का प्रचलन था। इस विवाह के अनुसार जो व्यक्ति जितने ही अधिक विवाह करता था, उसे उतनी की कुलीनता मिलती थी। इसके कारण उस व्यक्ति को सम्मानजनक पद प्राप्त होता था। जिन व्यक्तियों का विवाह अधिक उम्र हो जाने पर भी नहीं होता है, उसे परम्परागत भारतीय समाज में अच्छा नहीं माना जाता है। जो व्यक्ति एक से अधिक विवाह करते हैं, उनको समाज में एक विवाह करने वाले व्यक्तियों से भिन्न स्थान प्राप्त होता है।

(4) शारीरिक योग्यताएँ (Physical Abilities) समूह में प्रस्थिति का निर्धारण शारीरिक योग्यताओं के आधार पर भी होता है। शारीरिक योग्यता का सीधा और सरलतम अर्थ शारीरिक विशेषताओं का निर्धारण किया जाता है। शारीरिक विशेषताओं के आधार पर व्यक्ति को अलग-अलग पद प्राप्त होते हैं।

मानवशास्त्रियों ने शारीरिक विशेषताओं के आधार पर संसार की प्रजातियों को निम्न भागों में विभाजित किया (i) काकेशायड या श्वेत प्रजाति,

(ii) मँगोलायड या पीली प्रजाति; और

(iii) नीग्रोयाड या काली प्रजाति ।

इसी प्रकार शारीरिक योग्यता अन्य प्रकार से भी व्यक्ति के पद का निर्धारण करती है, जैसे

(a) शारीरिक दृष्टि से निर्बल व्यक्तियों को बलवान व्यक्तियों की तुलना में दूसरा ही स्थान प्राप्त होता है। यदि हम मानव उद्विकास की विभिन्न अवस्थाओं का अध्ययन करें, तो ऐसा स्पष्ट होता है कि प्रत्येक देश, काल और संस्कृतियों में बलवानों को श्रेष्ठ स्थान प्राप्त होता रहा है। इसलिए राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी की निम्न पंक्तियाँ अत्यन्त ही सार्थक प्रतीत होती है कि

'निर्बल का है कहीं जगत में नहीं ठिकाना।

रक्षा साधन उन्हें प्राप्त हों चाहे नाना ।।'

(b) इसी प्रकार जो व्यक्ति शारीरिक दृष्टि से असमर्थ होते हैं, उन्हें समर्थ व्यक्तियों की तुलना में अन्य प्रकार का पद प्राप्त होता है, जैसे-

अन्धे को सूरदास का पद, इसी प्रकार से लँगड़े, लूले, गूँगे, बहरे, विक्षिप्त आदि व्यक्तियों को उनकी शारीरिक विशेषताओं के आधार पर भिन्न-भिन्न प्रकार के पद प्राप्त होते हैं।

(c) शारीरिक लम्बाई और चौड़ाई भी समूह में व्यक्ति के पद का निर्धारण करती है। जैसे 'सैनिक का पद', 'खिलाड़ी का पद आदि। ये पद उसी व्यक्ति को प्राप्त हो सकेंगे, जो पर्याप्त शारीरिक योग्यताओं को रखते होंगे। कभी-कभी प्रतिभाशाली शरीर भी अनेक प्रकार के पदों को प्राप्त करने में सहायक होता है।

(5) उपलब्धि (Achievements) उपलब्धि का सीधा अर्थ प्राप्ति से लगाया जाता है। यह किसी वस्तु के पाने की ओर संकेत करता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि उपलब्धि व्यक्ति के पद का निर्धारण करने में सहायक तत्व का काम' करती है। उदाहरण के लिये व्यक्ति अत्यन्त ही गरीब है और मजदूरी के

द्वारा अपना भरण-पोषण करता है। अब यदि अचानक उसे 5 लाख रुपये लाटरी के रूप में मिल जाते हैं तो तत्काल ही उसके पद और उसकी प्रतिष्ठा में परिवर्तन हो सकता है। इसी प्रकार भूमिहीन व्यक्ति को पर्याप्त भूमि के मिल जाने से और कृषि की पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध हो जाने के कारण उसे किसान का पद प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार प्रजातन्त्र के युग में मत (Vote) प्राप्त हो जाने से लेकर प्रधानमंत्री तक का पद प्राप्त किया जा सकता है। संक्षेप में उपलब्धि चाहे किसी भी प्रकार की क्यों न हो धार्मिक, पारिवारिक सामाजिक आर्थिक या राजनैतिक उसके द्वारा किसी-न-किसी प्रकार का पद निश्चित रूप से प्राप्त होता है।

(6) सौंपे गये कार्य (Assigned Work) वास्तव में कार्य और पद कुछ इस प्रकार अन्तः सम्बन्धित हैं कि उन्हें एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। पद के आधार पर व्यक्ति को निश्चित कार्यों का सम्पादन करना पड़ता है और कायों के द्वारा व्यक्ति को पद भी प्राप्त होता है। भारतीय दर्शन में कर्म का सिद्धान्त है। उसके अनुसार व्यक्ति को निरन्तर कुछ-न-कुछ करना पड़ता है, और इन्हीं किये गये कर्मों के आधार पर उसके आगे-आगे आने वाले कार्यों की भूमिका तैयार होती है। व्यक्ति जो कार्य करेगा उसी कार्य की प्रकृति का पद उसे मिलेगा। उदाहरण के लिये जो व्यक्ति अध्ययन और अध्यापन का कार्य करेगा उसे गुरु और पुरोहित का पद मिलेगा। जो व्यक्ति शराब पियेगा और जुआ खेलेगा, उसे शराबी और जुआड़ी का पद मिलेगा। इसी प्रकार जो व्यक्ति खेलेगा, उसे खिलाड़ी का पद मिलेगा और जो व्यक्ति गाना गाएगा उसे गीतकार, गायक पार्श्व गायक का पद मिलेगा।

अपनी परिभाषा में इलियट और मेरिल ने पद निर्धारण के लिए उपर्युक्त 6 तत्वों का विवेचन किया है। इन तत्वों के अतिरिक्त भी पद के निर्धारण में अनेक तत्व सहायक होते हैं। इलियट और मेरिल ने पद निर्धारण के लिए जो तत्व बतलाये हैं उनके अतिरिक्त अन्य तत्व निम्न हैं-

(7) बन्धुत्व (Kinship) बन्धुत्व के बोध के लिए हिन्दी में अनेक शब्दों का प्रयोग होता है, जैसे स्वजनता या बन्धुत्व। यह अंग्रेजी के Kin शब्द से बना है

जिसका अर्थ होता है 'स्वजन'। इसके लिए सबसेसमाजशास्त्र बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर-

प्रचलित शब्द नातेदारी भी है। बन्धुत्व के मुख्य आधार रक्त सम्बन्धी (Blood Relations) होते हैं। बन्धुत्व के द्वारा समूह में व्यक्ति को पद प्राप्त होता है। नातेदारी व्यवस्था के दो मौलिक स्तम्भ है- माता और पिता । माता-पिता के सीधे रक्त-सम्बन्ध में अनेक व्यक्ति आते हैं। बन्धुत्व में मुख्य रूप से जिन व्यक्तियों को सम्मिलित किया जाता है उनमें पिता-माता, पुत्र-पुत्री, मामा-मामी, दादा-दादी, आदि आते हैं। ये सभी पद रक्त सम्बन्धी या बन्धुत्व के आधार पर प्राप्त होते हैं। हिन्दू-धर्म दर्शन के अनुसार पिता के दाह-संस्कार का अधिकार सिर्फ बड़े पुत्र को ही है और उसी के द्वारा पिता को स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

(8) आर्थिक आधार (Economics Basis) अर्थव्यवस्था मानव-जीवन का आधार है और इसी के आधार पर समूह में व्यक्ति के पद का निर्धारण होता है। अधिकांश आदिवासी जातियों के अध्ययन ने यह सिद्ध कर दिया है। उस आदिवासी का जमादार (Head of the Community) वही व्यक्ति है, जो आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न है। प्रत्येक समाज में उन्हीं व्यक्तियों को सम्मानजनक स्थान प्राप्त होता है, जिनके पास अधिक मात्रा में सम्पत्ति रहती है। प्रमुख समाजवादी विचारक कार्ल मार्क्स (Karl Marx) का विचार है कि इतिहास में परिवर्तन का आधार अर्थव्यवस्था में होने वाला परिवर्तन है। उसने गुणों का उदाहरण देकर ऐसा बताने का प्रयास किया है कि अर्थव्यवस्था में परिवर्तन के साथ ही वर्गों में भी परिवर्तन हो जाता है जैसे-

(i) सामन्तवाद -

इसमें दो वर्ग है -

(a) भू-स्वामी, और

(b) भूमिहीन।

(ii) पूँजीवाद इसमें भी दो वर्ग हैं-

(a)

पूँजीपति, और

(b) श्रमिक।

वे भूस्वामी भूमिहीन, पूँजीपति और श्रमिक एक प्रकार के पदों की ओर संकेत करते हैं, जिसका आधार, अर्थव्यवस्था है। प्रत्येक समाज में 'फिएट' और 'एम्बेसडर' में चलने वाले व्यक्तियों का पद निश्चित रूप से साईकिल से चलने वाले व्यक्ति से भिन्न होगा। प्रत्येक युग में अर्थव्यवस्था के भिन्न स्वरूप रहे हैं। जैसे आखेट युग में धनुष-बाण ही सम्पत्ति थे, पशुपालन में पशु और कृषि-युग में हल-बैल आदि। ये वस्तुएँ जिनके पास होती थीं, उस व्यक्ति को समाज में अन्य व्यक्तियों की तुलना में ऊँचा स्थान प्राप्त होता था।

(9) व्यवसाय (Occupation) व्यवसाय के आधार पर भी पदों का निर्धारण होता है। भारतीय परम्परात्मक समाज में पुरोहित का पद निश्चित रूप से बढ़ई और लुहार से उच्च होता है। यदि इस व्यवसाय को आधुनिक दृष्टि से देखें तो ऐसा प्रतीत होता है कि चपरासी की अपेक्षा अधिकारी का पद ऊँचा होता है आई.ए.एस. (1.A.S.) का पद सम्मानजनक माना जाता है।

(10) शिक्षा (Education) शिक्षा अन्धकार से प्रकाश की ओर मानव यात्रा का नाम है। शिक्षा मानव-समाज में ज्ञान की वृद्धि करती है। शिक्षा के द्वारा समाज दो भागों में विभाजित हो जाता है -

(i) शिक्षित (Educated), और

(ii) अशिक्षित (Non-Educated)

(11) राजनैतिक सत्ता (Political Authority) राजनैतिक सत्ता आधुनिक युग की सबसे बड़ी सत्ता है। इस सत्ता की प्राप्ति हो जाने पर पद तो प्राप्त होते ही हैं, दुनिया के सारे ऐश्वर्य उस व्यक्ति के कदम चूमने लगते हैं। राजनैतिक सत्ता के आधार पर ही 'राजा' और 'रंक' शासक और शासित दो प्रकार के पदों का निर्माण होता है और इनका अस्तित्व रहता है।

उपर्युक्त तत्वों के अतिरिक्त भी अन्य तत्व हैं, जिनके आधार पर 'पद' प्राप्त होते हैं। उदाहरण के लिए

अधिकार, कलात्मक विशेषताएँ, खेलकूद की योग्यता, साहस, जाति और प्रजाति की विशेषताएँ आदि। इन सभी तत्वों के द्‌वारा समाज में व्यक्ति के पद का निर्धारण होता है।

प्रस्थिति के प्रकार Kinds of Status)

पद के प्रकारों को सुविधा की दृष्टि से दो भागों में बाँटा जा सकता है -

(1) **प्रदत्त पद** (Ascribed Status) जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट होता है, ये पद अपने माता-पिता, आयु-समूह, विवाह, योनि- समूह और किसी राष्ट्र या समूह का सदस्य होने के कारण अपने आप प्राप्त होते हैं। इस पद का आधार जन्म (Birth) होता है और इसमें किसी प्रकार का परिवर्तन सम्भव नहीं है। ये पदसमाजशास्त्र : बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर

वैश-परम्परागत होते हैं और आने वाली पीढ़ियों को स्वतः हस्तान्तरित होते रहते हैं। उदाहरण के लिए जाति-व्यवस्था। इसमें ब्राह्मण का पद सर्वोच्च है। इस पद को प्राप्त करने के लिए एक ही योग्यता है और वह यह है कि उस व्यक्ति को बाह्मण कुल में जन्म लेना चाहिए। जिसका भी जन्म बाह्मण कुल में होगा, उसे अपने ही आप यह पद मिल जायेगा। ये पद सार्वभौमिक और सार्वकालिक होते हैं।

(2) **अर्जित पद** (Achieved Status) अर्जित शब्द अर्जन से बना है और इसका सीधा अर्थ है अर्जन करना, प्राप्त, प्रयास करना, कमाना आदि। आधुनिक समाज गतिशील है। इस गतिशीलता के कारण समाज के हर क्षेत्र में परिवर्तन होते हैं और इन परिवर्तनों के कारण 'पद' में भी परिवर्तन का होना स्वाभाविक है। अर्जित पदों में व्यक्ति के प्रयासों का अधिक महत्व होता है। यदि व्यक्ति इन पदों के लिए प्रयास नहीं करेगा, तो उसे ये पद प्राप्त नहीं हो सकेंगे। साधित पदों के प्राप्त करने के कई तरीके हैं, किन्तु साधित पदों को प्राप्त करने के लिए पर्याप्त सुविधाओं का होना आवश्यक है और दूसरी बात यह है कि इन पदों को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को पर्याप्त सुविधाएँ आर व्यक्तिगत प्रयास के द्‌वारा ही इन पदों को प्राप्त किया जा सकता है। इतिहास युगों का निर्माण करता है किन्तु इतिहास का निर्माण व्यक्तियों के द्‌वारा होता है। ये वही व्यक्ति हैं, जो प्रयत्न को सबसे अधिक महत्व देते हैं। 10

प्रदत्त और अर्जित प्रस्थिति में अन्तर

(Distinction Between Ascribed and Achieved Status)

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रदत्त तथा अर्जित प्रस्थिति में अन्तर है। यह अन्तर निम्नलिखित है-

(1) प्रदत्त प्रस्थिति में व्यक्ति को अपने आप प्राप्त हो जाता है, जबकि अर्जित प्रस्थिति को प्राप्त करने के लिए प्रयास करना पड़ता है।

(2) प्रदत्त प्रस्थिति व्यक्ति की योग्यता और कुशलता का कोई महत्व नहीं है, जबकि अर्जित प्रस्थिति व्यक्ति की योग्यता और कुशलता के आधार पर ही प्राप्त की जाती है।

(3) प्रदत्त प्रस्थिति में वंशानुक्रमण, आयु, यौन पारिवारिक स्थिति से प्राप्त होती है, जबकि अर्जित प्रस्थिति में इनका कोई स्थान नहीं है।

(4) तुलनात्मक दृष्टि से प्रदत्त प्रस्थिति में स्थायित्व पाया जाता है, जबकि अर्जित प्रस्थिति परिवर्तनशील होती है।

(5) प्रदत्त प्रस्थिति का परम्परात्मक समाजों में अधिक महत्व होता है, जबकि अर्जित प्रस्थिति का आधुनिक समाजों में।

(6) प्रदत्त स्थिति बन्द समाज (Closet Society) का निर्माण करती है, जबकि अर्जित प्रस्थिति के कारण खुले समाज (Open Society) को प्रोत्साहन मिलता है।

(7) प्रदत्त स्थिति में समूहबाद (Collectivism) को महत्व प्रदान किया जाता है, जबकि अर्जित स्थिति में व्यक्तित्वाद (Individualism) की प्रधानता होती है।

(8) प्रदत्त प्रस्थित्ति तथा इससे सम्बद्ध भूमिका में सदैव सामंजस्य का होना आवश्यक नहीं है, जबकि अर्जित प्रस्थिति और इससे सम्बद्ध भूमिका में सदैव सामंजस्य बना होता है।

(9) प्रदत्त प्रस्थिति सहयोगी भावनाओं पर आधारित होती है, जबकि अर्जित प्रस्थिति में प्रतिस्पर्द्धा का महत्वपूर्ण स्थान होता है।

(10) प्रदत्त प्रस्थिति अनौपचारिक (Informal) होती है, जबकि अर्जित औपचारिक (Formal) होती है।

10.4 भूमिका (Role)

यदि हम समाज पर नजर डालें, तो ऐसा लगता है कि यह विविधताओं से भरा हुआ है। व्यक्ति शारीरिक दृष्टि से एक-दूसरे से भिन्न तो है ही, वह मानसिक व्यावसायिक और क्रियात्मक दृष्टि से भी एक-दूसरे से भिन्न है। इसी भिन्नता के कारण एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से भिन्न पद प्राप्त होता है। कुछ अध्यापक होते हैं, तो कुछ श्रमिक। कुछ नेता होते हैं, तो कुछ अभिनेता। कुछ व्यापारी होते हैं, तो कुछ शासक। ये सभी पद व्यक्ति को उसके द्वारा सम्पादित भूमिका के कारण प्राप्त होते हैं। वास्तव में कार्य अथवा भूमिका ही वह आधारहै, जो व्यक्ति के पदों का निर्धारण करता है। पद और कार्य भी सामंजस्यपूर्ण स्थिति के द्वारा समाज में संगठन +का निर्माण होता है, जो समाज की मूलभूत आवश्यकता है।

प्रत्येक समाज जो वह आदिम हो अथवा आधुनिक उसका निर्माण अनेक सस्थाओं और समूहों में होता है। इन संस्थाओं और समूहों की एक निश्चित संरचना होती है। प्रत्येक व्यक्ति समाज की संरचना में पदों और कार्यों की अन्तःसम्बन्धितता पर आधारित होता है। व्यक्ति अपने पद के अनुरूप जिन कार्यों का सम्पादन करता है, उसे ही उसकी भूमिका के नाम से जाना जाता है।

भूमिका की परिभाषा (Definition of Role)

अनेक विद्वानों ने भूमिका को परिभाषित करने का प्रयास किया है। कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्न हैं-

(1) गिन्सबर्ग "प्रस्थिति एक पद होता है, जबकि भूमिका उस पद को पूरित करने का प्रत्याशित ढंग लै ।"

(2) लुण्डबर्ग "सामाजिक भूमिका किसी समूह अथवा परिस्थिति में व्यक्ति के प्रत्याशित व्यवहार का प्रतिमान है।"

(3) आगबर्न एवं निमकॉफ "भूमिका किसी समूह में किसी विशेष पद से सम्बद्ध सामाजिक स्तर पर प्रत्याशित एवं स्वीकृत व्यवहार प्रतिमानों का संग्रहण है, जिसमें कर्तव्य एवं विशेषाधिकार दोनों सम्मिलित

(4) इलियट और मेरिल "भूमिका वह भाग है, जो वह (व्यक्ति) प्रत्येक पद के कारण प्राप्त करता

(5) सार्जेण्ट "किसी व्यक्ति की भूमिका सामाजिक व्यवहार का ही एक प्रतिमान अथवा प्रकार है,

जिसे वह (व्यक्ति) प्रत्येक स्थिति (पद) के अनुरूप निभाता है।"

(6) लिन्टन "भूमि पद का ही गतिशील पहलू है। अर्थात् अपनी प्रस्थिति (पद) का औचित्य सिद्ध करने के लिये व्यक्ति को जो कुछ करना पड़ता है, वही भूमिका है।"

(7) यंग "व्यक्ति जो करता है, उसी को हम उसकी भूमिका (कार्य) कहते हैं।"

(8) लेविन्सन "लेविन्सन का विचार है भूमिका सामाजिक आदर्शों, नियमों, व्यक्तिगत व्यवहारों तथा दृष्टिकोण से सम्बन्धित होती है। लेविन्सन ने भूमिका का प्रयोग निम्नलिखित तीन अर्थों में किया है

(a) व्यक्ति को अपने पद के अनुरूप जिन कार्यों का सम्पादन करना पड़ता है, उसे भूमिका कहते हैं।

(b) भूमिका सामाजिक संगठन में व्यक्ति के योगदान को प्रस्तुत करने वाला शब्द है।

(c) भूमिका का तात्पर्य सामाजिक संरचना से सम्बन्धित व्यक्ति के व्यवहारों और क्रियाओं से है।

इस प्रकार 'भूमिका' व्यक्ति के पद का वह बाहरी स्वरूप है, जिसे व्यक्ति समूह का सदस्य होने के नाते कर्तव्य के रूप में करता है।'

भूमिका की विशेषताएँ

(Characteristics of Role)

उपर्युक्त परिभाषाओं को ध्यान में रखते हुए भूमिका की प्रमुख विशेषताओं को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) व्यवहारों की सम्पूर्णता भूमिका व्यवहारों की वह सम्पूर्णता है जिनको एक विशेष प्रस्थिति (पद) में होने के कारण व्यक्ति पूरा करता है।

(2) सामाजिक स्वीकृति भूमिका का सम्पादन व्यक्ति विशेष की इच्छा पर अधारित नहीं है, अपितु

इसका निर्धारण सम्पूर्ण समाज की स्वीकृति पर आधारित होता है। इसका कारण यह है कि भूमिका का निर्धारण

एक विशेष संस्कृति के नियमों के द्वारा होता है।

(3) सामाजिक संगठन प्रत्येक व्यक्ति से ऐसी आशा की जाती है कि वह अपनी भूमिका का निर्वाह करे। इसका कारण सामाजिक मूल्यों के अनुसार व्यवहारों को ढालकर सामाजिक संगठन को मजबूत बनाना

है।

(4) भूमिकाओं के प्रकार भूमिकाएँ दो प्रकार की होती हैं प्रदत्त और अर्जित । प्रदत्त भूमिकाएँ व्यक्ति को परम्परात्मक तौर से प्राप्त हो जाती है, जबकि अर्जित भूमिकाओं के लिए व्यक्ति को प्रयास करना पड़ता है। अर्जित भूमिकाओं के कारण ही व्यक्ति के व्यक्तित्व में निखार आता है।

(5) भूमिकाओं की विविधता भूमिकाओं में विविधता पायी जाती है। एक ही क्षेत्र में निवास करने वाले व्यक्तियों को भिन्न-भिन्न प्रकार की भूमिकाओं का सम्पादन करना पड़ता है। एक व्यक्ति को अनेक व्यक्तियों के साथ तथा अनेक संस्थाओं में अलग-अलग प्रकार की भूमिकाओं का निर्वाह करना पड़ता है। जैसे परिवार, कालेज, मन्दिर, क्लब, आर्थिक संगठन आदि में व्यक्ति की भूमिकाओं में भिन्नताएँ।

(6) गतिशीलता अवधारणा सामाजिक भूमिका की अवधारणा स्थिर न होकर गतिशील है। गतिशीलता के कारण ही इसमें समय-समय पर परिवर्तन होते रहते हैं। सामाजिक परिवर्तन की स्थिति में व्यक्ति जैसे-ही-जैसे अपने समाज और संस्कृति का अनुकूलन करता जाता है, उसमें परिपक्वता आती जाती है।

(7) व्यक्तिगत रुचि का महत्व एक व्यक्ति को अनेक प्रकार की भूमिकाओं का निर्वाह करना पड़ता है, किन्तु वह सभी भूमिकाओं को समान रुचि से नहीं करता है। किसी भूमिका को वह रुचि से सम्पादित करता है, जबकि अन्य को अरुचि से। इसका कारण यह है कि व्यक्ति की योग्यता का उसकी योग्यता, रुचि और मनोवृत्तियों से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।

(8) भूमिकाओं का महत्व व्यक्ति द्वारा सम्पादित भूमिकाओं का समाज में महत्व होता है, किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि व्यक्ति द्वारा सम्पादित सभी भूमिकाएँ समान महत्व की हों। इस दृष्टि से भूमिकाएँ दो प्रकार की होती हैं।

(a) प्रमुख भूमिकाएँ (Key Roles), और

(b) सामान्य भूमिकाएँ (General Roles)

भूमिका के निर्धारक तत्व

(Elements of the Determination of Role)

भूमिका का निर्धारण कैसे होता है? वे कौन से तत्व है, जो एक समूह विशेष में व्यक्ति की भूमिका का निर्धारण करते हैं। भूमिका और स्थिति अन्तः सम्बन्धित हैं। जो तत्व व्यक्ति के पद का निर्धारण करते हैं, वही तत्व कार्यों का निर्धारण करते हैं। व्यक्ति के पदों और कार्यों को निर्धारित करने वालों में कुछ प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं -

(1) यौन (Sex) हर समाज में व्यक्तियों के कार्यों के निर्धारण में लिंग अथवा यौन का महत्वपूर्ण हाथ रहा है। सामान्यतया पुरुष कठोर कार्यों का सम्पादन करते हैं और स्त्रियाँ शारीरिक दृष्टि से ऐसे कार्यों को सम्पादित करती है, जिसमें शारीरिक शक्ति या बल का महत्व कम होता है।

(2) आयु (Age) व्यक्ति के कार्यों को निर्धारित करने का दूसरा आधार आयु है। हर समाज में आयु के अनुसार व्यक्तियों का विभाजन होता है। सामान्यतया आयु की दृष्टि से व्यक्ति को तीन भागों में विभाजित किया जाता है और इसी आधार पर उनके कार्यों को निर्धारित किया जाता है -

(i) बालक

(ii) युवक और

(iii) वृद्ध।

(3) वैवाहिक स्थिति वैवाहिक स्थिति को मुख्य रूप से पाँच भागों में विभाजित किया जा सकता

(i) अविवाहित, (ii)

विवाहित,

(iii) विधवा,

(iv) विधुर, और (v)

परित्यक्त।

जिस व्यक्ति की जो वैवाहिक स्थिति होती है, उसी प्रस्थिति के अनुसार व्यक्ति कार्यों का निर्धारण और सम्पादन करते हैं।

(4) शारीरिक योग्यताएँ (Physical Ability) शारीरिक योग्यताएँ व्यक्ति के कार्यों को निर्धारित करने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व हैं। सेना में भर्ती होकर राष्ट्र की सेवा के कार्य का सम्पादन सिर्फ वही व्यक्ति कर पाते हैं, जो शारीरिक दृष्टि से योग्य और फिट होते हैं।(5) उपलब्धि उपलब्धि या प्राप्ति के आधार पर भी व्यक्ति के कार्यों का निर्धारण होता है। उदाहरण समाजशास्व बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर-1 के लिए यदि किसी व्यक्ति को अध्यापक का पद प्राप्त हो जाता है, तो वह अध्यापक के अनुरूप ही अपने कार्यों को संशोधित कर लेता है।

(6) सौंपे गये कार्य सौंपे गये कार्य भी व्यक्ति के कार्यों का निर्धारण करते हैं। कभी-कभी कुछ विशिष्ट कार्य व्यक्तियों को सौंप दिये जाते हैं, जिन कार्यों से उनका सम्बन्ध नहीं होता है। कालान्तर में ऐसे कायों को सम्पादित करने की व्यक्ति की आदत बन जाती है।

(7) आर्थिक आधार अर्थव्यवस्था मानव-जीवन का केन्द्र-बिन्दु होती है। व्यक्ति के अधिकांश कार्यों के मूल में आर्थिक प्रेरणाएँ होती हैं। इस प्रकार आर्थिक लालच या आर्थिक प्रेरणाएँ व्यक्ति का निर्धारण करती है।

(8) व्यवसाय आधुनिक समाजों में व्यवसाय व्यक्तियों के कार्यों को निर्धारित करने का शक्तिशाली साधन है। व्यक्ति जिस प्रकार का व्यवसाय करता है, उसी के अनुरूप कार्य करने की आदत हो जाती है।

(9) शिक्षा - व्यक्तियों के कार्यों के निर्धारण में शिक्षा की भूमिका भी महत्वपूर्ण है। शिक्षा मानव ज्ञान में वृद्धि करती है, शिक्षित व्यक्ति अपने कार्यों का सम्पादन अच्छी तरह करते हैं।

(10) जाति और प्रजातियाँ जातियाँ और प्रजातियाँ व्यक्ति के कार्यों के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। जातियों और प्रजातियों की कुछ खास विशेषताएँ होती हैं, और ये अपने सदस्यों को कुछ

विशेष प्रकार के कार्यों को करने के लिए प्रोत्साहित करती है।

(11) राजनैतिक सत्ता राजनैतिक सत्ता भी व्यक्ति के कार्यों को निर्धारित करती है। जो नेता होते हैं, वे शासन का कार्य करते हैं तथा अनुयायी शासित होने का। इस प्रकार बहुमत दल शासन का कार्य करता है और अल्पमत के व्यक्ति उन कार्यों की आलोचना करते हैं।

उपर्युक्त आधारों के अतिरिक्त निम्न तत्व भी समाज में व्यक्तियों के कार्यों का निर्धारण करते हैं-

(1) खेलकूद की योग्यता ।

(2) आविष्कार।

(3) कलात्मक विशेषताएँ। शि

(4) बन्धुत्व की भावना

(5) साहस ।

(6) शारीरिक और मानसिक कुशलता ।

10.5 प्रस्थिति और भूमिका का अन्तः सम्बन्ध(Inter-Relation of Status and Role)

प्रस्थिति (Status) और भूमिका (Role) ऊपर से भिन्न-भिन्न दिखते हैं, किन्तु ये दोनों अन्तः सम्बन्धित हैं। इन्हें एक-दूसरे से पृथक करके नहीं समझा जा सकता है। इसका कारण यह है कि प्रस्थिति का निर्धारण भूमिका के आधार पर होता है और कार्य के द्वारा पदों का निर्माण होता है। प्रस्थिति और भूमिका के अनतः सम्बन्ध को निम्न भागों में बाँट कर समझा जा सकता है-

(1) प्रस्थिति और भूमिका दोनों का ही निर्धारण होता है। यह निर्धारण समाजशास्त्री परिस्थितियों के आधार पर होता है। संक्षेप में पद और कार्य के निर्धारण में उस समूह की सामाजिक व्यवस्था; सांस्कृतिक-धार्मिक कारण, शिक्षा तथा आर्थिक परिस्थितियों का हाथ होता है।

(2) एक व्यक्ति की प्रस्थिति और भूमिका दूसरे व्यक्ति की प्रस्थिति और भूमिका से भिन्न होते हैं।

किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि एक व्यक्ति की स्थिति और भूमिकाओं का दूसरे व्यक्ति से कोई सम्बन्ध नहीं है। वास्तव में व्यक्तियों के पदों और कार्यों में अन्तः सम्बन्धितता पाई जाती है।

(3) व्यक्ति की प्रस्थिति का निधार्रण 'सामाजिक मूल्यों' (Social Values) के द्वारा होता है। इन

मूल्यों का जन्म समाज की परिस्थितियों में होता है। व्यक्ति और समूह इन मूल्यों का आदर करता है और इसकी रक्षा का प्रयास करता है। मूल्यों का आदर वह कर्तव्यों के द्वारा ही करता है। इस प्रकार पद सामाजिक मूल्यों का निर्धारण करते हैं और कार्य इन मूल्यों की रक्षा करता है।

(4) प्रस्थितियों में समानता होते हुए भी व्यक्ति इन प्रस्थितियों के सम्पादन में भिन्न-भिन्न प्रकार कार्य कर सकता है। उदाहरण के लिए एक महाविद्यालय है, इनमें 50 अध्यापक हैं। इन 50 अध्यापकों व प्रस्थिति में समानता है। अपने इन पदों की रक्षा के लिए सभी अध्यापक कार्य करते हैं, किन्तु यह आवश्य

नहीं है कि सभी अध्यापक एक ही प्रकार का अध्ययन करें। अध्यापकों के अध्यापन में भिन्नता का हो स्वाभाविक है।

व्यक्ति के जीवन में प्रस्थिति एवं भूमिका का महत्व

व्यक्ति के जीवन में प्रस्थिति और भूमिका का महत्व निम्नलिखित है -

(1) आदर्श व्यवहार प्रतिमान समाज में व्यक्ति की प्रत्येक प्रस्थिति के साथ कुछ मूल्य जुड़े हो हैं। इन मूल्यों का व्यक्ति के जीवन और व्यवहारों पर प्रभाव पड़ता है। समाज में इन मूल्यों के निर्धार सांस्कृतिक पर्यावरण के आधार पर होता है। सांस्कृतिक पर्यावरण व्यक्ति के लिए आदर्श व्यवहार प्रतिमान का निर्माण करता है। व्यक्ति इन आदर्श प्रतिमानों का पालन करता है। इसका कारण यह है कि इन व्यवहा प्रतिमानों के पालन में ही व्यक्ति के पद में कार्यों का महत्व है। इस प्रकार प्रस्थिति और कार्य व्यक्ति के लिए आदर्श व्यवहार प्रतिमानों का निर्धारण करते हैं। पूँजीपति अपनी विशेष प्रस्थिति के कारण ही निर्धनों से एक विशेष प्रकार का व्यवहार करता है। वृद्धजन अपनी प्रस्थिति के कारण ही कम वयस्क व्यक्तियों को नादान समझते हैं। परम्परागत हिन्दू समाज में पति अपनी प्रस्थिति के कारण ही अपनी पत्नी को दासी कहने क दुस्साहस करते हैं।

(2) प्रस्थिति-समूहों का निर्माण समाज में व्यक्तियों की भिन्न-भिन्न परिस्थिति के कारण है अलग-अलग प्रस्थिति समूहों का निर्माण होता है। उदाहरण के लिए श्रमिक समूह, निर्धन समूह, पूँजीपति समू विद्यार्थी समूह, अध्यापक समूह आदि। प्रस्थिति के कारण इन समूहों में दो प्रकार की चेतना का विकास होत है-

(a) प्रस्थिति-समूह के निर्माण की चेतना, और

(b) हितों की रक्षा के लिए चेतना।

(3) सामाजिक परिस्थितियों का ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति की प्रस्थिति उसकी सामाजिक परिस्थिति से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होती है। समाज में किसी व्यक्ति की प्रस्थिति की कल्पना तब तक नहीं की जा सकती है, जब तक उसे सामाजिक परिस्थिति का ज्ञान न हो। समाज 'पिता' की प्रस्थिति का ज्ञान उस

सामाजिक परिस्थिति में ही किया जा सकता है। इस प्रकार प्रस्थिति और कार्य व्यक्ति को सामाजिक परिस्थिति की जानकारी प्रदान करते हैं।

परीक्षाओं के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न (Important Questions for Examinations)

(अ) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. स्थिति तथा भूमिका की व्याख्या कीजिये। समाज में स्थिति एवं भूमिका का निर्धारण किस प्रकार होता है?

2.प्रदत्त तथा अर्जित भूमिका का संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

3. समाज में प्रस्थिति तथा भूमिका के प्रभाव की विवेचना कीजिए।

4. 'परिवर्तित समाज में स्थिति एवं भूमिका' पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

स्वप्रगति परीक्षण

1. प्रस्थिति और भूमिका का अध्ययन क्यों किया जाता है?

A) सामाजिक संरचना को समझने के लिए B) केवल व्यक्तिगत पहचान के लिए

C) समाज के आर्थिक ढांचे को समझने के लिए D) समाज में किसी की स्थिति का निर्धारण करने के लिए

2. स्थिति और भूमिका का अध्ययन किसे स्पष्ट करता है?

A) केवल व्यक्ति की जिम्मेदारियाँ B) समाज में व्यक्तियों के कार्य और रिश्तों को

C) केवल सांस्कृतिक मान्यताएँ D) समाज के अधिकारों को

10.6 सारांश

प्रस्थिति और भूमिका समाजशास्त्र के दो महत्वपूर्ण तत्व हैं जो समाज में व्यक्तियों और समूहों के कार्यों और स्थान को समझने में मदद करते हैं। प्रस्थिति किसी व्यक्ति या समूह की समाज में निर्धारित स्थान या दर्जा है, जिसे सामाजिक संरचना में उनकी पहचान के रूप में देखा जाता है। यह व्यक्ति की सामाजिक पहचान, जैसे उनकी जाति, वर्ग, लिंग या पेशे के आधार पर निर्धारित होती है। वहीं, भूमिका उस प्रस्थिति से संबंधित कार्यों और जिम्मेदारियों का समूह होती है, जिसे समाज ने व्यक्ति से अपेक्षित किया है। उदाहरण के लिए, एक शिक्षक की प्रस्थिति उसकी शिक्षा और पेशेवर भूमिका से जुड़ी होती है, जबकि उसकी भूमिका विद्यार्थियों को शिक्षा देना है। स्थिति और भूमिका का अध्ययन यह समझने में मदद करता है कि समाज में प्रत्येक व्यक्ति किस प्रकार की जिम्मेदारी निभाता है और उसका स्थान समाज के अन्य तत्वों के मुकाबले क्या होता है। इन दोनों के माध्यम से समाज में व्यक्तियों के कार्यों और उनके बीच के अंतर-संबंधों को बेहतर तरीके से समझा जा सकता है

10.7 मुख्य शब्द

1. समाजिक पहचान - स्थिति और भूमिका से व्यक्ति की पहचान समझना।

2. समाजिक संरचना - समाज में विभिन्न स्थितियों और भूमिकाओं का विश्लेषण करना।

3. जिम्मेदारियाँ - स्थिति और भूमिका से जुड़ी जिम्मेदारियों को पहचानना।

4. समाजिक संबंध - व्यक्ति और समूह के बीच रिश्तों को समझना।

10.8 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगतिकीजाँच

उत्तर: A) सामाजिक संरचना को समझने के लिए

उत्तर: B) समाज में व्यक्तियों के कार्य और रिश्तों को

10.9 संदर्भ ग्रन्थ

- **शर्मा, A. (2019).** *भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना: एक समग्र दृष्टिकोण*. नई दिल्ली: जगरनथ प्रकाशन।
- **तिवारी, R. (2021).** *भारत की सामाजिक और आर्थिक संरचना में बदलाव*. दिल्ली: प्रकाशन गृह।
- **कुमार, S., & सिंह, P. (2020).** *आधुनिक भारतीय अर्थव्यवस्था: विश्लेषण और दृष्टिकोण*. मुंबई: अंजलि पब्लिकेशन।
- **दत्ता, S. (2022).** *भारत के विकास में औद्योगिक और कृषि क्षेत्र का योगदान*. कोलकाता: उन्नति प्रकाशन।
- **गुप्ता, R., & यादव, N. (2023).** *भारतीय समाज की संरचना और आर्थिक विकास: समकालीन मुद्दे*. जयपुर: मृदुला पब्लिशर्स।
- **सिंह, V. (2018).** *भारत में आर्थिक संरचनात्मक परिवर्तन: कारण और परिणाम*. लखनऊ: बुकमैन पब्लिकेशन।
- **राय, M. (2024).** *भारत की अर्थव्यवस्था और सामाजिक बदलाव: एक नया दृष्टिकोण*. दिल्ली: त्रिवेदी पब्लिशिंग हाउस।

10.10 अभ्यास प्रश्न

(अ) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. स्थिति तथा भूमिका की व्याख्या कीजिये। समाज में स्थिति एवं भूमिका का निर्धारण किस प्रकार होता है?

2. प्रदत्त तथा अर्जित भूमिका का संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

3. समाज में प्रस्थिति तथा भूमिका के प्रभाव की विवेचना कीजिए।

4. 'परिवर्तित समाज में स्थिति एवं भूमिका' पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

इकाई -11

परिवार [FAMILY]

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 परिवार (Family)

11.4 परिवार की उत्पत्ति के सिद्धान्त (Theories of Origin of Family)

11.5 परिवार के प्रकार (Types of Family)

11.6 नातेदारी [KINSHIP]

11.7 नातेदारी की श्रेणियाँ (Categories of Kinship)

11.6 सारांश

11.7 मुख्य शब्द

11.8 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

11.9 संदर्भ ग्रन्थ

11.10 अभ्यास प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

समूह सामाजिक जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है। इसका कारण यह है कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है। मनुष्य में सामाजिकता का विकास सामुहिक जीवन के द्वारा ही सम्भव है। समूह अनेक प्रकार के होते हैं। कुच्छ समूह वे हैं, जो मानव-जीवन की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक आवश्यकताओं की संतुष्टि करते हैं। किन्तु कुछ समूह ऐसे होते हैं, जिनका सम्बन्ध मानव अस्तित्व से है और जिनके अभाव में जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। परिवार इसी प्रकार का समूह है। परिवार का निर्माण अनेक व्यक्तियों से होता है। ये सभी व्यक्ति विशिष्ट सम्बन्धों द्वारा आपस में बँधे रहते हैं। ये सम्बन्ध

नातेदारी (Kin or Relatives) कहलाते हैं। यहाँ परिवार तथा इन्हीं नातेदारी सम्बन्धों की विवेचना की जायेगी।

समाज सामाजिक सम्बन्धों की व्यवस्था का नाम है और व्यक्ति अभिनेता है, जो इन सम्बन्धों की स्थापना और निर्धारण करता है। चूँकि समाज में अनेक प्रकार के संगठन और समूह पाये जाते हैं, इसलिए सामाजिक सम्बन्धों में विविधता का होना नितान्त स्वाभाविक है। अनेक सामाजिक सम्बन्धों में रक्त पर आधारित मानव सम्बन्ध अत्यन्त ही शक्तिशाली और महत्वपूर्ण होते हैं।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकेंगे।
2. विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकेंगे।
3. सामाजिक और आर्थिक असमानता को कम करने के उपायों का विश्लेषण कर सकेंगे।
4. रोजगार सृजन और उत्पादन क्षमता में वृद्धि के महत्व को पहचान सकेंगे।
5. भारतीय अर्थव्यवस्था की वैश्विक प्रतिस्पर्धा और स्थिरता पर विचार कर सकेंगे।

11.3 परिवार (Family)

यदि परिवार को मानव समाज के इतिहास की धुरी कहा जाये, तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। इसका कारण

यह है कि समस्त मानव समाज का इतिहास परिवार का इतिहास है। मनुष्य अपने जन्म से ही परिवार का सदस्य

हो जाता है, और अपने जीवन के अन्तिम काल तक वह किसी-न-किसी रूप में परिवार का सदस्य रहता है।

मानव समाज का इतिहास उसकी विरासत (Heritage) का भी इतिहास होता है। परिवार वह महत्वपूर्ण संस्था

है, जो मानव समाज की विरासत की रक्षा करता है और उसे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित करने में

मदद करता है। परिवार एक ऐसी संस्था है, जिसके अभाव में मानव अस्तित्व की कल्पना ही नहीं की जा सकती

है। समाजशास्त्रीय लुण्डबर्ग ने लिखा है कि "सामाजिक व्यवस्था में यदि सन्तानोत्पादन की क्रिया रुक जाये,

यदि बच्चों का पालन-पोषण न किया जाये और उन्हें अपने विचारों को आगामी पीढ़ी के लिए संचरित करके

एक-दूसरे से सहयोग करना न सिखाया जाये, तो सम्भवतः समाज का अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा।"

परिवार समाज की ऐसी मूलभूत संस्था है, जो एक ओर मानव अस्तित्व की रक्षा करती है तथा उसकी सामाजिक विरासत को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित करती है।

परिवार शब्द अंग्रेजी के Family शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। Family लैटिन भाषा के Famulus शब्द से निकलता है, जिसका अर्थ होता है 'नौकर'। इस प्रकार परिवार के अन्तर्गत माता-पिता, बच्चे, नौकर और यहाँ तक कि गुलामों को भी सम्मिलित किया जाता था। देश-काल और परिस्थितियों के अनुसार परिवार के स्वरूपों में परिवर्तन होते रहे हैं। परिवार बिना बच्चों के भी हो सकते हैं या माता-पिता और बच्चों को मिलाकर हो सकते हैं। परिवार व्यक्ति पर जबरन लादी गयी संस्था नहीं है, बल्कि सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जन्म से ही स्वेच्छा से इसकी सदस्यता स्वीकार करता है।

परिवार की परिभाषा

(Definition of Family)

परिवार की सार्वभौमिक और सर्वसम्मत परिभाषा देना असम्भव है। इसका कारण यह है कि देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार परिवार के स्वरूप भी भिन्न-भिन्न हैं। फिर भी कुछ विद्वानों ने परिवार की परिभाषा दी है, जिससे परिवार शब्द की आत्मा का बोध हो जाता है। परिवार की कुच्छ परिभाषाएँ निम्न हैं -

(1) मैकाइवर और पेज "परिवार वह समूह है जिसके अन्तर्गत स्वी-पुरुष का यौन सम्बन्ध पर्याप्त निश्चित हो और उनका सम्बन्ध ऐसा हो जिससे सन्तान उत्पन्न हो और उनका पालन-पोषण भी किया जाये।"

(2) इलियट और मेरिल "परिवार पति-पत्नी तथा बच्चों की एक जैविकीय सामाजिक संस्था है। यह एक सामाजिक संगठन है जिसके द्वारा कुछ मानवीय आवश्यकताएं पूर्ण की जाती हैं(3) डी. एन. मजूमदार "परिवार व्यक्तियों का समूह है जो कि एक ही छत के नीचे रहते हैं, मूक और रुधिर सम्बन्धी गाँठों में बंधे होते हैं, तथा स्थान, स्वार्थ एवं कृतज्ञता की अन्योन्याश्रितता के आधार पर जाति की जागरुकता रखते हैं।"

(4) ब्रजेंस और लॉक "परिवार व्यक्तियों का एक समूह है जिसमें व्यक्ति विवाह, पैतृक रक्त अथवा अनुकूलन के द्वारा एक-दूसरे से बँधे होते हैं, एक साथ एक घर में रहते हैं तथा उनके पति-पत्नी, माता-पिता, पुत्र-पुत्री, भाई-बहन आदि के रूपों में अपने सामाजिक कर्तव्यों के अनुसार एक-दूसरे के प्रति अपनी अन्तःक्रियाएँ एवं विचार संचालित करते रहते हैं और उनकी रक्षा करते हैं।"

(5) ऑगबर्न और निमकॉफ "परिवार पति-पत्नी का थोड़ा बहुत स्थायी संघ है, जिनके बच्चे हों या न हों या एक पुरुष या एक स्त्री का अकेले ही अपने बच्चों के साथ वाला संघ हो।"

(6) थॉमस "परिवार से हमारा तात्पर्य सम्बन्धों की उस व्यवस्था से है, जो माता-पिता एवं उनकी सन्तानों के बीच पायी जाती है।"

(7) डेविस "परिवार ऐसे व्यक्तियों का वह समूह है, जिनके आपस के सम्बन्ध गोत्र अवस्था पर आधारित होते हैं और जो इस प्रकार एक-दूसरे के रक्त सम्बन्धी होते हैं।"

इस प्रकार 'परिवार में सिर्फ माता-पिता एवं बच्चे ही नहीं आते, अपितु वे सभी व्यक्ति आते हैं, जो रक्त सम्बन्धी हों, गोद लिये हुए हों तथा जिन्हें परिवार या समाज ने परिवार में रहने की अनुमति प्रदान की हो।'

परिवार की विशेषताएँ(Characteristics of Family)

मैकाइवर और पेज ने परिवार की आठ विशेषताएँ बतलायी हैं। ये विशेषताएँ अग्रलिखित है -

(1) सार्वभौमिकता (Universality) परिवार निम्न कारणों से सार्वभौमिक संस्था है-

(a) परिवार हर एक युग और समाजों में पाया जाता है, चाहे वह समाज आदिम हो या आधुनिक।

(b) भविष्य में भी परिवार का अस्तित्व बना रहेगा।

(c) दूसरी संस्थाएँ परिवार की तुलना में इतनी सार्वभौमिक नहीं हैं।

(d) परिवार की इस सार्वभौमिकता के दो मूल कारण है

(i) परिवार के माध्यम से व्यक्ति अपनी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

(ii) इसके अतिरिक्त अन्य अनेक कार्य परिवार के ही माध्यम से सम्पादित किये जाते हैं।

(2) भावनात्मक आधार (Emotional Basis) समाज में जितनी संस्थाएँ हैं वे किसी-न-किसी आधार पर हुई हैं। परिवार का भी इस प्रकार एक निश्चित आधार है। परिवार जिस आधार पर टिका हुआ है, उसका सम्बन्ध भावनाओं से है, कानून या नींव से नहीं। जैसे पति-पत्नी के मानसिक सम्बन्ध, माँ का बच्चों के प्रति स्नेह, पालन-पोषण की व्यवस्था, सहायता और सुरक्षा आदि ऐसी अनेक भावनाएँ हैं, जिनका भावनाओं के आधार पर टिका हुआ है।

(3) रचनात्मक प्रभाव (Formative Influence) अरस्तु के अनुसार मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। इसके साथ ही परिवार को शिशु के समाजीकरण की पहली पाठशाला कहा गया है। इसका तात्पर्य

प्रभाव के दो कारण है-

यह है कि बालक के व्यक्तित्व के विकास में परिवार का प्रभाव सबसे अधिक पड़ता है। परिवार के क्रियात्मक

(a) परिवार के सदस्यों के व्यवहारों में दिखावटीपन नहीं रहता।

हैं।

(b) परिवार के सदस्य व्यक्तिगत स्वार्थों की ओर ध्यान न देकर सामूहिक स्वार्थों की ओर ध्यान देते

(4) सीमित आकार (Limited Size) परिवार प्राणिशास्त्रीय दशाओं पर आधारित होते हैं। इसलिए परिवार का सदस्य सिर्फ वही व्यक्ति हो सकता है

(a) जिसने परिवार में जन्म लिया हो।

(b) जिसने उस परिवार के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये हों।

(c) जो अन्य सामाजिक सम्बन्धों या रक्त सम्बन्धों के माध्यम से परिवार से जुड़े हुए हों।इन सबके अतिरिक्त यदि हम अन्य समाजों से परिवारों की तुलना करें, तो ऐसा प्रतीत होता है कि इसका समाजशास्त्र बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर-1 आकार अत्यन्त ही सीमित और छोटा होता है।

(5) सामाजिक ढाँचे में केन्द्रीय स्थिति (Nuclear Position of the Social Structure) - यूनान के प्रसिद्‌ध दार्शनिक अरस्तू के अनुसार समुदाय परिवारों का एक यन्त्र मात्र है। सामाजिक ढाँचे का निर्माण अनेक छोटी-बड़ी संस्थाओं के माध्यम से होता है। ये सभी संस्थाएँ समाज के ढाँचे में भिन्न-भिन्न स्थानों पर स्थायी रहती हैं। परिवार भी इसी प्रकार की एक सामाजिक संस्था है, किन्तु इस सामाजिक संस्था की मौलिक विशेषता यह है कि इसकी स्थिति सामाजिक ढाँचे में हैं।

यही कारण है कि अन्य संस्थाओं की तुलना में परिवार का महत्व सबसे अधिक है।

(6) सदस्यों का उत्तरदायित्व (Responsibility of Members) परिवार के संगठन का आधार कानून न होकर मानवीय भावना और मूल प्रवृत्तियाँ होती हैं। यही कारण है कि व्यक्ति पारस्परिक सहायता और सुरक्षा से प्रेरित रहते हैं। परिवार के सदस्यों में व्यक्तिवाद की भावना नहीं पायी जाती। इसका परिणाम यह होता है कि सदस्य व्यक्तिगत स्वार्थों से परे होकर सामूहिक स्वार्थ का अनुसरण करते हैं। भावनाओं के आधार पर परिवार का निर्माण होने के कारण इसके सदस्यों का उत्तरदायित्व असीमित रहता है।

(7) सामाजिक विधान (Social Regulations) सामाजिक नियन्त्रण परिवार की मौलिक इकाई है। प्रत्येक समाज में सामाजिक कल्याण को ध्यान में रखकर विशिष्ट प्रकार के नियमों का निर्माण किया जाता है। इसी प्रकार के नियम में भी होते हैं। परिवार में नियन्त्रण का यह आधार कानून पर आधारित न होकर मानवीय नियन्त्रण पर आधारित होता है। प्रत्येक परिवार में पारिवारिक निषेध पाये जाते हैं और प्रत्येक सदस्य इन निषेधों का पालन करता है। इस प्रकार परिवार में नियन्त्रण बना रहता है।

(8) परिवार की स्थायी एवं अस्थायी प्रकृति (Permanent and Temporary Nature) -

परिवार के दो स्वरूप हैं-पहला स्वरूप संस्था के रूप में, जबकि दूसरा स्वरूप समिति के रूप में है। समिति के रूप में परिवार पति-पत्नी तथा बच्चों तथा अन्य सदस्यों का समूह है। इस अवस्था में परिवार अस्थायी है। विवाह-विच्छेद जन्म और मृत्यु के कारण होता रहता है, यह परिवार का सीमित रूप है। संस्था के रूप में परिवार नियमों और कार्य-प्रणालियों का समूह है। व्यक्तियों के बदलने के बावजूद भी परिवार के नियम सदैव स्थायी रहते हैं। इस प्रकार संस्था के रूप में परिवार स्थायी हैं, जबकि समिति के रूप में परिवार अस्थायी हैं। इसलिए परिवार की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए कहा जाता है कि परिवार स्थायी भी है और अस्थायी भी।

मैकाइवर और पेज के द्वारा बतलायी हुई उपर्युक्त विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि परिवार -

(1) मानव की मूलभूत यौन सम्बन्धी इच्छाओं की पूर्ति के लिये निर्मित हुआ है।

(2) मानव की यौन सम्बन्धी इच्छाओं को व्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने के लिये विवाह नामक संस्था का विकास हुआ। विवाह की यह संस्था भी समाजों में किसी-न-किसी रूप में अवश्य पायी जाती है।

(3) विवाह के बाद वंश-नाम परिवार की तीसरी मौलिक विशेषता है। प्रत्येक परिवार में उत्तराधिकार की एक व्यवस्था होती है।

वंश-नाम की दृष्टि से परिवार दो प्रकार के हैं-

(a) मातृवंशीय परिवार। (b) पुत्रवंशीय परिवार।

(4) विवाह के परिणामस्वरूप माँ की असहाय अवस्था में परिवार के लिए अर्थव्यवस्था को अनिवार्य बना दिया। प्रत्येक परिवार में पालन-पोषण के लिए एक निश्चित आर्थिक व्यवस्था पायी जाती है।

(5) प्रत्येक परिवार का एक सामान्य निवास स्थान होता है, इस निवास स्थान को परिवार के सदस्य अपना घर कहकर सम्बोधित करते हैं।

11.4 परिवार की उत्पत्ति के सिद्धान्त (Theories of Origin of Family)

प्रसिद्ध समाजशास्त्री हरबर्ट स्पेन्सर ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है कि समाज का उद्विकास हुआ है। यह उविकास सरल से जटिल की ओर हुआ है। समाज में जितनी भी संस्थाएँ और संगठन हैं, वे

99समाजशास्त्र : बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर

सभी सामाजिक उविकास के परिणाम हैं। परिवार भी एक सामाजिक संस्था है। अतः इसका भी उद्विकास होना स्वाभाविक है।

परिवार की उत्पत्ति के सम्बन्ध में समाजशास्त्रियों, मानवशास्त्रियों, और राजनीतिज्ञों में विवाद है। किसी भी संस्था का उद्भव सदैव ही अस्पष्ट और अनिश्चित होता है। परिवार किस तरह विकसित हुआ? इस सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से अपने विचारों का प्रतिपादन किया है। परिवार की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जो प्रमुख सिद्धान्त हैं, उन्हें निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) शास्त्रीय सिद्धान्त (Classical Theory) परिवार की उत्पत्ति के सिद्धान्त की व्याख्या करने

वाला शास्त्रीय सिद्धान्त सबसे प्राचीन है। इस सिद्धान्त के प्रवर्तकों में यूनान के प्रमुख दार्शनिक प्लेटों और अरस्तू का नाम मुख्य है। इन विद्वानों के अनुसार परिवार की उत्पत्ति पुरुष की शक्ति के परिणाम से हुई है। आदिकाल में परिवार पुत्र सत्तात्मक, पुत्रवंशीय और पुत्र स्थानीय होते थे। इन विचारकों का कहना है कि शक्ति के परिणामस्वरूप पुरुष का स्त्री पर पूर्ण अधिकार होता था और यही कारण है कि परिवारों का जन्म हुआ।

इन विचारकों के अनुसार अठारहवीं शताब्दी तक पुरुष की पूर्ण सत्ता के कारण इस प्रकार के परिवार स्थायी रहे, बाद में अन्य परिवर्तनों से परिवार के स्वरूप में परिवर्तन प्रारम्भ हो गये, इसके साथ ही अनेक सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप पुरुष की शक्ति का ह्रास होने लगा और अन्य प्रकार के परिवारों का जन्म हुआ। प्रसिद्ध मानवशास्त्री मार्गन ने भी इन्हीं तथ्यों का समर्थन किया है।

(2) यौन साम्यवाद का सिद्धान्त (The Theory of Sex Communism) परिवार की उत्पत्ति

के सम्बन्ध में यह दूसरा महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। इसे यौन साम्यवाद के सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है। इस सिद्धान्त की मूल आत्मा यह है कि परिवारों का जन्म समाज में प्रचलित यौन साम्यवाद के कारण हुआ है। इस सिद्धान्त के समर्थकों में मार्गन, लूबाक, फेजर और बीफाल प्रमुख हैं।

इन विद्वानों के अनुसार अत्यन्त प्राचीनकाल में न तो परिवार का अस्तित्त्व था और न ही विवाह का। मनुष्य जानवरों की भाँति अनियमित यौन सम्बन्ध

स्थापित करते थे। उस समय न कोई किसी का पति होता था, न ही पत्नी। मार्गन ने आदिवासियों के त्यौहारों और सामाजिक उत्सवों के समय का कुछ ऐसा उदाहरण दिया है, जिससे इस बात की पुष्टि होती है कि स्वियों को किसी भी पुरुष के साथ यौन सम्बन्ध स्थापित करने की पूरी छूट होती थी, आज भी अनेक समाजों में विवाह से पूर्व यौन-सम्बन्ध की स्वतन्त्रता है। मध्य आस्ट्रेलिया के अनेक आदिवासी यौन सम्बन्धों की स्वतन्त्रता के कारण अपने पिता को नहीं जान पाते हैं।

यौन साम्यवाद को इस परम्परा के परिणामस्वरूप अनेक प्रकार की समस्याओं का जन्म हुआ। इन समस्याओं से छुटकारा पाने के लिये मानव-समाज ने परिवार नामक संस्था को विकसित किया।

(3) उद्विकासवादी सिद्धान्त (Evolutionary Theory) परिवार की उत्पत्ति का तीसरा महत्वपूर्ण सिद्धान्त उद्विकासवादी सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है। इस सिद्धान्त की मूल आत्मा यह है कि परिवारों का अन्य संस्थाओं की भाँति उविकास हुआ है। इस सिद्धान्त के प्रमुख समर्थकों में स्पेन्सर, टेलर, मार्गन और बैक्रोफन प्रमुख हैं। इन विचारकों के अनुसार परिवार की उत्पत्ति किसी भी एक निश्चित समय में नहीं हुई है, बल्कि परिवार का देश या काल के अनुसार क्रमिक विकास हुआ है। बैक्रोफन के अनुसार परिवार की उत्पत्ति किसी समझौते के अधीन नहीं हुई है, बल्कि इसका विकास कुछ स्तरों से होकर हुआ है। बैक्रोफन ने परिवार के विकास के स्तरों को मुख्य रूप से चार भागों में बाँटा है-

(a) प्रथम अवस्था (First Stage) परिवार के विकास की प्रारम्भिक अवस्था स्त्री और पुरुषों के बीच पशुओं की भाँति यौन साम्यवाद था। जो कुछ भी पारिवारिक यौन सम्बन्ध के चिन्ह थे वे अत्यन्त ही शिथिल थे। इस अवस्था में बालक का सम्बन्ध माँ से होता था, पिता के बारे में उसे किसी प्रकार की जानकारी नहीं रहती थी।

(b) द्वितीय अवस्था (Second Stage) बैक्रोफन के अनुसार समाज और परिवार का निरन्तर विकास होता गया। इस विकास के परिणामस्वरूप जीवन-संघर्षों की मात्रा में वृद्धि होने लगी। आर्थिक कठिनाइयों के परिणामस्वरूप

समाज में बहुपत्ति-विवाह का प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार बैक्रोफन के दूसरी अवस्था में बहुपली विवाह परिवार का जन्म हुआ। nh

(c) तृतीय अवस्था (Third Stage) बैक्रोफन के अनुसार परिवारों के उद्विकास की तीसरी अवस्था तब से प्रारम्भ होती है, जब मानव-समाज ने व्यवसाय के रूप में कृषि का सूत्रपात्र किया है। कृषि के

100प्रारम्भ हो जाने से मानव-समाजों की जीविका सरल हो गयी। साथ ही कृषि-कार्यों में स्त्रियों का महत्व बढ़ने समाजशास्त्र बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर-लगा, बच्चों की संख्या में वृद्धि हुई। इन सबका परिणाम यह हुआ कि पुरुष एक से अधिक स्त्रियों से विवाह करने लगा। इस प्रकार तीसरी अवस्था में बहुपत्नी विवाही-परिवारों की स्थापना हुई।

(d) चतुर्थ अवस्था (Fourth Stage) उद्दिद्वकास की परम्पराओं के साथ ही मानव-मस्तिष्क में नैतिक विचारों का जन्म हुआ है। इस नैतिकता के परिणामस्वरूप विवाह को एक व्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने का प्रयास किया जाने लगा। साथ ही, स्वियों के अधिकारों में भी वृद्धि हुई। इन सबका परिणाम यह हुआ कि आधुनिक परिवार जिसे हम एक-विवाही-परिवार कहते हैं, का जन्म हुआ।

बैक्रोफन के विचारों से प्रभावित होकर मार्गन ने परिवार के उद्विकास की निम्न पाँच अवस्थाएँ बतलायी

(i) रक्त सम्बन्धी परिवार (Consanguine Family) परिवार के उद्विकास की पहली अवस्था रक्त-सम्बन्धी परिवारों की थी। परिवार में एक ही रक्त से सम्बन्धित व्यक्ति रहते थे और उसी परिवार के रक्त-सम्बन्धियों से विवाह करते थे। आज भी अनेक समाजों में रक्त-सम्बन्धी विवाह के उदाहरण मिलते हैं।

(ii) समूह विवाह (Penalaun Family) परिवारों के उद्विकास की दूसरी अवस्था समूह-विवाहों की है। समूह-विवाहों का जन्म तब हुआ जब रक्त सम्बन्धी विवाह को अनुचित समझा जाने लगा। विवाह के पहले स्वरूप में एक पुरुष अपने रक्त सम्बन्ध की एक स्त्री से विवाह करता था। इस अवस्था में आकर एक स्त्री और एक पुरुष का विवाह, एक समूह की स्त्रियों और दूसरे समूह के पुरुषों के रूप में

बदल गया। इस प्रकार एक समूह के सभी पुरुष दूसरे समूह की सभी स्त्रियों के साथ विवाह करने लगे। ये सभी स्त्री-पुरुष स्वतंत्र रूप से यौन सम्बन्ध स्थापित करते थे।

(iii) सिण्डेस्मियन परिवार (Syndasmian Family) मार्गन ने सिण्डेस्मियन परिवार को पारिवारिक उद्विकास की तीसरी अवस्था बतलाया है। इस अवस्था में आकर समूह-विवाह एक विवाह के रूप में बदल गया। एक पुरुष एक ही स्त्री से विवाह करने लगे। इन परिवारों की मौलिक विशेषता यह थी कि विवाह के बाद एक परिवार में आने वाली स्त्रियों से कोई भी पुरुष यौन सम्बन्ध स्थापित करने के लिए स्वतन्त्र रहता था। समूह-विवाह में पिता की स्थिति अस्पष्ट रहती थी। सिण्डेस्मियन परिवार में पिता की स्थिति स्पष्ट हो गयी।

(iv) पितृसत्तात्मक परिवार (Patriarchal Family) इन परिवारों का जन्म पिता की सत्ता के परिणामस्वरूप हुआ। परिवार में पुरुष की सत्ता को स्वीकार किया गया। इसके साथ पुरुष को अपनी इच्छानुसार अधिकार प्रदान किया गया। इस अधिकार के परिणामस्वरूप पुत्र-सत्तात्मक परिवार का जन्म हुआ और अन्त में एक विवाही-परिवार अन्तिम अवस्था में एक पुरुष एक ही स्त्री से विवाह करने लगा और इस प्रकार आधुनिक एक-विवाही-परिवार का जन्म हुआ।

(v) मातृसत्तात्मक सिद्धान्त (Matriarchal Theory) इस सिद्धान्त के प्रमुख समर्थक बैक्रोफन

और ब्रिगफाल्ट हैं। इस सिद्धान्त की मूल आत्मा यह है कि परिवारों का जन्म माता की सत्ता के कारण हुआ है। बिगफाल्ट ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है कि विकास की प्रारम्भिक अवस्था में बच्चे अपने पिता के प्रति जानकारी नहीं रखते थे। इसे वह पैतृक अज्ञानता के नाम से सम्बोधित करता है। समाज में बच्चें को पिता का ज्ञान न होने से माता की सत्ता ही प्रधान होती थी, इसलिए परिवार मातृ-स्थानीय और मातृवंशीय हुआ करते थे, परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ ही माता की सत्ता का ह्रास होने लगा।

(vi) एक-विवाही सिद्धान्त (The Theory of Monogamy) इस सिद्धान्त के प्रमुख समर्थक वेस्टरमार्क हैं। इन्होंने अपनी पुस्तक में लिखा है कि परिवारों की उत्पत्ति एक-विवाह के परिणामस्वरूप हुई है। एक-विवाही परिवार वह है जहाँ पर एक पुरुष एक स्वी से विवाह करता है। वेस्टरमार्क ने एक ही स्वी से विवाह करने के कारण बतलाये हैं -

(अ) स्वी की तुलना में पुरुष शक्तिशाली होने के कारण उस पर अधिकार रखता है।

(ब) साथ ही, पुरुष में ईर्ष्या की भावना होती है। इन दोनों कारणों से एक विवाह परिवारों का जन्म

हुआ, जो आज भी है।

11.5 परिवार के प्रकार (Types of Family)

परिवार सार्वभौमिक संस्था है, किन्तु देश, काल की परिस्थितियों के अनुसार परिवार के स्वरूपों में भिन्नता पायी जाती है। किन्हीं समाजों में मातृसत्तात्मक परिवार पाये जाते हैं, तो किन्ही समाजों में पुत्रसत्तात्मक परिवार। इसके अतिरिक्त संयुक्त विस्तृत और व्यक्तिगत तथा अन्य अनेक प्रकार के परिवार भिन्न-भिन्न समाजों में पाये जाते हैं। परिवार के स्वरूपों में भिन्नताओं को देखते हुए समाजशास्त्रियों ने इसका वर्गीकरण करने का प्रयास किया। संक्षेप में परिवार के प्रमुख स्वरूपों को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(1) सदस्यों की संख्या और संगठन के आधार पर परिवार का पहला वर्गीकरण दो आधारों पर किया जाता है -

(a) सदस्यों की संख्या की दृष्टि से।

(b) परिवार के संगठन की दृष्टि से।

इन दोनों आधारों को सामने रखकर समाजशास्त्रियों ने परिवार को प्रमुख रूप से निम्न तीन भागों में

विभाजित किया है -

(i) व्यक्तिगत परिवार - यह परिवार का वह स्वरूप है, जिसमें पत्ति, पत्नी और उनके बच्चे सम्मिलित रहते हैं। व्यक्तिगत परिवार जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट होता है, एक व्यक्ति के परिवार को कहते हैं। आधुनिक सभ्यता और नगरीकरण के परिणामस्वरूप व्यक्तिगत परिवारों की संख्या में वृद्धि होती जा रही है।

(ii) विवाह सम्बन्धी परिवार विवाह सम्बन्धी परिवार को संक्षेप में दो परिवारों का मिलन कहा

जा सकता है। यूरोप और अन्य पश्चिमी देशों में इस प्रकार के परिवार पाये जाते हैं। विवाह सम्बन्धी परिवार जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट होता है, इस परिवार में विवाह-सम्बन्धों में बंधने वाले दोनों परिवारों के कुछ सदस्य सम्मिलित होते हैं।

(iii) संयुक्त परिवार संयुक्त परिवार कई परिवारों का मिला-जुला स्वरूप है। इसमें अनेक व्यक्तिगत परिवार सम्मिलित रहते हैं। भारतीय ग्रामीण जीवन में संयुक्त परिवारों के सबसे अधिक उदाहरण देखने को मिलते हैं। इन परिवारों में पति-पत्नी तथा उनके बच्चों के अतिरिक्त अनेक पीढ़ियों के सदस्य तथा सम्बन्ध सम्मिलित रहते हैं। संयुक्त परिवारों के साथ-ही-साथ आज इसका स्वरूप विस्तृत परिवार के रूप में बदलता जा रहा है।

(2) सत्ता, स्थान तथा वंश-परम्परा के आधार पर विद्वानों ने परिवारों का जो दूसरा वर्गीकरण किया है, उसके आधार पर मुख्य रूप से तीन तत्व सम्मिलित हैं -

(a) सत्ता या शक्ति का केन्द्रीकरण ।

(b) स्थान का महत्व ।

(c) वंश-परम्परा या वंश-नाम का आधार।

इन तीनों दृष्टिकोणों को सामने रखकर प्रमुख रूप से परिवारों को निम्न दो भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(i) मातृसत्तात्मक परिवार मातृसत्तात्मक परिवार जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है परिवार का वह स्वरूप है जिसमें परिवार की पूरी सत्ता माता या पत्नी के

हाथों में होती है। इन परिवारों की वंश परम्परा ही माता के नाम पर चलती है। सम्पत्ति का उत्तराधिकार माता से पुत्री को हस्तांतरित होता है। विवाह के उपरान्त पति को अपनी पत्नी के घर में रहना पड़ता है। संक्षेप में ये वे परिवार हैं जिनमें आर्थिक, सामाजिक धार्मिक राजनैतिक तथा अन्य प्रकार की सत्ता पति के हाथों में न रहकर पत्नी के हाथों में होती है। मातृसत्तात्मक समाज विकास की प्रारम्भिक अवस्था में भले ही रहे हों, आज ये अत्यन्त ही कम समाजों में देखने को मिलते हैं। भारतवर्ष में खासी, गारो, नायर और कदार आदि वन्य जातियों में इस प्रकार के परिवार पाये जाते हैं।

(ii) पितृसत्तात्मक परिवार आधुनिक युग में सभ्य कह जाने वाले सभी समाजों में पितृसत्तात्मक परिवार पाये जाते हैं। पितृसत्तात्मक परिवार मातृसत्तात्मक परिवारों की उल्टी स्थिति वाले होते हैं। इन परिवारों में वंश-परम्परा पुरुष के नाम से चलती है। विवाह के पश्चात् पत्नी को पति के घर में रहना पड़ता है। परिवार

की पूरी सत्ता पुरुष के हाथों में होती है। परिवार का उत्तराधिकारी भी पुरुष ही होता है। (3) विवाह के आधार पर विवाह के आधार पर सबसे पहले यह सिद्ध किया गया है कि परिवार

एक समिति भी है और एक संस्था भी। यह इस प्रकार की समिति है, जिसका निर्माण वैवाहिक बन्धनों के आधार पर होता है। प्रत्येक समाजों के वैवाहिक बन्धनों में भिन्न-भिन्न आधार होते हैं। जब विवाह भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं तो इसका परिणाम यह होगा कि परिवार भी भिन्न-भिन्न प्रकार के होंगे। इसी दृष्टि को सामने रखकर विवाह के आधार पर परिवारों को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

102(i) एक-विवाही-परिवार जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है इस प्रकार के परिवारों में पुरुष को केवल समाजशास्त्र : बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर-1 एक स्त्री से विवाह करने का अधिकार प्रदान किया जाता है। यदि हम सामाजिक उद्विकास का अवलोकन करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार के परिवार आधुनिक सभ्यता के परिणाम हैं। वर्तमान समाज अत्यधिक जटिल और तनावपूर्ण होता जा रहा है। इस तनाव और जटिलता से मुक्ति पाने के लिए

इसे एक साधन के रूप में चुना जा रहा है। एक-विवाही-परिवार को साधन के रूप में चुना जा रहा है।

(ii) बहु-विवाही परिवार - ये वे परिवार हैं जिनमें पुरुष या स्त्री एक से अधिक स्वियों या पुरुषों के साथ विवाह करते हैं। बहु-विवाही परिवारों को निम्न दो भागों में बाँटा जा सकता है -

(a) बहुपति-विवाही परिवार वे परिवार है जिनमें परिवार की एक स्वी का विवाह अनेक पुरुषों के साथ होता हैं। इन परिवारों में माता की प्रधानता होती है। इसके साथ-ही-साथ ये परिवार मातृवंशीय और मातृस्थानीय भी होते हैं। इस प्रकार के विवाह का मुख्य कारण विषम आर्थिक परिस्थितियाँ हैं। बहुपति विवाह के प्रमुख दो प्रकार हैं-

(i) भ्राता सम्बन्धी बहुपति-विवाही परिवार भाई होते हैं। इसमें एक पत्नी के जो अनेक पति होते हैं, वे सभी

(ii) अभ्राता सम्बन्धी बहुपति-विवाही परिवार इन परिवारों में एक पत्नी के अनेक पतियों का भाई होना अनिवार्य नहीं है। देहरादून के जोनसारबावर जाति और मालाबार के नायक जाति तथा टोडा जातियों में इस प्रकार के विवाह पाये जाते हैं।

(b) बहुपत्नी-विवाही परिवार बहुपली-विवाह, विवाह का वह स्वरूप है, जिससे एक पुरुष अनेक पलियों से विवाह करता है। इस प्रकार के परिवार पितृसत्तात्मक, स्थानीय और पितृवंशीय होते हैं। भारतवर्ष में इस प्रकार के परिवारों के अनेक उदाहरण मिलते हैं।

(3) माध्यमिक संबोधन नातेदारी की अभिव्यक्ति किसी माध्यम से होती है। भारत में स्वियाँ अपने पति का नाम नहीं लेतीं। वे अपने पति को पुत्र या पुत्री के माध्यम से पुकारती हैं, जैसे बंटी के पापा आदि। इस संबंध में लॉबी का मत है कि माध्यमिक सम्बोधन की रीति पुरुषों के लिए ही नहीं स्त्रियों के लिए भी क्यों प्रयोग में लायी जाती है, इसकी व्याख्या टायलर के मातृसत्तात्मक परिवार सिद्धांत के आधार पर संभव नहीं। पितृसत्तात्मक और पितृस्थानीय समाजों में भी माध्यमिक सम्बोधन की रीति का प्रचलन पाया जाता है। भिन्न-भिन्न समाजों में भिन्न-भिन्न कारणों से इस रीति का प्रचलन हुआ। कुछ समाजों में

इसका कारण स्त्रियों की गिरी हुई स्थिति है (जैसे हिन्दुओं में), कुछ समाजों में पुरुषों की स्थिति नीची होने के कारण और कुछ समाजों में प्रत्येक प्रकार के संबंधों के लिये पृथक् पृथक् शब्दों या संज्ञाओं के कारण (जैसे छोटी जन-जाति में) इस रीति का प्रचलन हआ है।

(4) मातुलये इस प्रकार के संबंधों में मामा, भानजे, भानजी के संबंध होते हैं। मातृ-सत्तात्मक परिवारों में पिता से अधिक सम्मान मामा का होता है और मामा अपनी सम्पत्ति का उत्तराधिकार भानजे को देता है।

(5) पितृश्वलेय- इस प्रकार के संबंधों में बुआ का अधिक महत्व होता है। हिन्दुओं में अनेक ऐसे संस्कार होते हैं, जिन्हें बुआ सम्पन्न कराती है।

(6) सह प्रसविता- इस प्रकार के संबंधों का आधार सहानुभूति है। पत्नी प्रसव के समय कष्ट भोगती है। अतः इसके अनुसार पति के लिये भी प्रसव कष्ट की अनुभूति आवश्यक हो जाती है। वह पत्नी के समान ही व्यवहार, खान-पान तथा सूतक में रहता है।

अतः स्पष्ट है कि नातेदारी व्यवस्था समाज को संगठित, नियमित तथा व्यवस्थित रखने की सशक्त प्रथा है।

11.6 नातेदारी [KINSHIP]

सामाजिक मानवशास्त्र के अन्तर्गत नातेदारी शब्द अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। इसी की सहायता से समाज के समस्त प्राणियों के बीच स्थापित सम्बन्धों की विवेचना की जाती है। वैसे तो सामाजिक प्राणी समाज में रहने के कारण अनेक प्रकार के सूत्रों से आबद्ध होते हैं, किन्तु इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण वे सम्बन्ध होते हैं जो रक्त या खून (blood) की आधारशिला पर कायम होते हैं। रक्त ही वह आधार है जिसकी सहायता से व्यक्ति अपने और पराये के बीच भेद स्थापित करता है।

नातेदारी की परिभाषा

(Definition of Kinship)

विभिन्न समाजशास्त्रियों और मानवशास्त्रियों ने नातेदारी की जो परिभाषाएँ दी हैं, वे इस प्रकार है-

(1) मजूमदार और मदन "सभी समाजों में मनुष्य विभिन्न प्रकार के बन्धनों से समूह में बंधे हुए होते हैं। इन बन्धनों में सबसे अधिक सार्वभौम और सबसे अधिक मौलिक वह बन्धन है, जो कि सन्तानोत्पत्ति पर आधारित है, जो कि आन्तरिक मानव प्रेरणा है, यही नातेदारी कहलाता है।"

(2) चार्ल्स विनिक "नातेदारी व्यवस्था कल्पित तथा यथार्थ आनुवांशिक बन्धनों पर आधारित समाज-स्वीकृत समस्त सम्बन्धों को सम्मिलित कर सकता है।"

(3) "लेवी स्ट्रास" "नातेदारी प्रणाली वंश अथवा रक्त संबंधी कर्म विषयक सूत्रों से निर्मित नहीं होती, जो कि व्यक्ति को मिलाती है, यह मानव चेतना में विद्‌यमान रहती है, यह विचारों की निरंकुश प्रणाली है, कलकर वास्तविक परिस्थिति का स्वतः विकास नहीं है।"

संक्षेप में "नातेदारी समाज में पायी जाने वाली सामाजिक सम्बन्धों की वह स्वीकृत व्यवस्था है जो या तो यथार्थ वंशानुगत सम्बन्धों पर आधारित हो या कल्पित पूर्वजों पर।"

इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि नातेदारी में निम्न तत्वों का पाया जाना आवश्यक है-

(1) मनुष्य का सम्बन्ध अनेक व्यक्तियों से होता है।

(2) यह सम्बन्ध रक्त सम्बन्धों के आधार पर होता है।

(3) इस सम्बन्ध में सामाजिक व्यवहारों के दर्शन होते हैं।

(4) नातेदारी के सभी संबंध सामाजिक अन्तःक्रियाओं पर आधारित होते हैं।

(5) इन सम्बन्धों में घनिष्ठता, आत्मीयता, मान्यता पायी जाती है।

नातेदारी के प्रकार

(Types of Kinship)

फर्थ ने लिखा है कि "यह एक छड़ है, जिसके सहारे प्रत्येक व्यक्ति जीवन भर रहता है। 1 प्रत्येक समाज की दो मूलभूत आवश्यकताएँ होती हैं-विवाह और रक्त सम्बन्ध। इन्हीं आधारों पर नातेदारी की भी निम्नलिखित दो भागों में विभाजित किया जाता है -

(i) रक्त सम्बन्धी नातेदारी (Consanguineous Kinship) यह नातेदारी व्यवस्था का वह प्रकार है, जो रक्त सम्बन्धों पर आधारित होता है। इसमें प्राणिशास्त्रीय रक्त सम्बन्धी और गोद लिये हुए दोनों ही प्रकार के सम्मिलित किये जाते हैं। अनेक जनजातियों में जहाँ पिता का कोई निश्चय नहीं होता है, ऐसी स्थिति में भी बालक और पिता के बीच नातेदारी इस आधार पर मानी जाती है कि वह व्यक्ति सामाजिक संस्कारों द्वारा बालक का पिता बन जाता है।

(ii) विवाह सम्बन्धी नातेदारी (Affinal Kinship) पक्षों के अनेक व्यक्ति सामाजिक सम्बन्धों में आबद्ध हो जाते हैं। विवाह बन्धनों के कारण नातेदार बन जाते हैं। पति और पत्नी में विवाह के कारण दोनों ये सभी व्यक्ति एक स्त्री और एक पुरुष के विवाह सम्बन्ध के कारण नातेदार बन जाते हैं।

11.7 नातेदारी की श्रेणियाँ(Categories of Kinship)

श्रेणियों का तात्पर्य सम्बन्ध के उन अंशों से है, जिनके द्वारा नातेदारी व्यवस्था में सभी व्यवस्था व्यक्ति आबद्ध होते हैं। दूसरे शब्दों में इसे नातेदारी का विस्तार कहकर भी सम्बोधित किया जा सकता है। संक्षेप में नातेदारी व्यवस्था के अन्तर्गत निम्नलिखित तीन प्रकार की श्रेणियाँ पायी जाती है -

(i) प्राथमिक नातेदारी (Primary Kinship) इस श्रेणी के अन्तर्गत वे व्यक्ति आते हैं, जो प्रत्यक्ष सम्बन्धों के आधार पर आबद्ध होते हैं। उदाहरण के लिए माता-पिता और बच्चे, पति-पत्नी आदि जो परस्पर

रूप से एक-दूसरे से सम्बन्धित होते हैं।

. (ii) द्वैतीयक नातेदारी (Secondary Kinship) इसके अन्तर्गत वे नातेदार आते हैं, जो व्यक्ति के प्राथमिक श्रेणी के सम्बन्धों द्वारा सम्बन्धित होते हैं।

इससे व्यक्ति का प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता, किन्तु वे प्रथम श्रेणी के सम्बन्धों से सम्बन्धित होते हैं। इसके अन्तर्गत विमाता और साले-सालियाँ आदि आते हैं।

(iii) त्रैतीयक नातेदारी (Tertiary Kinship) इसके अन्तर्गत द्वैतीयक श्रेणी के सम्बन्धियों से प्राथमिक रिश्तेदार आते हैं। इस व्यवस्था के कारण विशिष्ट प्रकार के व्यवहार प्रतिमानों का निर्धारण होता है। इसके अन्तर्गत सरहज, देवरानी आदि आते हैं।

नातेदारी की नीतियाँ

नातेदारी मानव व्यवहार तथा व्यवस्था की अभिव्यक्ति है। नातेदारी से ही व्यवहार के प्रतिमान निर्धारित होते हैं। पति-पत्नी के व्यवहार प्रतिमान अलग होते हैं और माता-पिता के अलग। कुछ नातेदारियों का आधार आदर तथा सम्मान होता है तो कुछ का प्रेम, कुछ का वात्सल्य। कुछ सम्बन्धों में परिहास भी निहित होता है। अतः नातेदारी की रीतियाँ इस प्रकार हैं-

(1) परिहर नातेदारी में कुछ परम्पराएँ ऐसी बन जाती है कि उनकी उपेक्षा तथा बहिष्कार किया जाता है। इस प्रकार की नातेदारियों में एक दूरी बनी रहती है। माता-पिता, पुत्र-पुत्री तथा वधू में यह दूरी बनी रहती है। आज भी गाँवों में प्रथा है कि बहू सास-ससुर, जेठ आदि के समक्ष पर्दा करती है। जेठ, ससुर आदि घर में खांसते हुए घुसते हैं, जिससे पर्दा करने वाली स्त्रियाँ ओट में हो जायें। स्त्रियाँ पति, ससुर आदि के नाम का उच्चारण नहीं करतीं। इन सभी सास-ससुर सम्बन्धों को निषेधों के अन्तर्गत रखा जाता है।

इन परिहर संचालकों का मुख्य उद्देश्य सामाजिक नियन्त्रण है। रैड क्लिफ ब्राउन के अनुसार "नातेदारी में कुछ ऐसे सम्बन्धी भी होते हैं जिनसे अधिक घनिष्ठता परिवार के अन्य सदस्यों में द्वेष या ईर्ष्या उत्पन्न कर सकती है।"

(2) परिहास सम्बन्धी परिहास सम्बन्धों का आधार निकटता है। इस प्रकार के सम्बन्ध दो व्यक्तियों को निकट लाते हैं। रैड क्लिफ ब्राउन के अनुसार "परिहास सम्बन्ध दो व्यक्तियों का सम्बन्ध है। इसमें प्रथा द्वारा एक पक्ष को यह छूट रहती है और कभी-कभी उससे यह माँग की जाती है कि वह दूसरे पक्ष को तंग करे, छेड़े या उससे हँसी-मजाक करे पर दूसरा पक्ष इसका कुछ भी बुरा न माने।" भारतीय समाज में देवर-भाभी,जीजा-साला, साली, बहनोई, सरहज आदि

परिहास सम्बन्ध हैं और यह मौका पड़ने पर मजाक द्वारा एक-दूसरे को मनोरंजन करने का प्रयत्न करते हैं। विवाहोत्सव, त्यौहार आदि पर ये परिहास सम्बन्ध अधिक मुखरित हो जाते हैं। रैड क्लिफ ब्राउन के अनुसार "परिहास सम्बन्धों का एक प्रतीकात्मक अर्थ होता है और वह यह है कि इस सम्बन्ध से सम्बन्धित व्यक्ति हँसी-मजाक और यहाँ तक कि मारपीट के माध्यम से एक-दूसरे के प्रति मित्रता या प्रीति का प्रदर्शन करते हैं और पारिवारिक जीवन को सजीव बनाये रखने में इनके महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता जब तक कि इनका दुरुपयोग न किया जाये।"

(3) माध्यमिक संबोधन नावेदारी की अभिव्यक्ति किसी माध्यम से होती है। भारत में स्त्रियाँ अपने पति का नाम नहीं लेतीं। वे अपने पति को पुत्र या पुत्री के माध्यम से पुकारती हैं, जैसे बँटी के पापा आदि। इस सम्बन्ध में लॉवी का मत है कि-माध्यमिक सम्बोधन की रीति पुरुषों के लिए ही नहीं स्त्रियों के लिए भी क्यों प्रयोग में लायी जाती है, इसकी व्याख्या टायलर के मातृसत्तात्मक परिवार सिद्धान्त के आधार पर सम्भव नहीं। पितृसत्तात्मक और पितृस्थानीय समाजों में भी माध्यमिक सम्बोधन की रीति का प्रचलन पाया जाता है। भिन्न-भिन्न समाजों में भिन्न-भिन्न कारणों से इस रीति का प्रचलन हुआ। कुछ समाजों में इसका कारण स्वियों मे

की गिरी हुई स्थिति है (जैसे हिन्दुओं में), कुछ समाजों में पुरुषों की स्थिति नीची होने के कारण और कुछ समाजों में प्रत्येक प्रकार के सम्बन्धों के लिये पृथक-पृथक शब्दों या संज्ञाओं के कारण (जैसे छोटी जनजाति) इस रीति का प्रचलन हुआ है।

(4) मातुलेय इस प्रकार के सम्बन्धों में मामा, भानजे, भानजी के सम्बन्ध होते हैं। मातृ-सत्तात्मक परिवारों में पिता से अधिक सम्मान मामा का होता है और मामा अपनी सम्पत्ति का उत्तराधिकार भानजे को

देता है।

(5) पितृश्वलेय - इस प्रकार के सम्बन्धों में बुआ का अधिक महत्व होता है। हिन्दुओं में अनेक ऐसे संस्कार होते हैं, जिन्हें बुआ सम्पन्न कराती है।

(6) सह प्रसविता इस प्रकार के सम्बन्धों का आधार सहानुभूति है। पत्नी प्रसव के समय कष्ट भोगती है। अतः इसके अनुसार पति के लिए भी प्रसव कष्ट की अनुभूति आवश्यक हो जाती है। वह पत्नी के समान ही व्यवहार, खान पान तथा सूतक में रहता है।

अतः स्पष्ट है कि नातेदारी व्यवस्था समाज को संगठित, नियमित तथा व्यवस्थित रखने की सशक्त प्रथा है

स्वप्रगति परीक्षण

1. "परिवारों का जन्म समाज में प्रचलित यौन साम्यवाद के कारण हुआ है।" यह अवधारणा किस सिद्धान्त

की मूल आत्मा है-

(अ) उद्विकासवादी सिद्धान्त की, (ब) यौन साम्यवाद के सिद्धान्त की,

(स) विकासवादी सिद्धान्त की, (द) आर्थिक सिद्धान्त की।

2. यौन साम्यवाद के सिद्धान्त के समर्थकों में निम्न में से कौन प्रमुख हैं-

(अ) मार्गन एवं फेजर, (ब) प्लेटो और अरस्तू,

(स) ऑगबर्न एवं निमकॉफ (द) बर्गेस एवं लाक।

3. उविकास सिद्धान्त के प्रमुख समर्थकों में से कौन नहीं है-

(अ) स्पेन्सर, (ब) मार्गन एवंटेलर,

(स) अरस्तू एवं प्लेटो, (द) बैक्रोफन ।

4. परिवार के उद्विकास की पाँच अवस्थाएँ (i) रक्त संबंध परिवार, (ii) समूह विवाह, (iii) सिण्डेस्मियन परिवार, (iv) पितृसत्तात्मक परिवार, (v) मातृसत्तात्मक परिवार का उल्लेख निम्न में से किस समाजशास्त्री ने किया है-

(अ) टायलर ने, (ब) बैक्रोफन ने,

(स) मार्गन ने, (द) बिफास्ट ने ।

5. परिवार की उत्पत्ति मातृसत्तात्मक सिद्धान्त का प्रतिपादन निम्न में से किस समाजशास्वी ने किया है-

(अ) बैक्रोफन एवं बिफाल्ट से, (ब) क्लेयर ने,(

(स) वेस्टरमार्क एवं टेलर ने, द) ऑगबर्न एवं निमकॉफ ने ।

6. विमाता, साले-सालियाँ आदि के संबंध किस नातेदारी के अन्तर्गत आते हैं?

(अ) प्राथमिक नातेदारी,

(ब) द्वितीयक नातेदारी,

(स) तृतीयक नातेदारी,

(द) विवाह संबंधी नातेदारी ।

7. सरहज, देवरानी आदि के संबंध निम्न में से किस-किस नातेदारी के अन्तर्गत आते हैं-

(अ) प्राथमिक नातेदारी,

(ब) तृतीयक नातेदारी,

(स) द्वितीयक नातेदारी,

(द) रक्त संबंधी नातेदारी ।

11.8 सारांश

परिवार और नातेदारी समाजशास्त्र में महत्वपूर्ण इकाइयाँ हैं जो समाज के आधारभूत ढाँचे को निर्मित करती हैं। परिवार एक प्राथमिक सामाजिक समूह है जिसमें पति-पत्नी, माता-पिता, बच्चे, और कभी-कभी विस्तारित रिश्तेदार शामिल होते हैं। यह भावनात्मक, आर्थिक और सामाजिक समर्थन का केंद्र होता है। दूसरी ओर, नातेदारी रक्त संबंध, विवाह, या दत्तक संबंधों से उत्पन्न सामाजिक संबंधों का नेटवर्क है। यह व्यक्ति को एक व्यापक सामाजिक पहचान और सुरक्षा प्रदान करता है। नातेदारी के नियम और संरचनाएँ विभिन्न समाजों में भिन्न होती हैं, लेकिन ये समाज के सांस्कृतिक और आर्थिक कार्यों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। परिवार और नातेदारी एक दूसरे के पूरक हैं और सामाजिक एकता, परंपराओं के संरक्षण, और संसाधनों के वितरण में योगदान करते हैं।

11.9 मुख्य शब्द

1. रिहार: किसी दोष या कठिनाई को दूर करने का उपाय।

2. अलौकिक शक्ति: सामान्य मानव क्षमताओं से परे दिव्य या असाधारण शक्ति।

3. सिन्डेंसियमम: पौधों की कली या पुष्पक्रम का विशेष प्रकार (वनस्पति विज्ञान में)।

4. मातुलय: मामा (मां का भाई) से संबंधित।

5. सह प्रसविता: एक साथ जन्म देने वाली (समान समय में जन्म)।

11.10 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर:

(1) ब (2) अ (3) स (4) ब (5) अ (6) ब (7) ब

11.11 संदर्भ ग्रन्थ

1. गोइड, जे. पी. (1959) - Kinship and Social Organization.

2. फोर्ट्स, मेयर (1970) - Time and Social Structure and Other Essays.

3. मैकलिन, जी. सी. (1992) - Family and Kinship in India.

4. सत्यमूर्ति, सी. (1985) - The Family and Social Change in Indian Society.

5. श्रीनिवास, एम. एन. (1962) - Caste in Modern India and Other Essays.

11.10 अभ्यास प्रश्न

1. परिवार की व्याख्या कीजिये। इसकी प्रमुख विशेषताएँ लिखिये ।

Define family. Write its characteristics.

2. परिवार की उत्पत्ति के प्रमुख सिद्धान्तों की विवेचना कीजिये ।

Discuss the main theories of origin of family.

3. परिवार की उत्पत्ति के उद्विकासवादी सिद्धान्त का समझाइये ।

Discuss the evolutionary theory of origin of family.

4.परिवार के कार्यों की विवेचना कीजिये।

Discuss the functions of family.

5. 'परिवार उस समूह का नाम है, जिसमें स्वी-पुरुष का यौन संबंध पर्याप्त निश्चित हो, और इनका साथ इतनी देर तक रहे जिससे संतान उत्पन्न हो जाये और उसका पालन-पोषण भी किया जाये।' आलोचना सहित व्याख्या कीजिये ।

'The family is a group defined by a sex relationship precise and enduring to provide for the procreation and upbringing of children.' Discuss critically.

6.परिवार को परिभाषित कीजिये। इनके संगठन में निहित सिद्धान्तों की विवेचना कीजिये । Define family. Discuss the basic principles underlying its organization.

(ब) लघुउत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. परिवार के अर्थ को स्पष्ट लिखो ।

2. परिवार की कोई तीन परिभाषा लिखो।

3. मैकाइवर और पेज ने परिवार की कितनी विशेषताएँ बतलायी हैं?

4. परिवार की पाँच प्रमुख विशेषताएँ लिखो ।

5. परिवार की उत्पत्ति के प्रमुख सिद्धान्त कौन-कौन से हैं?

6. परिवार की उत्पत्ति के शास्त्रीय सिद्धान्त को 100 शब्दों में स्पष्ट करो।

Important Questions for Examinations) (

(अ) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay-Type Questions)

1.नातेदारी से आप क्या समझते हैं? इसकी सामान्य विशेषताओं की विवेचना कीजिये । What do you understand by Kinship. Discuss its general characteristics.

नातेदारी पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिये । Write short essay on Kinship.

नातेदारी की व्याख्या कीजिये। इसका समाजशास्त्रीय महत्व लिखिये ।

Define Kinship. Write its Sociological importance.

(ब) लघुउत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. नातेदारी को परिभाषित करो ।
2. नातेदारी के प्रकारों को समझाओ ।
3. नातेदारी की श्रेणियों को स्पष्ट करो।
4. नातेदारी पर संक्षिप्त नोट लिखो।
5. नातेदारी की प्रमुख विशेषताएँ लिखो।

इकाई -12

धर्म [RELIGION]

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 धर्म की परिभाषा (Definition of Religion)

12.4 धर्म के मौलिक लक्षण (Fundamental Characteristics of Religion)

12.5 धर्म का समाजशास्त्रीय महत्व(Sociological Significance of Religion)

12.6 धर्म की उत्पत्ति के सिद्धान्त(Theories of Origin of Religion)

12.7 जादू (Magic)

12.8 धर्म और जादू (Religion and Magic)

12.9 धर्म और जादू (Religion and Magic)

12.10 धर्म और विज्ञान (Religion and Science)

12.11 सारांश

12.12 मुख्य शब्द

12.13 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

12.14 संदर्भ ग्रन्थ

12.15 अभ्यास प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

उद्विकास के प्रसिद्ध विद्वान डार्विन (Darwin) ने लिखा है कि मनुष्य के पूर्वज बन्दर थे। इसी प्रकार हरबर्ट स्पेन्सर (Herbert Spencer) ने भी लिखा है कि समाज का उिवकास हुआ है। उद्विकास का तात्पर्य यह है कि समाज

धीरे-धीरे विकसित हुआ है और समाज का निर्माण अनेक संस्थाओं और संगठनों से होता है। इन सभी संस्थाओं और संगठनों को उद्विकास की प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। धर्म समाज की सबसे महत्वपूर्ण संस्था है। इस दृष्टि से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि धर्म का भी उद्द्विकास हुआ है तो हमारे सामने मौलिक समस्या उपस्थित होती है कि धर्म का जन्म क्यों और किस प्रकार हुआ ? मनुष्य की कुछ आवश्यकताएँ होती हैं। वह इन आवश्यकताओं को पूरा करना चाहता है। आदिम मनुष्य इसी प्रकार के अनेक संकटों को अपने बीच पाता था। इन सभी संकटों का स्वरूप भौतिक था, जिन्हें हम भोजन, वरख और आवास के रूप में कह सकते हैं। इसके साथ ही उसे अपने प्राकृतिक शक्तियों का भी सामना करना पड़ता था, जैसे-बाढ़, बिजली, सूखा, ठंडी आदि।

12.2 उद्देश्य

1. समाज में सामूहिक चेतना और एकजुटता को बढ़ावा देना।

2. जीवन की अनिश्चितताओं और समस्याओं के समाधान के लिए मनोवैज्ञानिक समर्थन प्रदान करना।

3. नैतिक और सामाजिक नियमों का पालन सुनिश्चित करना।

4. विदेशी आक्रमणकारियों से दे शकी रक्षा के भाव को दिखाना।

5.व्यक्तिगत जीवन के प्रेम त्याग उदासीनता ईर्ष्या जैसे मानव - सुलभ भावों को दिखाना।

12.3 धर्म की परिभाषा (Definition of Religion)

साधारण तौर पर धर्म का तात्पर्य मानव-समाज से परे अलौकिक तथा सर्वोच्च शक्ति पर विश्वास से है, जिनमें पवित्रता, भक्ति श्रृद्धा, भय आदि तत्व सम्मिलित हैं। इन्हीं तत्वों को दृष्टि में रखकर विभिन्न विद्वानों ने धर्म की जो परिभाषाएँ दी हैं, उनमें से कुछ प्रमुख परिभाषाओं को यहाँ प्रस्तुत किया जायेगा।

(1) फ्रेजर "धर्म से मेरा तात्पर्य मनुष्य मनुष्य से श्रेष्ठ उन शक्तियों की संतुष्टि अथवा आराधना करना है जिनके बारे में व्यक्तियों का विश्वास हो कि वे प्रवृति और मानव जीवन को नियन्त्रित करती हैं तथा उनको निर्देश देती है।"

(2) टेलर "धर्म का अर्थ किसी आध्यात्मिक शक्ति में विश्वास करना है।"

(3) मजूमदार और मदन "धर्म किसी भय की वस्तु अथवा शक्ति का मानवीय परिणाम है, जो पारलौकिक है इन्द्रियों से परे है। यह व्यवहार की अभिव्यक्ति तथा अनुकूलन का रूप है, जो लोगों को अलौकिक शक्ति की धारणा से प्रभावित करता है।"

(4) दुर्खीम "धर्म पवित्र वस्तुओं से सम्बन्धित विश्वासों और आचरणों की समग्रता है जो इन पर विश्वास करने वालों को एक नैतिक समुदाय के रूप में संयुक्त करती है।"

(5) होबेल "धर्म अलौकिक शक्ति के ऊपर विश्वास में आधारित है, जो आत्मवाद और मानव को सम्मिलित करता है।"

(6) डॉ. राधाकृष्णन "धर्म की अवधारणा के अन्तर्गत हिन्दू उन स्वरूपों और प्रतिक्रियाओं को लाते हैं जो मानव-जीवन का निर्माण करती हैं और उसको धारण करती हैं।"

110(7) मैलिनोवस्की "धर्म क्रिया का एक ढंग है और साथ ही विश्वासों की एक व्यवस्था भी, और समाजशास्त्र बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर-1 ार्म एक समाजशास्त्रीय घटना के साथ-साथ एक व्यक्तिगत अनुभव भी है।"

NOTES

(8) होनिगशीम "प्रत्येक मनोवृत्ति जो इस विश्वास पर आधारित या इस विश्वास से सम्बन्धित है के अलौकिक शक्तियों का अस्तित्व है और उनसे सम्बन्ध स्थापित करना सम्भव व महत्वपूर्ण है, धर्म कहलाती

(9) आगबर्न और निमकाफ "धर्म मानवोपरि शक्तियों के प्रति अभिवृत्तियाँ है।"

(10) गिलिन और गिलिन "धर्म के समाजशास्त्रीय क्षेत्र के अन्तर्गत एक समूह में अलौकिक से सम्बन्धित उद्देश्यपूर्ण विश्वास तथा इन विश्वासों से सम्बन्धित बाह्य व्यवहार, भौतिक वस्तुएँ और प्रतीक आते है।

(11) जॉनसन "एक धर्म, प्राणियों, शक्तियों, स्थानों अथवा अन्य वस्तुओं की अलौकिक व्यवस्था से सम्बन्धित विश्वासों एवं व्यवहारों की अधिक या कम साम्यपूर्ण व्यवस्था है।"

(12) पॉल टिलिक "धर्म वह है, जो अन्ततः हमसे सम्बन्धित है।"

इस प्रकार 'धर्म को सामाजिक प्राणी के उन व्यवहारों और क्रियाओं के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसका सम्बन्ध अलौकिक शक्ति पर सत्ता से होता है।'

धर्म की विशेषताएँ

(Characteristics of Religion)

विभिन्न विद्वानों ने धर्म की जो परिभाषाएँ दी हैं, उनको ध्यान में रखते हुए धर्म की प्रमुख विशेषताओं को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) शक्ति में विश्वास धर्म की पहली विशेषता यह है कि यह शक्ति में विश्वास पर आधारित है। धर्म जिस शक्ति पर आधारित है वह मनुष्य निर्मित (Man-Made) न होकर प्राकृतिक (Natural) होती है।

(2) दिव्य चरित्र धर्म से जिस शक्ति में विश्वास किया जाता है, उसकी प्रकृति अलौकिक (Super-Natural) होती है। चूँकि यह चरित्र दिव्य होता है, अतः मानव समाज से परे होती है।

(3) पवित्रता का पत्र सामाजिक जीवन के तत्वों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है- पवित्र और अपवित्र। धर्म में सिर्फ उन्हीं तत्वों को महत्त्व प्रदान किया जाता है, जो पवित्रता की अवधारणा से सम्बन्धित होते हैं।

(4) सैद्धान्तिक व्यवस्था सैद्धान्तिक व्यवस्था भी धर्म का अनिवार्य तत्व है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक धर्म की एक सैद्धान्तिक व्यवस्था होती है। इस

सैद्धान्तिक व्यवस्था की सहायता से धर्म को व्यावहारिक स्वरूप प्रदान किया जाता है।

(5) निश्चित प्रतिमान प्रत्येक धर्म के कुछ निश्चित प्रतिमान होते हैं। ये प्रतिमान ईश्वरीय रक्षा का प्रतिनिधित्व करते हैं। यही कारण है कि व्यक्ति इन प्रतिमानों का आदर करता है तथा इन प्रतिमानों के आधार पर अपने व्यवहार का निर्धारण करता है।

(6) मूल्यात्मक व्यवस्था धर्म समाज में मूल्यों (values) की एक व्यवस्था का निर्धारण करता है। यही कारण है कि धर्म को मूल्य और भावनाओं के आधार पर समझने का प्रयास किया जाता है। तर्क (Logic)

और विवेक (Ration) को धर्म में कोई स्थान नहीं है। (7) धार्मिक चेतना प्रत्येक धर्म अपने में धार्मिक चेतना को विकसित करता है। धार्मिक चेतना के स्वरण ही व्यक्ति धर्म का आदर करता है। आज संसार में जो अनेक धर्म पाए जाते हैं, उनका जन्म और विकास गार्मिक चेतना के कारण ही हुआ है।

(8) संस्कृति का अंग धर्म प्रत्येक समाज में संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग होता है। धर्म के द्वारा ही

केसी समाज की सांस्कृतिक विशेषताओं को जाना जा सकता है।

(9) पुरस्कार और दण्ड धर्म में पुरस्कार और दण्ड-दोनों ही संभावनाएँ पायी जाती है। सफलता को पुरस्कार और असफलता को दण्ड की संज्ञा दी जाती है।

12.4 धर्म के मौलिक लक्षण (Fundamental Characteristics of Religion)

धर्म के प्रमुख मौलिक लक्षण निम्नलिखित हैं -

(1) अलौकिक शक्ति में विश्वास धर्म का आधार एक ऐसी शक्ति है, जो मानवीय शक्ति अथव इस लोक की शक्ति से परे है। प्रत्येक समाजों का धर्म इसी अलौकिक शक्ति के आधार पर टिका हुआ है देश- काल और परिस्थितियों के अनुसार इस शक्ति को भिन्न-भिन्न नामों से सम्बोधित किया है। इस

शक्ति की व्यक्ति आराधना करते हैं और इस आराधना का आधार भी धर्म में विश्वास का होना है।

(2) मानसिक भावनाएँ धर्म का आधार तर्क न होकर मनौवैज्ञानिक तत्व होते हैं। तर्क के आधार पर धर्म को समझना अत्यन्त कठिन है। धर्म जिन मनोवैज्ञानिक तत्वों पर आधारित है, उनमें श्रद्धा, प्रेम, आतंक भय, वेदना और विह्वालता प्रमुख हैं। इन्हीं मानसिक शक्तियों के आधार पर व्यक्ति अलौकिक शक्ति के नजदीक पहुँचने का प्रयास करता है।

(3) धार्मिक व्यवहार धर्म का आधार अलौकिक शक्ति को प्रसन्न करना है। इस शक्ति को प्रसन्न करने के लिए व्यक्ति विभिन्न प्रकार के व्यवहार करते हैं। इन व्यवहारों में व्यक्ति अपने को पतित एवं तुच्छ कहता है तथा भगवान को दयालु, पाप-विनाशक और ब्रह्म की संज्ञा देता है। इसके अतिरिक्त नृत्य, शारीरिक कष्ट, कर्म-काण्ड, यात्रा आदि के माध्यम से इस अलौकिक शक्ति को प्रसन्न करते हैं। इसके साथ ही अनेक प्रकार के संस्कारों का सम्पादन करते हैं।

(4) धार्मिक प्रतीक प्रत्येक सामाजिक संस्थाओं के अपने अलग-अलग प्रतीक होते हैं। इन प्रतीकों के माध्यम से इस संस्था को पहचाना जाता है। धर्म भी एक सामाजिक संस्था है। धर्म नामक सामाजिक संस्था को पहचानने के लिए कुछ निश्चित प्रतीकों का समाज में प्रचलन हुआ है। इन प्रतीकों में से कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं, जैसे-मूर्ति भगवान का प्रतीक धूपबत्ती सुगन्ध की प्रतीक, आसन और रेशमी वस्त्र पवित्रता के प्रतीक, रामायण और गीता ईश्वरीय ज्ञान के प्रतीक है।

(5) धार्मिक श्रेणियाँ प्रत्येक समाज में सामाजिक संस्तरण पाया जाता है। इस संस्तरण का आधार व्यक्ति के ऊँचे और नीचे पदों के आधार पर भिन्न-भिन्न पदों पर विभाजित होता है। धर्म में भी इस प्रकार का संस्तरण पाया जाता है। यह संस्तरण देवताओं के अतिरिक्त धार्मिक मनुष्यों में भी पाया जाता है। उदाहरण के लिए धार्मिक दृष्टि से पुरोहित सबसे ऊँचे संस्तरण में होते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य व्यक्ति आते हैं।

12.5 धर्म का समाजशास्त्रीय महत्व

(Sociological Significance of Religion)

जैसा कि इसकी परिभाषाओं से स्पष्ट होता है धर्म अलौकिक शक्ति में विश्वास का नाम है। इस विश्वास के आधार पर मनुष्य में अनेक सामाजिक और मानसिक गुणों का विकास होता है। इसका कारण यह है कि धर्म की समाज में महत्वपूर्ण भूमिका है। सामाजिक व्यवस्था की दृष्टि में धर्म की भूमिका को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है -

(1) समाजीकरण धर्म का सम्बन्ध भावनाओं से होता है। इस दृष्टि से धर्म व्यक्ति के अन्दर अनेक सामाजिक गुणों को विकसित करता है। इन गुणों में सहिष्णुता, दया, धर्म, स्नेह, सेवा और सहयोग प्रमुख हैं। व्यक्ति में इन सामाजिक गुणों के विकास के परिणामस्वरूप समाज की व्यवस्था में शक्ति एवं क्षमता का विकास होता है। धर्म व्यक्ति के व्यवहारों को भी नियन्त्रित करता है। इस प्रकार निष्कर्ष रूप में ऐसा कहा जा सकता है कि धर्म सामाजिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

(2) धार्मिक संगठनों की प्रेरणा सामाजिक नियंत्रण के क्षेत्र में धर्म का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य है कि इसके माध्यम से समाज में विभिन्न प्रकार की धार्मिक संस्थाओं और संगठनों का विकास होता है। ये धार्मिक संगठन और संस्थाएँ समाज में स्थिरता की स्थापना करते हैं। इसका कारण यह है कि धर्म का आधार विश्वास और आस्था है, जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति बदलती हुई परिस्थितियों में भी इन संगठनों और संस्थाओं की उपेक्षा नहीं करता है। इसका परिणाम यह होता है कि समाज में सदस्यों के व्यवहारों में नैतिकता का विकास है, और सामाजिक संगठन अधिक शक्तिशाली बनता है।

(3) सद्गुणों का विकास धर्म एक ऐसी सामाजिक संस्था है, जिसके माध्यम से मनुष्यों के सद्गुणों का समुचित विकास होता है। हाफडिंग ने लिखा है "धर्म बनाया नहीं जाता, इसका विकास तो मानव के

112समाजशास्व: श्री. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर-

जीवन-संघर्षों की उमंगों से होता है। विकास की परम्परा में अपने अनुभवों के आधार पर मनुष्य अपने जिन मूल्यों को उचित समझता है, प्रत्येक परिस्थिति में उन्हीं मूल्यों पर अटल रहने की प्रेरणा से धर्म का जन्म होता है।" इसका

तात्पर्य यह है कि समाज के अधिकांश व्यक्ति धर्म पर विश्वास करते हैं। इससे उनका जीवन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जीवन को प्रभावित करता है। व्यक्ति अपने धार्मिक आदशों के अनुसार जीवन को ढालने का प्रयास करता है। इसका परिणाम यह होता है कि इसके अन्दर अनेक मानवीय गुणों का विकास होता है।

NOTES

(4) व्यक्ति को अपूर्व सत्ता का अनुभव धर्म का सम्बन्ध एक सत्ता से हैं, जो सर्वशक्तिमान और अलौकिक है। इस दृष्टि से धार्मिक व्यक्ति सभी कार्यों को ईश्वरीय इच्छा का प्रतीक मानते हैं। इसके साथ ही उनमें ऐसा विश्वास रहता है कि भगवान अच्छा-बुरा जो भी करता है व्यक्ति के कल्याण की दृष्टि से ही करता है। जीवन में जो भी कष्ट और विपत्तियाँ आती हैं, वे मात्र परीक्षा के लिए होती हैं। इन्हीं विपत्तियों के आधार पर भगवान व्यक्ति की धार्मिक परीक्षा करता है। इसका परिणाम यह होता है कि व्यक्ति के अन्दर अपूर्व शक्ति का विकास होता है।

(5) सामाजिक समस्याओं के समाधान में सहायक यदि हम मानव-समाज के इतिहास का अवलोकन करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि मानव जीवन अनेक प्रकार की सामाजिक समस्याओं से ग्रस्त था। इन समस्याओं के समाधान के लिए समाज में अनेक संगठनों और संस्थाओं का जन्म हुआ। धर्म के माध्यम से हम अनेक सामाजिक समस्याओं से मुक्ति पाते हैं। जैसे भक्त दुःखों से मुक्ति के लिए भगवान से प्रार्थना करता है और ऐसा करने से उसे मानसिक शान्ति मिलती है। इस प्रकार संक्षेप में धर्म में वही शक्ति है जिससे व्यक्ति में आत्म-विश्वास पैदा होता है। इस आत्म विश्वास के कारण व्यवस्था में सहायता मिलती है।

(6) पवित्रता की भावना का विकास प्रसिद्ध समाजशास्त्री दुर्खीम ने धर्म के अनेक सामाजिक कार्यों की विवेचना की है। धर्म का जो मौलिक कार्य है वह यह है कि इससे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में पवित्रता की भावना का विकास होता है। इसके साथ ही धर्म अपवित्र और भ्रष्ट कार्यों पर रोक भी लगाता है। धार्मिक दृष्टि से समाज में सिर्फ उन्हीं कार्यों को सम्पन्न किया

जाता है, जो शुद्ध समझे जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि समाज एक संगठन में बंध जाता है।

(7) धर्म समाज का आधार है धर्म एक ऐसा तत्व है, जिस पर सम्पूर्ण समाज का ढाँचा आधारित है, इसका कारण यह है कि धर्म के अन्तर्गत अनेक उच्च आदर्श और मूल्य होते हैं। इसके साथ ही धर्म का आधार अलौकिक शक्तियों में विश्वास भी होता है। इस अलौकिक शक्ति के डर के कारण से आदर्शों और मूल्यों की अपेक्षा नहीं करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि समाज में शान्ति-व्यवस्था और एकता का विकास होता है।

(8) नैतिकता और मूल्यों का विकास धर्म समाज का वह आधार है जिसके माध्यम से समाज में मानवीय मूल्यों और नैतिक भावनाओं का विकास होता है। संक्षेप में धर्म निम्न माध्यमों से समाज में मूल्यों और नैतिकता का विकास करता है -

(अ) धर्म वह साधन है जिससे व्यक्तिवाद की भावना समाप्त होती है और समूहवाद की भावना का विकास होता है। जब व्यक्तिगत स्वार्थ और सामाजिक हितों में संघर्ष होता है, तो मूल्य और नैतिकता सामाजिक हितों की रक्षा करते हैं।

(ब) मूल्य धर्म के वे आधार है जिन्हें व्यक्ति अन्तःकरण से स्वीकार करता है। इस कारण मूल्यों के आधार पर व्यक्तियों का जीवन निर्देशन होता है।

(स) धर्म नैतिक भावनाओं की वृद्धि में भी सहायता करता है।

(द) धर्म वह शक्ति है, जिससे मनुष्य में निराशा की भावना कम होती है। साथ-ही-साथ मनुष्य में उत्साह और नैतिकता की वृद्धि होती है। इसका परिणाम यह होता है कि मनुष्य अनेक प्रकार के संकटों, दुःखों और निराशाओं में भी नैतिकता बनाये रखने का प्रयास करता है।

(य) धर्म के माध्यम से समाज में मूल्यों का निर्माण होता है और इन मूल्यों की प्रतिस्थापना की जाती है। इन मूल्यों के आधार पर धर्म समाज में महत्वपूर्ण कार्यों का सम्पादन करता है।

(9) सामाजिक तनाव को रोकना धर्म एक ऐसा साधन है, जो मनुष्य को चिन्ता और निराशा से मुक्ति दिलाता है। धर्म के अभाव में मनुष्य अनेक प्रकार के मानसिक तनावों का शिकार हो जाता है। ये तनाव

113समाजशास्त्र : बी. ए. प्रथम वर्ष

सेमेस्टरू समाज में अनेक प्रकार की समस्याओं को जन्म देते हैं जैसे अपराध, मद्यपान, जुआ आदि। धर्म व्यक्ति को इन मानसिक तनावों से मुक्ति दिलाता है।

NOTES

(10) सुरक्षा की भावना धर्म के माध्यम से व्यक्ति में सुरक्षा की भावना का भी विकास होता है। धार्मिक लोगों में ऐसा विश्वास है कि जन्म और मृत्यु भगवान के हाथ है। वह सभी प्राणियों का पालन-पोषण भी करता है। इसके साथ-साथ भगवान समदर्शी भी है। व्यक्ति में ऐसा विश्वास रहता है कि जब भगवान इतने गुणों से सम्पन्न है तो वह व्यक्ति के साथ किसी प्रकार का असुरक्षात्मक कार्य नहीं कर सकते। इससे सभी व्यक्ति धर्म और भगवान के आगे सुरक्षा का अनुभव करते हैं।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि धर्म का सम्बन्ध अलौकिक शक्ति से है। वह अलौकिक शक्ति विश्व में सदैव विद्यमान है। समाज में जब भी संकट आये हैं, धर्म ने इन संकटों से व्यक्ति की रक्षा की है। आधुनिक युग विज्ञान का होते हुए भी सामाजिक नियन्त्रण के क्षेत्र में धर्म का महत्व कम नहीं हुआ है, चाहे भले ही अनेक व्यक्ति धर्म को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हों। साम्यवादी देशों में तो धर्म को अफीम की गोली कहकर सम्बोधित किया है, इसके बावजूद भी धर्म के महत्व को प्रत्यक्ष रूप से स्वीकार किया है। संक्षेप में धर्म वह शक्ति है जो व्यक्ति को नियन्त्रण में रखकर उसके नैतिक और मानवीय मूल्यों को विकसित करके व्यक्ति के विकास में सहायता प्रदान करता है।

12.6 धर्म की उत्पत्ति के सिद्धान्त(Theories of Origin of Religion)

धर्म समाज की महत्वपूर्ण सामाजिक संस्था है। मौलिक प्रश्न यह है कि समाज में धर्म की उत्पत्ति क्यों हुई? वे कौन सी परिस्थितियाँ और दशाएँ थीं, जिन्होंने समाज में धर्म के उद्भव और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। धर्म की उत्पत्ति से सम्बन्धित प्रमुख विचार और सिद्धान्त निम्नलिखित हैं

(1) भय का सिद्धान्त (The Theory of Fear) मानव का प्रारम्भिक समाज का इतिहास उसकी कठिनाइयों का इतिहास रहा है। इन कठिनाइयों के अतिरिक्त वह प्राकृतिक शक्तियों के आगे पूर्णतया असमर्थ था। अपनी इस असमर्थता के कारण वह प्राकृतिक शक्तियों से भयभीत रहता था। अपनी कठिनाइयों और भय के कारण मानव ने प्राकृतिक शक्तियों की पूजा प्रारम्भ की। प्राकृतिक शक्तियों की पूजा के कारण ही धर्म नामक संस्था का जन्म और विकास हुआ।

इस सिद्धान्त का समर्थन और प्रतिपादन रोम के प्रसिद्ध दार्शनिक और कवि लुक्रेटियश (Lucretius) ने किया था। आधुनिक युग में डेविड ह्यूम ने अपनी पुस्तक 'Natural History of Religion' में इस सिद्धान्त का समर्थन किया है। गिडिंग्स और मैक्समूलर ने भी भय को धर्म की उत्पत्ति का कारण माना है। भय के कारण ही मनुष्य ने दैवी शक्तियों पर विश्वास करना प्रारम्भ किया और दैवी शक्तियों पर विश्वास ने धर्म को जन्म दिया।

(2) आत्मवाद का सिद्धान्त (Theory of Animism) प्रसिद्ध मानवशास्त्री टायलर (Tylor) ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री स्पेंसर (Herbert Spencer) ने भी इस सिद्धान्त का समर्थन किया है। इन विद्वानों के अनुसार यद्यपि धर्म की उत्पत्ति के अनेक कारण हैं, किन्तु इन सब में 'आत्मा में विश्वास' ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। आत्मा में विश्वास करने के कारण ही इस सिद्धान्त को आत्मवाद के नाम से जाना जाता है। टायलर ने तो यहाँ तक लिखा है कि 'आदिम युग से सभ्य मनुष्यों तक में धर्म के दर्शन का आधार आत्मवाद ही है।' इस सिद्धान्त के अनुसार आत्मा अमर होती है। आत्मा की इस अमरता के कारण पूर्वजों के प्रति गहरी आस्था का जन्म हुआ। पूर्वजों के प्रति यह आस्था इतनी अधिक बढ़ गई कि उनकी पूजा होने लगी। कालान्तर में यही पूजा और श्रद्धा की भावना ने धर्म का रूप धारण कर लिया।

(3) मानववाद का सिद्धान्त (Theory of Manaism) इस सिद्धान्त को 'जीव सत्तावाद' (Animatism) के नाम से भी जाना जाता है। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन मेरेट (Merriot) ने किया है। माना का अर्थ है कोई रहस्यमय शक्ति। मानावाद वह विचारधारा है जो किसी रहस्यमय शक्ति में विश्वास पर आधारित है। यह किसी भी रूप में, किसी भी वस्तु में विद्यमान हो सकती है। इस शक्ति की पूजा के कारण ही धर्म की उत्पत्ति हुई।

114मैक्समूलर (Max Muller) का विचार है कि प्रत्येक जड़ या चेतन में किसी न किसी प्रकार की शक्ति समाजशास्त्र: बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर-1 विद्यमान है। यह शक्ति अलौकिक होती है, अतः मानव स्वभावतः इस शक्ति से डरता है। इस अलौकिक शक्ति को नियंत्रित करने के लिए पूजा और आराधना की क्रियाओं ने धर्म को जन्म दिया।

(4) प्रकृतिवाद का सिद्धान्त (Theory of Naturalism) मैक्समूलर ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। मैक्समूलर के अनुसार धर्म की उत्पत्ति का महत्वपूर्ण कारण प्रकृति है। आँधी, ओला, पानी, गरज, भूकम्प, बाढ़ आदि प्रकृति के विभिन्न स्वरूप हैं। प्रकृति के इन विभिन्न स्वरूपों को देखकर मानव मस्तिष्क में भय (Fear) उत्पन्न होता था। उस युग का मानव बौद्धिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था में था। बुद्धि की कमी और भय के कारण उसके मन में प्रकृति के प्रति आदर और श्रद्धा के भाव जागृत हुए। आदर और श्रद्धा के कारण 'पूजा' का जन्म हुआ और यहीं से धर्म की उत्पत्ति हुई। मैक्समूलर ने लिखा है कि-'यह असीम प्रकृति की उत्तेजना और अनुभूति है, जिसमें धर्मों की उत्पत्ति हुई है।'

(5) संक्रमण का सिद्धान्त (Theory of Transition) प्रसिद्ध मानव-शास्त्री जेम्स फेजर (Sir James Frazer) इस सिद्धान्त के प्रतिपादक हैं। फेजर का विचार है कि समाज में धर्म के पहले जादू और टोने का अस्तित्व था। जादू टोने की सहायता से मानव अपनी प्रतिकूल परिस्थितियों पर नियंत्रण स्थापित करता है। अनेक अवसरों पर जादू-टोने की सहायता से मानव अपनी प्रतिकूल परिस्थितियों पर नियंत्रण स्थापित करने में असफल हो जाता था। इस

असफलता के कारण मनुष्य में अज्ञात अलौकिक शक्तियों पर आस्था उत्पन्नहुई। इसी आस्था से कारण धर्म का जन्म हुआ।

(6) समाजशास्त्रीय सिद्धान्त (Sociological Theory) प्रसिद्ध समाजशास्त्री इमाइल दुर्खीम (Emile Durkhiem) ने अपनी पुस्तक "The Elementary Forms of Religious Life" में धर्म की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अपने विचारों का प्रतिपादन किया है।

दुर्खीम से पहले मैकाइवर, टायलर तथा स्पेन्सर जैसे विद्वानों ने अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। दुर्खीम ने उपर्युक्त विद्वानों द्वारा प्रतिपादित धर्म के सिद्धान्त की आलोचना की है और इस सम्बन्ध में अपने

नवीन सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। दुर्खीम ने धर्म की उत्पत्ति के बारे में जिस महत्वपूर्ण सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। उसकी दो विशेषताएँ हैं।

a) धार्मिक विचार और धार्मिक क्रियाएँ व्यक्ति के सामूहिक जीवन के प्रतीक (Symbol) स्वरूप हैं। (

(b) विभिन्न स्थानों पर विशिष्ट व्यक्तियों के जो सम्मेलन होते हैं इन्हें ही धार्मिक अनुभवों का स्रोत कहा जाता है। दूसरे शब्दों में विशिष्ट सम्मेलनों के परिणामस्वरूप धर्म की उत्पत्ति होती है।

दुर्खीम ने धर्म की उत्पत्ति के सम्बन्ध में उपर्युक्त सिद्धान्त की आलोचना की है और उन्हें अव्यावहारिक माना है। अपने धार्मिक अध्ययन को व्यावहारिक स्वरूप प्रदान करने के लिए उसने आस्ट्रेलिया की अरुन्ता (Arunta) अन्य जातिकी टोटम सम्बन्धी क्रियाओं का अध्ययन एवं विश्लेषण किया था। दुरखीम ने अरुन्ता जनजाति का ही अध्ययन क्यों किया था ? इस प्रश्न के उत्तर में दुर्खीम ने निम्न दो तर्क प्रस्तुत किये हैं

(a) अरुन्ता जनजाति के अध्ययन का उसका पहला तर्क यह है कि यह जनजाति सबसे अधिक अथवा अत्यन्त ही आदिम अवस्था में है।

(b) दूसरा तर्क यह है कि अरुन्ता जनजाति में पाया जाने वाला धर्म अन्य समस्त धर्मों की व्याख्या कर सकने में समर्थ है।

अपने अध्ययन में उसने पाया है कि अरुन्ता अन्य जाति में टोटम (Totam) एक गोत्र (Clan) का प्रतीक माना जाता है। यह टोटम जानवर, पशु या पेड़ पौधे हो सकते हैं। इस जाति में जितने भी गौत्र पाये जाते हैं वे सभी अपनी उत्पत्ति टोटम से मानते हैं। चूंकि वे अपनी उत्पत्ति टोटम से मानते हैं इसीलिये इस टोटम के प्रति उनके मन में श्रद्धा का होना स्वाभाविक है। यही कारण है कि टोटम को एक गोत्र के सदस्य अपना पूर्वज मानते हैं। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि टोटम एक भौतिक पदार्थ है। चूँकि वह गोल का प्रतीक है अतः उसके प्रति सदस्यों का घनिष्ठ सम्बन्ध होना स्वाभाविक है। चूंकि टोटम का सम्बन्ध पूर्वजों से होता है अतः उसे किसी भी प्रकार का नुकसान नहीं पहुँचाया जाता है। जो व्यक्ति टोटम के इन नियमों का उल्लंघन करता है। उसे सामाजिक तौर पर दण्ड दिया जाता है। टोटम का यही आधार टोटमवाद (Totamism Taboos) की संरचना को तैयार करता है।

यदि कोई व्यक्ति टोटम के विरुद्ध कार्य करता है तो उसे समूह के विरुद्ध कार्य समझा जाता है। टोटम के प्रति उसके सदस्य निषेधों (Taboos) का पालन करते हैं। गोत्र के सदस्य टोटम को अलौकिक शक्ति का प्रतीक मानते हैं और इनके प्रति स्वभावतः श्रद्धा करते हैं। इस अलौकिक शक्ति को पवित्रतम माना जाता है। यदि कोई व्यक्ति टोटम के निषेधों को तोड़ता है तो सम्पूर्ण समाज मिलकर उसे दण्ड देता है। जब टोटम दैवी शक्ति का प्रतीक मान लिया जाता है तो टोटम को गौत्र का भी प्रतीक माना जाता है। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ईश्वर और गोत्र दोनों में कोई अन्तर नहीं इसे गणितीय फार्मूले के द्वारा इस प्रकार समझा जा सकता है। जब, क (टोटम) = ख (ईश्वर) है, और क (टोटमग गोत्र) है,

इसलिये ख (ईश्वर ग गोत्र) होगा।

दुर्खीम ने यह निष्कर्ष निकाला है कि ईश्वर और समाज अन्तःसम्बन्धित हैं। चूँकि धर्म की उत्पत्ति समाज से हुई है, इसलिये समाज ईश्वर का प्रतीक है। समाज के द्वारा ईश्वर के कार्यों का सम्पादन होता है।

12.7 जादू (Magic)

धर्म और जादू मानव-समाज के उद्विकास के आधार रहे हैं। यह निर्विवाद सत्य है कि आदिम समाजों में जादू-टोने का अस्तित्व रहा है तथा आज भी है। धर्म और जादू में प्राचीनता के दृष्टिकोण से उत्पत्ति को लेकर विद्वानों में कई प्रकार की विचारधाराएँ हैं (a) कुछ मानवशास्त्री मानते हैं कि जादू की उत्पत्ति पहले हुई और धर्म की बाद में। (b) मानवशास्त्रियों का एक ऐसा समूह है, जो यह मानता है कि धर्म की उत्पत्ति पहले हुई और जादू की बाद में।

(c) कुछ ऐसे मानवशास्त्री भी हैं, जो धर्म और जादू की उत्पत्ति के बारे में समान्वत दृष्टिकोण अपनाते हैं। इन विद्वानों के अनुसार धर्म और जादू की उत्पत्ति साथ-साथ हुई है।

आदिकाल से मानव का अलौकिक शक्ति में विश्वास रहा है। यह अलौकिक शक्ति संसार की समस्त घटनाओं का संचालन करती है। अलौकिक शक्ति पर नियंत्रण स्थापित करने के मानव ने दो तरीके अपनाए थे

(i) अलौकिक शक्ति की आराधना करना और इस आराधना से अलौकिक शक्ति को अपने नियन्त्रण में रखना। अलौकिक शक्ति को अपने नियन्त्रण में रखकर मानव अपने उद्देश्यों की पूर्ति करता था। आराधना का यही स्वरूप कालान्तर में धर्म के रूप में विकसित हुआ ।

(ii) अलौकिक शक्ति पर नियन्त्रण रखने का दूसरा उपाय था, इसे दबाकर अपने वश में रखें और इस प्रकार अपने उद्देश्य की पूर्ति करें। अलौकिक शक्ति को अपने नियन्त्रण में रखने का दबाव ही कालान्तर में जादू के नाम से जाना गया।

जादू की परिभाषा

(Definition of Magic)

जादू की अवधारणा को व्यक्त करने के लिये कुछ विद्वानों ने इसकी परिभाषाएँ दी हैं। यहाँ इन्हीं विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं में से कुछ को रखा जायेगा। जादू की प्रमुख परिभाषाएँ इस प्रकार हैं-

(1) मैलिनोवस्की - "जाटू विशुद्ध व्यावहारिक क्रियाओं का एक योग है, जिनका प्रयोग उद्देश्यों की पूर्ति के साधन के रूप में किया जाता है।"

(2) कीसिंग "टेक्निकल अर्थों में जादू एक ऐसा शब्द है, जो कि विविध पद्धतियों को सम्मिलित करता है, जिससे कि मानव स्वतः घटनाओं के क्रम को प्रभावित करता है, जो कि अलौकिक शक्ति को छूता है। जादुई क्रिया एक संस्कार है जो मानव इच्छाओं की सन्तुष्टि के लिए विशेष पद्धति द्वारा मोड़ती है।"

(3) पिडिंग्टन "जादू प्रत्यक्ष रूप से परिणामों को उत्पन्न करता है अर्थात् बिना आत्मीयजनों के हस्तक्षेप यह अनिवार्यतः यदा कदा गुप्त होता है, इसका एक निश्चित उद्देश्य होता है, तथा यह दोषमुक्त होता है, इसलिए समाज इसकी निन्दा करता है।"

116(4) डॉ. दुबे "जादू उस शक्ति विशेष का नाम है, जिससे अति मानवीय जगत पर नियन्त्रण प्राप्त समाजशास्व: बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर- किया जा सके और उसकी क्रियाओं को अपनी इच्छानुसार भले या बुरे, शुभ-अशुभ उपयोग में लाया जा सके।"

NOTES

(5) बील्स तथा हाइजर "जादू संसार को नियन्त्रित करने के लिए तकनीकियों तथा विधियों का एक समूह है, जो इस कल्पना पर आधारित है कि यदि कुछ कार्यक्रमों को सूक्ष्म रूप से काम में लाया गया, तो कुछ परिणाम अवश्य निकलेंगे। यह कारण तथा कार्य की सम्पूर्ण नियमितता की पूर्व कल्पना है।"

(6) फ्रेजर "जादू अपने में दो मौलिक कल्पनाएँ सम्मिलित करता है। पहली, कि समान वस्तु समान वस्तु उत्पन्न करती है अथवा एक कारण के सदृश्य होती है तथा दूसरी, जो कि एक सम्पर्क में रही वह सदैव सम्पर्क में रहकर दूर से उस समय भी क्रिया एवं प्रतिक्रिया करती है, जबकि शारीरिक सम्बन्ध टूट जाता है।"

इस प्रकार 'जादू वह मानवीय शक्ति है, जिसका उपयोग मानव अलौकिक शक्तियों को अपने नियन्त्रण में रखने के लिये करता है, जिनकी सहायता से मानव अपने अच्छे और बुरे उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए करता है।'

जादू की विशेषताएँ (Characteristics of Magic)

ऊपर जिन विद्वानों की परिभाषाओं को दिया गया है, उनको ध्यान में रख जादू की विशेषताओं को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) जादू एक प्रकार की शक्ति होती है।

(2) इस शक्ति को संचालित करने के लिए एक जादूगर होता है, जो जादू पर नियन्त्रण रखता है।

(3) जादू का उपयोग अलौकिक शक्तियों पर नियन्त्रण प्राप्त करने के लिए किया जाता है।

(4) इसका सम्बन्ध मानव जगत से नहीं है। जादू अतिमानवीय जगत से सम्बन्धित होता है।

(5) जादू का उपयोग जादूगर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रकार से कर सकता है। जादू से जहाँ एक ओर जादूगर अच्छे कार्य कर सकता है, वहीं दूसरी ओर वह बुरे कार्य भी कर सकता है।

जादू के प्रकार

(Kinds of Magic)

जादू की परिभाषाओं और विशेषताओं की विवेचना करने के पश्चात् जादू के विभिन्न प्रकारों की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। जादू के प्रकार या स्वरूप के बारे में मानवशास्त्री एक मत नहीं हैं। यही कारण है कि भिन्न-भिन्न मानव-शास्त्रियों ने भिन्न-भिन्न प्रकार का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। कुछ प्रमुख मानवशास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण इस प्रकार है-

(१) डॉ. दुबे का वर्गीकरण प्रसिद्ध भारतीय मानवशास्त्री डॉ. श्यामा चरण दुबे ने जादू को निम्नलिखित तीन भागों में विभाजित किया है-

(अ) सम्बर्धक जादू (Productive Magic) सम्बर्धक जादू जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट होता है, यह किसी न किसी प्रकार के निर्माण से सम्बन्धित होता है। इस जादू की सहायता से मानव अपनी समृद्धि में वृद्धि करता है। उदाहरण के लिए व्यापार में लाभ, वर्षा के अभाव को दूर करना, प्रेमी-प्रेमिका की सफलता आदि प्रमुख हैं।

(आ) संरक्षक जादू (Protective Magic) इस प्रकार के जादू की सहायता से संरक्षण का कार्य किया जाता है। इस जादू का प्रयोग समाज तथा व्यक्ति के बचाव के लिए किया जाता है।

(इ) विनाशक जादू (Destructive Magic) इस जादू का उपयोग विनाशकारी कार्यों के लिए किया जाता है। इस प्रकार के जादू की सहायता से विनाशकारी घटनाएँ पैदा की जाती हैं। इसमें सम्पत्ति और व्यक्ति को नष्ट करने वाले जादू सम्मिलित हैं।

(2) मैलिनोवस्की का वर्गीकरण मैलिनोवस्की ने जादू को निम्नलिखित दो भागों में विभाजित किया है -

(अ) काला जादू (Black Magic) काला जादू वह जादू है, जो समाज में मान्यता प्राप्त नहीं है तथा जिसका उपयोग समाज को हानि पहुँचाने के लिए किया जाता है। इस प्रकार से जादू में भूत-प्रेतों की सिद्धि, टोना टोटका आदि को सम्मिलित किया जाता है।

(आ) सफेद जादू (White Magic) यह जादू दूसरों को लाभ पहुँचाने के उद्देश्य से किया जाता है। चूंकि इससे समाज को लाभ होता है, अतः इस जादू को सामाजिक मान्यता प्राप्त होती है।

(3) फ्रेजर का वर्गीकरण फ्रेजर ने जादू को निम्न दो भागों में विभाजित किया है

(अ) अनुकरणात्मक जादू (Imitative Magic) अनुकरणात्मक जादू समानता के नियम (Law of Similarity) पर आधारित होता है। इसे संवेदनात्मक जादू के नाम से जाना जाता है। इस प्रकार के जादू में कार्य-कारण समानता पाई जाती है।

(आ) संक्रामक जादू (Contact Magic) इस प्रकार के जादू को सम्पर्क जादू भी कहा जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि यदि किसी व्यक्ति के नाखून काटकर उन पर जिस प्रकार की क्रिया की जायेगी, व्यक्ति पर उसी प्रकार का प्रभाव पड़ेगा।

12.8 धर्म और जादू (Religion and Magic)

मानवशास्त्री धर्म और जादू में कोई खास अन्तर नहीं मानते हैं। धर्म और जादू में कुछ समानताएँ अनेक तथा कुछ असमानताएँ है। ये समानताएँ एवं असमानताएँ निम्नलिखित हैं -

समानताएँ धर्म और जादू में प्रमुख समानताएँ इस प्रकार हैं-

(1) धर्म और जादू के सामान्य तत्वों का अवलोकन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि धर्म और जादू दोनों का ही अलौकिक शक्ति (Supernatural Power) में विश्वास है।

(2) धर्म और जादू में अलौकिक शक्ति में समानता के साथ ही सामान्य तत्वों (Common

Elements) में भी समानता है।

(3) धर्म और जादू दोनों ही परम्पराओं (Traditions) पर आधारित होते हैं।

(4) दोनों में ही कुछ न कुछ अनिवार्य निषेधों (Taboos) का पालन करना पड़ता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि निर्धारित निषेधों का पालन किए बिना वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं की जा सकती है।

(5) धर्म और जादू में कुछ परम्परागत विधियाँ होती हैं, जिसका सम्पादन अनिवार्य है। अपने निश्चित उद्देश्यों के प्राप्ति के लिए इन धार्मिक विधियों का पालन अनिवार्य है।

(6) धर्म और जादू दोनों का प्रयोग जीवन में आने वाले संकट से मुक्ति पाना है।

(7) धर्म तथा जादू दोनों में ही उद्वेगात्मक तनाव (Emotional Tension) पाया जाता है।

असमानताएँ - उपर्युक्त समानताओं के अतिरिक्त धर्म और जादू में कुछ असमानताएँ भी है, जो इस प्रकार है।

(1) धर्म और जादू दोनों ही क्रियाओं के उद्देश्यों की प्राप्ति की प्रतिक्रिया में अन्तर है। धार्मिक क्रियाओं का सम्पादन इस आधार पर किया जाता है कि इससे उद्देश्य प्राप्त भी किया जा सकता है और नहीं भी। किन्तु जादुई क्रियाओं का सम्पादन मात्र उद्देश्य प्राप्ति के लिए ही किया जाता है।

(2) धर्म सामूहिक कल्याण की भावना पर आधारित होता है, जबकि जादू में व्यक्तिगत कल्याण की भावना पाई जाती है,

(3) धार्मिक क्रियाओं का सम्पादन सभी व्यक्ति कर सकते हैं, किन्तु जादुई क्रियाओं का सम्पादन सिर्फ वही व्यक्ति कर सकता है जो कि उन क्रियाओं को सम्पादित करने में निपुण होते हैं,

(4) धर्म के प्रति श्रद्धा की भावना होती है, जबकि जादू के प्रति भय की भावना।

(5) धर्म और जादू दोनों ही अलौकिक शक्ति में विश्वास करते हैं, किन्तु दोनों की विश्वास पद्धतियों में अन्तर है। धार्मिक शक्ति को विनती और पूजा द्वारा अपने वश में करके उद्देश्यों की प्राप्ति की जाती है, जबकि जादू में अलौकिक शक्ति को दबाकर और उसे अपने नियन्त्रण में रखकर अपने उद्देश्यों की प्राप्ति की जाती है।

(6) धर्म सामाजिक कार्य है, जबकि जादू व्यक्तिगत कार्य है।विज्ञान और जादू (Science and Magic)

इसके पहले धर्म और जादू की विस्तृत व्याख्या की गई है तथा इन दोनों में समानताओं और असमानताओं का उल्लेख किया गया है। विज्ञान और जादू में समानताओं तथा असमानताओं का उल्लेख करने से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि विज्ञान क्या है-

समानताएँ- विज्ञान और जादू में निम्नलिखित समानताएँ पाई जाती है-

(1) विज्ञान और जादू दोनों का उद्देश्य अदृश्य संसार में प्रवेश करके इसकी गोपनीयता का पता लगाना है।

(2) विज्ञान और जादू दोनों ही अदृश्य संसार में प्रवेश करने के लिये ही पद्धति (Method) का प्रयोग करते हैं। इसी पद्धति के कारण जादू को प्राचीन विज्ञान कहा जाता है।

(3) विज्ञान और जादू अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निम्न नियमों का पालन करते हैं, उनमें भी समानता पाई जाती है।

(4) जादू और विज्ञान दोनों ही अपने परिणामों के बारे में आश्वस्त रहते हैं। अर्थात् दोनों को ही पता रहता है कि यदि वे विशिष्ट नियमों का पालन करेंगे, तो क्या परिणाम निकलेगा।

(5) विज्ञान और जादू दोनों के नियमों में समानता पाई जाती है। यही कारण है कि फ्रेन्जर ने दोनों को सौतेली बहनें कहा है।

असमानताएँ - उपर्युक्त समानताओं का यह कदापि अर्थ नहीं है कि धर्म और जादू में किसी प्रकार का कोई भेद नहीं है। दोनों में प्रमुख असमानताएँ निम्न हैं:

(1) विज्ञान भौतिक घटनाओं पर आधारित होता है, जबकि जादू सामाजिक और मानसिक घटनाओं पर आधारित होता है।

(2) दोनों के परिणामों (Results) में भी अन्तर है। जादू के परिणाम भ्रम और मिथ्यापूर्ण होते हैं जबकि विज्ञान के परिणाम सदैव सत्यता पर आधारित होते हैं।

(3) जादू अलौकिक शक्ति पर आधारित होता है, जबकि विज्ञान का आधार भौतिक शक्ति होता है।

(4) विज्ञान द्वारा प्राप्त परिणामों को प्रमाणित करने के लिए इनकी कई बार परीक्षा की जाती है, किन्तु जादू में ऐसा नहीं किया जाता है।

12.9 धर्म और विज्ञान (Religion and Science)

इस शताब्दी के वैचारिक विषयों में धर्म और विज्ञान का सम्बन्ध महत्वपूर्ण विषय है। धर्म किये जाते हैं। क्या विज्ञान और धर्म एक दूसरे के पूरक है। क्या वैज्ञानिक प्रगति के कारण धर्म का अस्तित्व समाप्त हो जायेगा ? क्या धर्म विज्ञान की प्रगति में बाधा है? क्या विज्ञान और धर्म में किसी प्रकार का संघर्ष है। अन्य शाखा के विद्वानों के अनुसार धर्म और विज्ञान भले ही विरोधी अवधारणाएँ हों, समाज-शास्त्रियों का विचार है कि धर्म और विज्ञान में किसी प्रकार का विरोध नहीं है। ये एक दूसरे के पूरक हैं। धर्म और विज्ञान में जो प्रमुख समानताएँ हैं, वे इस प्रकार है-

1. धर्म और विज्ञान दोनों का ही जन्म मानव आवश्यकताओं के कारण हुआ है।

2. धर्म और विज्ञान दोनों ही मानव समाज के कल्याण के पोषक और सहायक है।

3. धर्म और विज्ञान दोनों ही सामाजिक वस्तुएँ हैं तथा सामाजिक जीवन से इनका गहरा सम्बन्ध है।

यही कारण है कि आलपोर्ट धर्म को विज्ञान का सहायक मानता है। जोड़ के अनुसार धर्म और विज्ञान में किसी प्रकार का संघर्ष नहीं है। कुछ भी हो धर्म और विज्ञान दो अलग-अलग अवधारणाएँ हैं। इस कारण इन दोनों में अन्तर का होना भी नितान्त स्वाभाविक है। धर्म और विज्ञान में जो प्रमुख अन्तर है, वह इस प्रकार

(1) धर्म प्राचीन है, जबकि विज्ञान नवीन,

(2) धर्म का सम्बन्ध अध्यात्मवाद से है, जबकि विज्ञान का सम्बन्ध भौतिकवाद से है,

स्वप्रगतिपरीक्षण

1. "परिवारों का जन्म समाज में प्रचलित यौन साम्यवाद के कारण हुआ है।" यह अवधारणा किस सिद्धान्त

की मूल आत्मा है-

(अ) उद्विकासवादी सिद्धान्त की, (ब) यौन साम्यवाद के सिद्धान्त की,

(स) विकासवादी सिद्धान्त की, (द) आर्थिक सिद्धान्त की।

2. यौन साम्यवाद के सिद्धान्त के समर्थकों में निम्न में से कौन प्रमुख हैं-

(अ) मार्गन एवं फेजर,(ब) प्लेटो और अरस्तू,

(स) ऑगबर्न एवं निमकॉफ(द) बर्गेस एवं लाक।

3. उविकास सिद्धान्त के प्रमुख समर्थकों में से कौन नहीं है-

(अ) स्पेन्सर,(ब) मार्गन एवंटेलर,

(स) अरस्तू एवं प्लेटो, (द) बैक्रोफन ।

4. परिवार के उद्विकास की पाँच अवस्थाएँ (i) रक्त संबंध परिवार, (ii) समूह विवाह, (iii) सिण्डेस्मियन परिवार, (iv) पितृसत्तात्मक परिवार, (v) मातृसत्तात्मक परिवार का उल्लेख निम्न में से किस समाजशास्त्री ने किया है-

(अ) टायलर ने, (ब) बैक्रोफन ने,

(स) मार्गन ने,

(द) बिफास्ट ने ।

5. परिवार की उत्पत्ति मातृसत्तात्मक सिद्धान्त का प्रतिपादन निम्न में से किस समाजशास्वी ने किया है-

(अ) बैक्रोफन एवं बिफाल्ट से,(स) वेस्टरमार्क एवं टेलर ने,

(ब) क्लेयर ने,(द) ऑगबर्न एवं निमकॉफ ने ।

12.10 सारांश

समाजशास्त्र में धर्म का अध्ययन उसके सामाजिक, सांस्कृतिक और परिवर्तनकारी पहलुओं पर केंद्रित होता है। धर्म समाज में नैतिकता, एकता और अनुशासन स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जिससे व्यक्तिगत और सामूहिक व्यवहार नियंत्रित होता है। यह समाज की मान्यताओं, परंपराओं

और रीति-रिवाजों को संरक्षित कर सांस्कृतिक पहचान को सुदृढ़ करता है। साथ ही, धर्म सामाजिक परिवर्तन का एक साधन भी हो सकता है, जो समाज में सकारात्मक बदलाव लाने या विद्यमान सामाजिक संरचनाओं को चुनौती देने का कार्य करता है। इस प्रकार, धर्म समाज की स्थिरता और विकास दोनों में योगदान करता है

12.11 मुख्य शब्द

1. दिव्य चरित्र: विशिष्ट और उच्च नैतिक गुणों वाला आदर्श व्यक्तित्व।

2. धार्मिक चेतना: किसी धर्म के प्रति आस्था और आध्यात्मिक अनुभव का बोध।

3. आत्मवाद: आत्मा को सृष्टि और जीवन का मूल स्रोत मानने वाला सिद्धांत।

4. मानववाद: मानव के कल्याण और उसकी क्षमताओं पर आधारित विचारधारा।

स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

(1) ब (2) अ (3) स

(4) ब (5) अ

12.13 संदर्भ ग्रन्थ

- बालकृष्णन, पी. (2022). *भारतीय अर्थव्यवस्था की पुनर्प्राप्ति: राजनीतिक अर्थव्यवस्था दृष्टिकोण*. नई दिल्ली: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
- बसु, के. (2018). *विश्वासों का गणराज्य: कानून और अर्थशास्त्र के लिए एक नया दृष्टिकोण*. प्रिंसटन, एनजे: प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।
- घोष, ए. (2021). *भारत की उभरती अर्थव्यवस्था: 21वीं सदी में प्रदर्शन और संभावनाएँ*. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- पनगढ़िया, ए. (2020). *भारत अनलिमिटेड: खोई हुई महिमा को पुनः प्राप्त करना*. न्यूयॉर्क: हार्पर कॉलिन्स।

- नागराज, आर. (2019). *भारत में आर्थिक विकास और विकास: नए दृष्टिकोण*. नई दिल्ली: रूटलेज।

12.14 अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay-Type Questions)

1. परिवार की व्याख्या कीजिये। इसकी प्रमुख विशेषताएँ लिखिये ।

Define family. Write its characteristics.

2. परिवार की उत्पत्ति के प्रमुख सिद्धान्तों की विवेचना कीजिये ।

Discuss the main theories of origin of family.

3. परिवार की उत्पत्ति के उद्विकासवादी सिद्धान्त का समझाइये ।

Discuss the evolutionary theory of origin of family.

4.परिवार के कार्यों की विवेचना कीजिये।

Discuss the functions of family.

5. 'परिवार उस समूह का नाम है, जिसमें स्वी-पुरुष का यौन संबंध पर्याप्त निश्चित हो, और इनका साथ इतनी देर तक रहे जिससे संतान उत्पन्न हो जाये और उसका पालन-पोषण भी किया जाये।' आलोचना सहित व्याख्या कीजिये ।

'The family is a group defined by a sex relationship precise and enduring to provide for the procreation and upbringing of children.' Discuss critically.

6.परिवार को परिभाषित कीजिये। इनके संगठन में निहित सिद्धान्तों की विवेचना कीजिये । Define family. Discuss the basic principles underlying its organization.

(ब) लघुउत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. परिवार के अर्थ को स्पष्ट लिखो ।

2. परिवार की कोई तीन परिभाषा लिखो।

3. मैकाइवर और पेज ने परिवार की कितनी विशेषताएँ बतलायी हैं?

4. परिवार की पाँच प्रमुख विशेषताएँ लिखो ।

5. परिवार की उत्पत्ति के प्रमुख सिद्धान्त कौन-कौन से हैं?

6. परिवार की उत्पत्ति के शास्त्रीय सिद्धान्त को 100 शब्दों में स्पष्ट करो।

7. परिवार की उत्पत्ति के एकविवाही सिद्धान्त को समझाओ ।

8. परिवार की उत्पत्तिके मातृसत्तात्मक सिद्धान्त को स्पष्ट करो।

9. सदस्यों की संख्या और संगठन के आधार पर परिवार को कितने भागों में विभाजित किया गया है? 100 शब्दों में समझाओ ।

10. सत्ता, स्थान तथा वंश-परम्परा के स्थान पर परिवार को कितने भागों में विभाजित किया गया है? 100

शब्दों में स्पष्ट करो।

11. विवाह के आधार परिवार के विभाजन को 150 शब्दों में स्पष्ट करो।

12. परिवार की उत्पत्ति के उविकासवादी सिद्धान्त को 100 शब्दों में स्पष्ट करो।

13. परिवार के प्रमुख कार्य क्या है?

14. परिवार के जैविकीय कार्य को 100 शब्दों में स्पष्ट करो।

15. मोरेल ने परिवार के कौन-कौन से कार्य बतलाये हैं?

16. बीरस्टीड के अनुसार परिवार के कार्यों को 100 शब्दों में स्पष्ट करो।

17. परिवार के मौलिक कार्यों को 100 शब्दों में समझाओ ।

18. परिवार के सामाजिक कार्यों को 150 शब्दों में स्पष्ट करो।

19. परिवार के पाँच प्रमुख महत्वों को स्पष्ट करो।

ब्लॉक - IV

इकाई -13

शिक्षा [EDUCATION]

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 शिक्षा की परिभाषा (Definition of Education)

13.4 शिक्षा के कार्य (Functions of Education)

13.7 राज्य (State)

13.8 राज्य का विकास (Development of the State)

13.9 सारांश

13.10 मुख्य शब्द

13.11 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

13.12 संदर्भ ग्रन्थ

13.13अभ्यास प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

शिक्षा अंग्रेजी के 'एजुकेशन 'शब्द का हिन्दी अनुवाद है। अंग्रेजी के Education शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के निम्न तीन शब्दों से हुई है-

(i) Education Act of teaching or Training.

(ii) Educare To Educate: To Bring up: To Rise.

(iii) Educare To Bring Forth: To Lead Out.

इस प्रकार कहा जा सकता है कि "Education is the act of training, bringingup and leading out." प्रशिक्षण, सम्वर्द्धन और पथ-प्रदर्शन ही शिक्षा है।

(1) शिक्षा का संकुचित अर्थ (Narrower Meaning of Education) संकुचित अर्थों में शिक्षा का अर्थ बालक को स्कूल में दी जाने वाली शिक्षा से है। बालक को योजनाबद्ध तरीके से एक निश्चित समय और निश्चित विधि द्वारा जो ज्ञान प्रदान किया जाता है, उसे शिक्षा कहते हैं। इस प्रकार की शिक्षा कुछ विशेष प्रभावों और विषयों तक सीमित होती है। इस प्रकार की शिक्षा की विषय-वस्तु में वही बातें सम्मिलित की जाती हैं, जो बालक के जीवन के लिए लाभदायक होती है। बालक इस प्रकार की शिक्षा निश्चित स्थान (विद्यालय) में ग्रहण करता है।

(2) शिक्षा का व्यापक अर्थ (Wider Meaning of Education) व्यापक अर्थों में शिक्षा मानव की अंधकार से प्रकाश की ओर अनंत यात्रा है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जो आजीवन चलती रहती है। व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्यु तक जो कुछ सीखता और अनुभव प्राप्त करता है, वही उसकी शिक्षा है। सीखने की प्रक्रिया के कारण ही व्यक्ति सामाजिक वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करता है। मैकेन्जी ने व्यापक दृष्टि से शिक्षा के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है-"व्यापक अर्थ में शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो आजीवन चलती रहती है और जीवन के प्रायः प्रत्येक अनुभव से उसके भण्डार में वृद्धि होती है।"

राजनीति वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से व्यक्ति, समूह और संस्थाएँ समाज में निर्णय लेते हैं, अधिकार का प्रयोग करते हैं और संघर्षों का प्रबंधन करते हैं। इसमें शक्ति और संसाधनों का वितरण, कानूनों का निर्माण और उनका क्रियान्वयन, और सामूहिक जीवन का संगठन शामिल है। राजनीति शासन का केंद्र बिंदु है और यह स्थानीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तरों पर मौजूद होती है।

राजनीति के प्रमुख तत्व:

शक्ति (Power): दूसरों की क्रियाओं को प्रभावित या नियंत्रित करने की क्षमता।

अधिकार (Authority): समाज द्वारा मान्यता प्राप्त वैध शक्ति।

सरकार (Government): वह संस्था जो कानून बनाने और लागू करने के लिए जिम्मेदार होती है।

सार्वजनिक नीति (Public Policy): सरकार द्वारा समाजिक मुद्दों को संबोधित करने के लिए लिए गए निर्णय और कार्रवाई।

राजनीति विभिन्न रूप ले सकती है, जैसे लोकतंत्र, अधिनायकवाद या राजतंत्र, जो इस पर निर्भर करता है कि शक्ति का वितरण और निर्णय लेने की प्रक्रिया कैसे होती है। मूल रूप से, राजनीति इस बात को आकार देती है कि लोग एक साथ कैसे रहते हैं और अपने मतभेदों को कैसे सुलझाते हैं।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकेंगे।
- विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकेंगे।
- आर्थिक स्थिरता और वैश्विक प्रतिस्पर्धा को बढ़ाने के उपायों का विश्लेषण कर सकेंगे।

13.4 शिक्षा के कार्य (Functions of Education)

श्री जवाहरलाल नेहरू का विचार है कि "शिक्षा एकीकृत मानव का विकास करती है तथा नौजवानों को समाज के लिए उपयोगी कार्यों को करने के लिए तैयार करती है, जिससे वे सामूहिक जीवन में भाग ले सकें।" चूँकि शिक्षा गतिशील है। यही कारण है कि आदिकाल से लेकर आज तक इसमें अनेक परिवर्तन होते रहे हैं। शिक्षा मानव ज्ञान में वृद्धि करती है। यह मानव ज्ञान व्यक्ति को उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायता करता है। यही कारण है कि शिक्षा के बारे में विद्वानों के विचारों में मतभेद रहे हैं। जान डीवी का विचार है कि 'शिक्षा का कार्य-असहाय प्राणी के विकास में सहायता पहुँचाना है, ताकि वह सुखी, नैतिक और कुशल मानव बन सके।'

इसी प्रकार के विचार वेबस्टर ने भी व्यक्त किया है। उनके अनुसार 'शिक्षा का कार्य भावनाओं को अनुशासित, संवेगों को नियन्त्रित, प्रेरणाओं को उत्तेजित, धार्मिक भावना को विकसित और नैतिकता को अभिवृद्धित करना है।'

शिक्षा के प्रमुख कार्यों को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है

(1) मानव जीवन के कार्य (Function of Human Life) मानव जीवन की रक्षा तथा संवृद्धि और सामाजिक जीवन में मानव अनुकूलन की दृष्टि से शिक्षा के महत्वपूर्ण कार्य निम्नलिखित हैं-

(a) आवश्यकताओं की पूर्ति (Fulfillment of Needs) मानव आवश्यकताएँ अनन्त हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति अनिवार्य है। मानव जीवधारी है, अतः उसके लिए भोजन, वस्व और आवास अनिवार्य है। वह सामजिक प्राणी भी है, इस दृष्टि से उसे समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करने की आवश्यकता है।

(b) आत्म-निर्भरता (Self-Sufficiency) शिक्षा का महत्वपूर्ण कार्य है-व्यक्ति को अपने पैरों पर खड़े करना। स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है कि "केवल पुस्तकीय ज्ञान से काम नहीं चलेगा। हमें उस शिक्षा की आवश्यकता है, जिससे कि व्यक्ति अपने स्वयं के पैरों पर खड़ा हो सकता है।"

(c) व्यक्तित्व विकास (Personality Development) शिक्षा का महत्वपूर्ण कार्य है, छात्रों का सर्वांगीण विकास करना। फेडरिक ट्रेसी (Frederic Tracy) का विचार है कि "समस्त शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य-व्यक्तित्व के आदर्श की पूर्ण प्राप्ति है। यह आदर्श सन्तुलित व्यक्तित्व है।"

(d) चरित्र का विकास (Development of Character) मानव समाज का अवलोकन करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि जहाँ एक ओर वह चन्द्रमा पर पहुँच गया है, वहीं दूसरी ओर उसमें छल, कपट, झूठ आदि प्रवृत्तियाँ विकसित होती जा रही हैं। इसका परिणाम यह होगा कि मानव कितनी ही प्रगति क्यों न कर ले, इसे स्थायी नहीं कहा जा सकता है। इसलिए शिक्षा का यह महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व हो जाता है कि वह समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करे तथा उसमें नैतिक गुणों का समावेश करें। हर्बर्ट (Herbert) का विचार है कि "शिक्षा का कार्य उत्तम नैतिक चरित्र का विकास करना है।"

(c) अच्छे नागरिकों का निर्माण (Creation of Good Citizens) शिक्षा का महत्वपूर्ण कार्य है-उत्तम नागरिकों का निर्माण करना। आज भारत को कल्याणकारी राज्य कहा जाता है। इसलिए शिक्षा की भूमिका और भी महत्वपूर्ण है। डॉ. राधाकृष्णन का विचार है कि "कल्याणकारी राज्य से हमारा उद्देश्य-अपने सब नागरिकों को भोजन, कपड़ा और मकान की प्रारम्भिक आवश्यकताओं को पूरा करना ही नहीं होना चाहिए,122 वरन् उनको भाइयों के समान रहना सिखाना चाहिए-भले ही वे विभिन्न प्रजातियों, धर्मों और प्रान्तों के क्यों न हों।"

(f) जीवन के लिए तैयारी (Preparation for Life)- बिलमांट का विचार है कि 'शिक्षा जीवन की तैयारी है।'

इस दृष्टि से यह आवश्यक हो जाता है कि शिक्षा बालक को जीवन के लिए तैयार करे। स्वामी विवेकानन्द का विचार है कि "यदि कोई मनुष्य केवल कुछ परीक्षाएँ पास कर सकता है और अच्छे व्याख्यान दे सकता है, तो आप उनको शिक्षित समझते हैं। क्या वह शिक्षा शिक्षा कहलाने के योग्य है, जो सामान्य जन-समूह को जीवन के संघर्ष के लिए तैयार करने में सहायता नहीं देती हैं, और उसमें शेर का सा साहस उत्पन्न नहीं करती है।”

(g) भौतिक सम्पन्नता (Material Prosperity) शिक्षा जहाँ एक ओर व्यक्ति के सामाजिक जीवन में महत्वपूर्ण कार्य करती है, वहीं दूसरी ओर उसे भौतिक समृद्धता की ओर भी ले जाती है। भौतिक समृद्धता भी आज के जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। जॉन रस्किन (John Ruskin) का विचार है कि- "माता-पिता कहते हैं कि शिक्षा का मुख्य कार्य-उनके बच्चों को जीवन में अच्छे स्थान प्राप्त करने, बड़े और धनी व्यक्तियों के समाज में महत्वपूर्ण बनने और आराम तथा ऐश्वर्य का जीवन व्यतीत करने के लिए तैयार करना है।"

(h) व्यावसायिक कुशलता (Vocational Efficiency) व्यावसायिक कुशलता प्राप्त करने की दृष्टि से भी शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। खासकर भारत जैसे देश में जो औद्योगिकरण की ओर बढ़ रहा है-व्यावसायिक कुशलता अनिवार्य आवश्यकता है। व्यावसायिक कुशलता से जहाँ एक ओर रोजगार के अवसर बढ़ेंगे, वहीं दूसरी ओर इससे उत्पादन में भी वृद्धि होगी।

(i) वातावरण से अनुकूलन (Adaptation to Environment) अनुकूलन व्यक्ति की प्रगति और विकास का आधार है। अनुकूलन के अभाव में मानव के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती है। शिक्षा व्यक्ति को वातावरण के साथ अनुकूलन स्थापित करने की शिक्षा देती है। थॉमसन (Thomson) का विचार है कि- "वातावरण, शिक्षक है, और शिक्षा का कार्य है-छात्र को उस वातावरण के अनुकूल बनाना, जिससे कि वह जीवित रह सके और अपनी मूल प्रवृत्तियों को संतुष्ट करने के लिए अधिक से अधिक सम्भव अवसर प्राप्त करे।"

(j) वातावरण का संशोधन (Modification of Environment) जॉन डीवी के अनुसार शिक्षा का कार्य व्यक्ति को वातावरण के साथ अनुकूलन स्थापित करने की शिक्षा देना ही नहीं है। क्योंकि "वातावरण से पूर्ण अनुकूलन करने का अर्थ है-मृत्यु। आवश्यकता इस बात की है कि वातावरण पर नियन्त्रण रखा जाये।" इस नियन्त्रण का तात्पर्य यह है कि वातावरण को अपनी परिस्थिति के अनुसार संशोधित किया जाये। यह संशोधन भी शिक्षा के द्वारा ही सम्भ्व है।

(k) अनुभवों का पुनर्संगठन (Reorganization of Experiences) जॉन डीवी ने लिखा है कि "शिक्षा का मुख्य कार्य है-प्रत्येक पग पर अनुभवों द्वारा जीवन को समृद्ध बनाना। व्यक्ति जीवन की अनन्त यात्रा में अनेक अनुभव प्राप्त करता है। शिक्षा व्यक्ति को भावी प्रगति में अतीत के अनुभवों का ज्ञान कराती है।"

(1) व्यावहारिक ज्ञान (Practical Knowledge) शिक्षा का अन्तिम महत्वपूर्ण कार्य है- व्यक्ति को जीवन के विविध क्षेत्रों में व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करना। व्यावहारिक ज्ञान के अभाव में शिक्षा अंधी और अपंग है। स्वामी विवेकानन्द का विचार है कि "तुमको कार्य के सब क्षेत्रों का व्यावहारिक ज्ञान करना आवश्यक है। सिद्धान्तों के अभाव से देश का नाश हो गया है।"

(2) राष्ट्रीय जीवन के कार्य (Functions of National Life) भू-भाग को राष्ट्र का शरीर और व्यक्ति को उसका प्राण कहा जाये, तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। किसी भी राष्ट्र का उत्थान और पतन उस देश में निवास करने वाले व्यक्तियों की श्रेष्ठता और हीनता पर आधारित होता है। मैकाइवर ने लिखा है कि "राष्ट्र का गुण उसकी सामाजिक इकाइयों का गुण है, अर्थात सामाजिक इकाइयों का सामूहिक जीवन ही राष्ट्रीय जीवन है। यदि ईंधन ही खराब है, तो

ज्योति कैसे तेज हो सकती है-अर्थात् यदि सामाजिक इकाइयाँ निर्बल हैं, तो राष्ट्र कैसे दैदीप्यमान हो सकता है।"

(a) नेतृत्व प्रशिक्षण (Leadership Training) लोकतन्त्र की सफलता उसके नागरिकों के कर्तव्य प्रशिक्षण पर आधारित है। इसका तात्पर्य यह है कि लोकतन्त्र की सफलता नेतृत्व में अनुशासन और प्रशिक्षण पर आधारित है। शिक्षा व्यक्तियों को प्रशिक्षित करके उन्हें सामाजिक राजनैतिक और औद्योगिक क्षेत्रों में नेतृत्व का कार्य सौपती है। डॉ. आर. एस. मणि (R.S.Mani) का विचार है कि "विशेष रूप से इस समय जबकि देश में लोकतन्त्र, जीवन का ढंग हो गया है, अच्छे नेतृत्व की आवश्यकता है। सच्चे नेतृत्व के लिए सेवा की भावना के साथ-साथ अच्छे प्रशिक्षण की आवश्यकता है।"

(b) राष्ट्रीय विकास (National Development) शिक्षा के अभाव में किसी भी राष्ट्र के विकास की कल्पना नहीं की जा सकती है। शिक्षा के अभाव में राष्ट्रीय विकास की योजनाएँ सफल नहीं हो सकती हैं। शिक्षा के द्वारा ही सफल नागरिकता का विकास होगा, जो राष्ट्रीय विकास की पहली दशा है।

(c) राष्ट्रीय एकता (National Integration) शिक्षा किसी भी राष्ट्र की एकता का आधार है। प्रत्येक देश में कुछ न कुछ समस्याएँ होती हैं, जो उस देश के नागरिकों के दृष्टिकोण को संकुचित बनाती हैं। शिक्षा मानव समाज के दृष्टिकोण को व्यापक बनाती है। व्यापक दृष्टिकोण वाले व्यक्ति राष्ट्रीय एकता में सहायक होते हैं। पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने लिखा है कि "राष्ट्रीय एकता के प्रश्न में जीवन की प्रत्येक वस्तु आ जाती है। शिक्षा का स्थान इन सबसे ऊपर है।"

(d) राष्ट्रीय अनुशासन (National Descipline) शिक्षा मनुष्य में अनेक गुणों को विकसित करती है। इन गुणों की सहायता से राष्ट्रीय एकता और स्वतन्त्रता को बनाये रखने में मदद मिलती है। इन गुणों के विकास का आधार है-राष्ट्रीय अनुशासन। शिक्षा राष्ट्रीय अनुशासन की आधार-शिला है। इसीलिए डॉ. राधाकृष्णन ने कहा है कि "राष्ट्रीय एकता और मेल का आधार है-राष्ट्रीय अनुशासन ।"

(c) भावात्मक एकता (Emotional Integration) भारत विविधताओं का देश है। हमें अपनी इन विविधताओं पर गर्व है। हमारी महत्वाकाक्षाएँ हमें राष्ट्रीय एकता के सूत्र में बाँधती है। शिक्षा उचित दृष्टिकोणों को विकसित करती है। उचित दृष्टिकोणों के विकसित हो जाने से भावात्मक एकता का विकास होता है। इस प्रकार किसी भी देश के नागरिकों में भावात्मक एकता को विकसित करने के लिए शिक्षा की भूमिका महत्वपूर्ण है।

(1) सामाजिक कर्तव्यों का ज्ञान (Knowledge of Social Duties) डॉ. जाकिर हुसैन का विचार है कि 'प्रजातन्त्रीय समाज में यह आवश्यक है कि व्यक्ति नैतिक और भौतिक-दोनों प्रकार से समाज के जीवन को उत्तम बनाने के सम्मिलित उत्तरदायित्व को सहर्ष स्वीकार करे।' सामाजिक कर्तव्य को लोकतन्त्र की शिक्षा कहा जाता है। शिक्षा लोगों को नागरिकता का ज्ञान कराती है, जिससे व्यक्ति अपने समाज और राष्ट्र के प्रति कर्तव्यों को जान जाते हैं। इसलिये ऐसा कहा जाता है कि व्यक्ति में नागरिक तथा सामाजिक कर्तव्यों काबोध कराने में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है।

(g) सामाजिक कुशलता (Social Efficiency) डॉ. अलफ्रेड (Alfred Adler) का विचार है कि 'मनुष्य के उचित कार्य केवल वही हैं, जो समाज के लिए उपयोगी हैं।' व्यक्तियों के कार्यों की उपयोगिता का आधार उन्हें प्राप्त शिक्षा और प्रशिक्षण है। शिक्षा व्यक्तियों को उचित ज्ञान प्रदान करती है, जिससे उसमें सामाजिक कुशलता का विकास होता है।

(h) सामूहिक कल्याण की भावना (Feeling of Group Welfare) समूहवाद और व्यक्तित्वाद मानव विचार की दो भावनायें हैं। शिक्षा व्यक्तिगत हित को सार्वजनिक हित के अधीन रहने का प्रशिक्षण प्रदान करती है। इसका परिणाम यह होता है कि व्यक्ति अपने हितों को राष्ट्रीय तथा सामाजिक हितों से निम्न समझता है। इससे व्यक्ति में सामूहिक कल्याण की भावना का विकास होता है। इस प्रकार की भावना को विकसित करने में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है।

(i) कुशल श्रमिकों की पूर्ति (Supply of Skilled Workers) शिक्षा का राष्ट्रीय जीवन में सबसे बड़ा महत्व इसलिये है कि शिक्षा कुशल श्रमिकों की पूर्ति करती है। कुशल श्रमिक अकुशल श्रमिकों की तुलना में अधिक उत्पादन करते हैं।

इससे राष्ट्रीय समृद्धि को बढ़ावा मिलता है। प्रो. हुमायूँ कबीर (Humayun Kabir) ने लिखा है कि "शिक्षित श्रमिक अधिक उत्पादन में योग देंगे और इस प्रकार उद्योग तथा व्यवसाय दोनों को अधिक उन्नति होगी।"

(j) चरित्र प्रशिक्षण (Character Training)- प्लेटो का कथन अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है कि "शिक्षा का सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य और कार्य-मानव प्रकृति और चरित्र को प्रशिक्षित करना है। मानव को भारी विनाश और पतन से बचाने का एक ही उपाय है और वह है शिक्षा। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति के शरीर, मन और आत्मा का परिष्कार होता है। जिससे वह प्राणिशास्त्रीय जीव (Biological Animal) सामाजिक जीव (Social Animal) में बदल जाता है।

(k) नैतिक प्रशिक्षण (Moral Training)- बुक्स (Charles Broocks) के अनुसार 'नैतिकता में सभी गुण आ जाते हैं, जो मनुष्यों के आचरण को नियमित करते हैं। इन गुणों से युक्त व्यक्ति राष्ट्र की बहुमूल्य शक्ति बन जाता है।' व्यक्ति में इस शक्ति के विकास में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वोचर (H.W.Boecher) का विचार है कि 'प्रत्येक युवक को याद रखना चाहिये कि सभी सफल कार्यों का आधार नैतिकता है।'

(1) संस्कृति का ज्ञान (Knowledge of Culture) प्रत्येक देश की अपनी सांस्कृतिक विरासत होती है। देश का उस सांस्कृतिक विरासत से परिचित होना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। शिक्षा वह माध्यम है, जो हमें अपने राष्ट्र की संस्कृति से परिचय प्राप्त करने में सहायक होती है तथा इसे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित करती है। प्रत्येक व्यक्ति को राष्ट्र की सांस्कृतिक सामग्री से परिचित कराना शिक्षा का महत्वपूर्ण कार्य है।

अन्त में कहा जा सकता है कि शिक्षा का राष्ट्रीय तथा व्यक्तिगत जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। किसी भी राष्ट्र के प्रगति की तब तक कल्पना नहीं की जा सकती है, जब तक कि वह अपने नागरिकों को शरीर, मन, आत्मा और चरित्र की शिक्षा न दे।

13.5 राजनीति [POLITICS]

संसद से लेकर गलियारों तक गाँवों से लेकर शहरों तक पान-चाय की दुकानों से लेकर, बड़ी बड़ी संस्थाओं तक आज जो सर्वाधिक चर्चा का विषय है, वह है- राजनीति। विद्वान-अनपढ़, किसान-चरवाहा, दुकानदार-नेता, सभी जन अपनी चर्चाओं में राजनीति शब्द का प्रयोग करते हैं। कहने का तात्पर्य केवल इतना है कि 'राजनीति' शब्द आम चर्चा का विषय बन गया है। आम चर्चा में राजनीति शब्द का प्रयोग करने वाले भी यह नहीं जानते कि राजनीति का वास्तविक अर्थ क्या है और एक संस्था के रूप में इसकी क्या प्रासंगिकता है ?

राजनीति का अर्थ (Meaning of Politics)

अंग्रेजी के 'पोलिटिक्स' (Politics) शब्द का हिन्दी अनुवाद राजनीति है। ऊपरी तौर से राजनीति शब्द की अवधारणा अत्यन्त ही सरल तथा जानी-पहचानी लगती है, किन्तु जैसे ही जैसे इसके अर्थ को जानने का प्रयास किया जाता है, इसका अर्थ और भी गूढ़ होता जाता है तथा इसकी जटिलता और भी अधिक बढ़ जाती है। राजनीति के दो अर्थ हैं.

1. पहला- यह सर्वगुण सम्पन्न राज्य और समाज व्यवस्था है, और

2. दूसरा- यह राज्य और राज्य व्यवस्था (Polity) की ओर संकेत करती है।

इस प्रकार 'राजनीति' जहाँ एक ओर विज्ञान (Science) है, वहीं दूसरी ओर यह एक प्रक्रिया (Process) भी है, किन्तु इन दोनों अर्थों को एक दूसरे से अलग करके नहीं देखा जा सकता है। शास्त्र के रूप में 'Politics' शब्द का प्रयोग अत्यंत प्राचीन है। उदाहरण के तौर पर -

1. अरस्तू Politics

2 हान्स De Cive

3. चार्ल्स मरियम Systematic Politics

4. कैटलिन Systematic Politics

अरस्तू की पुस्तक ईसा पूर्व चौथी शताब्दी की है, तब से Politics शब्द का निरन्तर प्रयोग होता आया है। प्रेटो, अरस्तू, कौटिल्या, आदि विद्वानों ने राज्य शास्त्र को अत्यन्त ही व्यापकता प्रदान की है। श्री ज्ञान सिह सन्ध ने राजनीति

की परिभाषा करते हुए लिखा है कि 'राजनीति की परिभाषा उन सभी प्रक्रियाओं के रूप में की जा सकती है, जिनके माध्यम से एक समाज अपने इतिहास का निर्माण करता है और ऐतिहासिक चुनौतियों और माँगों का सामना करता है।' संकुचित अर्थों में राजनीति को समाज में नियंत्रण और प्रभावों की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

दुवर्जे ने अपनी पुस्तक 'The Idea of Politics' में लिखा है कि 'राजनीति युद्ध की जगह बातचीत, हथियारों की जगह संवाद, घूंसों की जगह तर्क-वितर्क तथा बन्दूकों की जगह चुनावों में बहुमत की स्थापना करती है।'

इस प्रकार स्पष्ट है कि राजनीति का अध्ययन दो पहलुओं पर आधारित है। पहला पहलू जो राजनीति को एक शास्त्र अथवा विज्ञान मानकर अध्ययन करता है। जबकि दूसरा पहलू राजनीति को एक प्रक्रिया मानकर अध्ययन करता है। जब राजनीति का अध्ययन प्रक्रिया के रूप में किया जाता है तो इसमें राज्य (Polity or state) और राज्य व्यवस्था को सम्मिलित किया जाता है, जिसमें राज्य प्रबन्धन, सामाजिक प्रबन्ध, आर्थिक प्रबन्धन, आदि विविध विषयों को सम्मिलित किया जाता है। इस दृष्टिकोण से राज्य (State) का अध्ययन आवश्यक है।

13.6 राज्य (State)

राज्य राजनीति का मेरूदण्ड है। समकालीन संस्थाओं में परिवार, नातेदारी, धर्म और शिक्षा जैसी संस्थाएँ महत्वपूर्ण तो हैं, राज्य भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। अपितु दूसरे शब्दों में इन संस्थाओं से अधिक महत्वपूर्ण है। इसका कारण यह है कि राज्य का जैसा स्वरूप होगा, परिवार, नातेदारी, धर्म, शिक्षा आदि संस्थाओं का भी वही स्वरूप होगा। ऐसी स्थिति में राज्य महत्वपूर्ण है। कहा भी जाता है कि जैसा राजा, वैसी प्रजा। हरिश्चन्द्र के जमाने में जनता की जो सोच थी, आज वैसी सोच नहीं रह गई है। इसका कारण यह था कि पहले राजा जनता की सुख-सुविधा के हिसाब से कानूनों का निर्माण करता था, किन्तु आज अपनी सुख सुविधाओं के लिए जनता के सुख- सुविधाओं की बलि दी जाती है। अतः स्पष्टतः ऐसा कहा जाता है कि राज्य ही वह संस्था है, जो अन्य संस्थाओं के लिए पथ प्रदर्शन का कार्य करती है।

राज्य की परिभाषा (Definition of State)

विभिन्न विद्वानों ने राज्य की अवधारणा को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। इन्हीं विद्वानों द्वारा दी गई राज्य की परिभाषाएँ इस प्रकार हैं-

(1) बर्गेस "राज्य एक संगठित इकाई के रूप में मानव जाति का विशिष्ट भाग है।

(2) विल्सन "राज्य एक ऐसा जन-समूह है, जो एक निश्चित प्रदेश में नियम या विधि द्वारा संगठित

(3) सिसरो "राज्य एक ऐसा बहुसंख्यक समुदाय है, जो अधिकारों की समान भावना तथा लाभ उठाने में आपसी सहयोग द्वारा जुड़ा है।"

राज्य के तत्व

(Elements of the State)

अरस्तू की परिभाषा से राज्य के दो तत्व ज्ञात होते हैं- (i) मानव-समूह, और (ii) पूर्ण जीवन को प्राप्त करने का उद्देश्य। परन्तु ये लक्षण नगर राज्य पर लागू हो सकते हैं। मध्यकाल में भी राज्य के ही दो लक्षण माने जाते रहे- (i) राज्य सवर्वोत्कृष्ट समुदाय है, (ii) राज्य का उद्देश्य सर्वाधिक हित को सम्पादित करना है। आधुनिक परिभाषाओं के अनुसार राज्य के लिए निम्न तत्व आवश्यक हैं -

(1) संगठित जनसमूह राज्य का सबसे प्राथमिक तत्व जनसमूह है। एक संगठित जनसमूह की अनुपस्थिति में राज्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

(2) निश्वित भूखण्ड राज्य का दूसरा तत्व एक निश्चित भूखण्ड है। राज्य में संगठित जनसमूह एक निश्चित प्रदेश में रहता है। वुडरो विल्सन (Woodrow Wilson) ने लिखा है- "राज्य एक निश्चित प्रदेश में कानून के लिये संगठित एक जनसमूह है।"

(3) शासन या सरकार राज्य का तीसरा महत्वपूर्ण तत्व एक सुदृढ़ सरकार (Government) है। इसीलिए प्रो. लास्की ने कहा है कि "राज्य सरकार और

शासित में विभाजित और अपने निश्चित क्षेत्रफल के भीतर समस्त संस्थाओं पर आधिपत्य का दावा करने वाला एक प्रादेशिक समाज है। सरकार या शासन के अभाव में राज्य बन ही नहीं सकता।"

(4) सम्प्रभुता राज्य का अंतिम तत्व है सर्वोत्कृष्ट प्रभुसत्ता (Sovereignty)। प्रभुसत्ता के अभाव में राज्य नहीं हो सकता। इस प्रकार राज्य उसे ही कहा जाएगा, जिसके पास निश्चित क्षेत्रफल या भू-भाग हो, उस पर जनसंख्या निवास करती है, उनकी एक सरकार हो और वे पूर्ण रूप से प्रभुसत्ता अपने पास रखता हो।

राज्य की उत्पत्ति के सिद्धान्त (Theories of the Origin of state)

राज्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में निम्न सिद्धान्त उल्लेखनीय है-

(1) दैवी-सिद्धान्त (Divine Theory) यह सिद्धान्त अति प्राचीन है, जिसके अनुसार राज्य की उत्पत्ति ईश्वर द्वारा बतलाई जाती है। शासक राजा तथा सम्राट भगवान के प्रतिनिधि हैं। इनकी आज्ञा का उल्लंघन ईश्वरीय आज्ञा को तोड़ना है। इस प्रकार राजाज्ञा का उल्लंघन भयंकर पाप है। इस सिद्धान्त का

सर्वप्रथम प्रचलन इंग्लैण्ड के स्टुअर्ट राजाओं ने किया। भारत में भी प्राचीनकाल में इस सिद्धान्त को काफी बल मिला था। मिस्व, जापान और फारस आदि देशों में दैवी सिद्धान्त का प्रचलन काफी दिनों तक रहा।

(2) शक्ति-सिद्धान्त (Force Theory) कुछ विचारकों के अनुसार राज्य की उत्पत्ति का आधार शक्ति है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि शक्ति सिद्धान्त की उत्पत्ति उस समय से हुई जब सबसे शक्तिशाली व्यक्ति ने बाकी सभी व्यक्तियों को अपने अधिकार में कर लिया। फिर उसने अपने सुमर्थकों का एक वर्ग तैया किया और नियमित रूप से प्रशासन शुरू कर दिया। यह सिद्धान्त 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाले सिद्धान्त पर आधारित है।

(3) सामाजिक समझौता का सिद्धान्त (Social Contract Theory) राज्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में इस सिद्धान्त का स्थान महत्वपूर्ण है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्राचीन काल में राज्य एवं प्रशासन की स्थापना की दृष्टि से एक समझौता हुआ था। मनुष्य ने अपनी सुरक्षा एवं सुविधा के लिए इस प्रकार के

पारस्परिक समझौते द्वारा राज्य की स्थापना की थी। यह एक सामाजिक समझौता था, जिसके अनुसार एक

सुसंगठित राज्य बनाया था। इस सिद्धान्त के प्रमुख समर्थक हाब्स, लॉक और रुसो हैं।

(4) पैतृक सिद्धान्त (Patriarchal Theory) हेनरी मेन इस सिद्धान्त के प्रमुख समर्थक हैं। इसके सिद्धान्त के अनुसार राज्य परिवार का विस्तृत रूप है। इसका विश्वास था कि आदिम सामाजिक वर्ग पुरुष, स्त्री और बच्चों से युक्त परिवार के रूप में संगठित था। परिवार का प्रशासन एवं व्यवस्था करने की दृष्टि से परिवार का सम्पूर्ण संचालन परिवार के मुखिया के हाथों में था। परिवार के सभी सदस्य इस मुखिया की अधीनता में रहते थे। धीरे-धीरे परिवार ने संयुक्त रूप से राज्य की स्थापना की। हेनरी मेन का विश्वास है कि परिवारों में संयुक्त एवं संगठित रूप से गोत्र और अनेक गोत्रों से कबीला तथा अनेक कबीलों से राज्य का संगठन हुआ ।

(5) मातृक सिद्धान्त (Matriarchal Theory) इस सिद्धान्त के समर्थक मेलेनन (Melanan) तथा मॉर्गन (Morgan) थे। इस सिद्धान्त के अनुसार आदिम समाज में स्वी सब प्रकार से परिवार संगठन की अधिकारिणी थी। वंश-परम्परा स्वी के नाम से चलती थी। मातृ-प्रधान-परिवारिक संगठन धीरे-धीरे राज्य के रूप में विकसित हो गये।

(6) विकास सिद्धान्त (Evolutionary Theory) राजनीतिज्ञों की धारणा है कि राज्य की उत्पत्ति किसी निश्चित समय में नहीं हुई, बल्कि इसका विकास दीर्घकाल में शनैः शनैः हुआ है। इस सिद्धान्त के समर्थक बर्गेस और गार्नर हैं। यह सिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि राज्य की उत्पत्ति न तो किसी निश्चित समय पर हुई और न किसी निश्चित कारण से हुई, बल्कि राज्य का विकास अनेक स्रोतों के सहयोग से हुआ।

13.7 राज्य का विकास (Development of the State)

जैसा कि विकासवादी सिद्धान्त से स्पष्ट है कि राज्य की उत्पत्ति में अनेक तत्वों का योग है, यहाँ उन्हीं तत्वों पर विचार किया जाएगा जो राज्य की उत्पत्ति में सहायक रहे हैं-

(1) रक्त-सम्बन्ध (Blood Relation) प्राचीन कालीन सामाजिक संस्थाओं के संगठन से स्पष्ट है कि मानव-जीवन की अनेक संस्थाओं के निर्माण का आधार रक्त सम्बन्ध रहा है। मानव का प्रथम रक्त सम्बन्धी संगठन परिवार के रूप में विकसित हुआ। एक पूर्वज की भावना एवं समान रक्त की विचारधारा से परिवार संगठन निर्मित हुआ। परिवार-संस्था के विकास से अनेक आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक संस्थाएँ बनीं। इस प्रकार राज्य की संस्था के विकास में समान रुधिर के तत्व का स्थान महत्वपूर्ण रहा है।

(2) धर्म (Religion) राज्य के विकास का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व धर्म है। रक्त-सम्बन्धों के आधार पर जिस संगठन का जन्म हुआ उसको धर्म के तत्व ने बलशाली एवं स्थायी बनाने में योग दिया। धर्म से एकता की भावना और कर्तव्य-परायणता के विचार विकसित हुए। धर्म एक शक्ति तत्व के रूप में माना जाता था। इस प्रकार राज्य के विकास में धर्म का तत्व भी उल्लेखनीय रहा है।

(3) आर्थिक आवश्यकताएँ (Economic Needs) मनुष्य की आर्थिक आवश्यकताओं ने उसे समाजशास्त्र बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर- संगठित रूप में रहने के लिए बाध्य किया है। विकास की तीसरी अवस्था कृषि-युग की अवस्था थी। कृषि के कार्य का सम्पादन एक व्यक्ति से नहीं हो सकता। इस दृष्टि से संयुक्त परिवार एवं ग्रामों का विकास हुआ। इन संस्थाओं और संगठनों ने राज्य की संस्था को विकसित किया, क्योंकि आर्थिक क्रियाओं, सम्पत्ति, स्वामित्व, आदि की समस्याओं का निवारण करने हेतु एक ऐसे प्रशासन संगठन की आवश्यकता पड़ी जो वर्तमान युग में राज्य कहलाता है।

(4) राजनैतिक चेतना (Political Consciousness) जनसंख्या में वृद्धि, आर्थिक क्रियाओं का विकास, सामाजिक संगठनों की अभिवृद्धि के कारकों ने आदिम मानव में राजनैतिक चेतना को जन्म दिया। इस दृष्टि से आन्तरिक व्यवस्था, शान्ति, सुरक्षा एवं नेतृत्व के तत्व विकसित हुए, जो धीरे-धीरे

राजनैतिक चेतना के रूप में परिणित हुए। इस चेतना के फलस्वरूप राज्य एवं सरकार की विचारधाराओं को जन्म मिला।

(5) कानून और व्यवस्था की आवश्यकता (Need of Law and Order) इस प्रकार प्रगति एवं विकास की गति से प्राचीन मनुष्य को यह सोचने को बाध्य होना पड़ा कि समाज की व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए कानून और व्यवस्था आवश्यक है। मानव की स्वच्छ क्रियाएँ वर्तमान व्यवस्था में बाधा उत्पन्न करने लगीं। जब समाज की अन्य संस्थाओं का प्रभाव कम होने लगा तो मनुष्य ने जीवन को विधिवत् चलाने के लिए कानून बनाये। कानून एवं व्यवस्था के निर्माण हेतु राज्य का संगठन हुआ।

राज्य के कार्य

(Functions of the State)

राज्य के कार्यों को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है -

(1) अनिवार्य कार्य ये वे कार्य हैं, जिन्हें कि राज्य अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए करता है। प्रत्येक राज्य के लिए यह आवश्यक होता है कि वह बाहरी आक्रमणों से अपनी रक्षा करे। इसके साथ ही आन्तरिक शान्ति और व्यवस्था भी राज्य के लिए आवश्यक है; अन्यथा राज्य का अस्तित्व ही समाप्त हो सकता है। संक्षेप में राज्य के अनिवार्य कार्य निम्न हैं-

((

a) सुरक्षात्मक कार्य (Protective Functions) ।

b) न्यायिक कार्य (Judicial Functions)।

(c) समाज व्यवस्था (Social Adjustment) |

(2) ऐच्छिक कार्य अनिवार्य कार्यों के अलावा राज्य के कुछ ऐच्छिक कार्य भी होते हैं, इनको ऐच्छिक इसलिए कहा जाता है, क्योंकि इनकी संख्या निश्चित नहीं है और इनके न करने पर भी राज्य का अस्तित्व स्थायी रह सकता है। संक्षेप में ये ऐच्छिक कार्य निम्न है-

(a) शिक्षा (Education)।

(b) स्वास्थ्य (Health)।

(c) सामाजिक सुरक्षा (Social Security) |

(d) यातायात एवं परिवहन (Transport and Communication)।

(c) व्यापार और उद्योग (Commerce and Industry) |

(1) सूचना एवं मनोरंजन (Information and Recreation) ।

कल्याणकारी राज्य के कार्य (Functions of Welfare State) कल्याणकारी राज्य के लिए उपर्युक्त सभी कार्यों को करना आवश्यक है। यद्यपि उपर्युक्त सभी कार्य एवं कर्तव्यों का करना प्रत्येक कल्याणकारी राज्य के लिए आवश्यक है, लेकिन इन कार्यों के अलावा भी कुछ ऐसे कार्य हैं जिन्हें कल्याणकारी राज्य करता है। कल्याणकारी राज्य में राज्य की आर्थिक शक्तियाँ इस रीति से कार्य करती हैं जिससे आय का समान वितरण (Equal Distribution of Income) हो जाये, और इस प्रकार प्रत्येक नागरिक को उसके कार्य के आँके गये मूल्य अथवा सम्पत्ति का भेदभाव किये बिना कम से कम वास्तविक आय की प्रत्याभूति हो जाये। कल्याणकारी राज्य को शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, कला, साहित्य, मनोरंजन तथा प्रत्येक नागरिक की जीविकोपार्जन की व्यवस्था करने के साथ-साथ सामाजिक सुरक्षा, जीवन बीमा एवं अपाहिजों तथा पिछड़े वर्गों के व्यक्तियों, आश्रितों आदि की शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए।

आजकल विश्व का प्रत्येक राज्य कल्याणकारी राज्य की भावना से ओत-प्रोत है। भारत भी एक कल्याणकारी राज्य है। यहाँ नागरिकों को शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा, व्यवसाय, भ्रमण, विचार-प्रदर्शन के अधिकारों के साथ-साथ राजनैतिक, सामाजिक धार्मिक अधिकार भी प्राप्त हैं। भाषा, धर्म, जाति आदि की दृष्टि से भी यहाँ प्रत्येक नागरिक स्वतन्त्र है। इस दृष्टि से भी भारत समाजवादी समाज की स्थापना में प्रयत्नशील है। सवर्वोदय एवं सामूहिक सम्पत्ति तथा सबके हित की विचारधारा भारतीय कल्याणकारी राज्य की प्रमुख विचारधारा है।

स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्न :

प्रश्न: 1. शिक्षा और राजनीति का संबंध क्या है?

प्रश्न: 2. शिक्षा राजनीति को कैसे प्रभावित करती है?

प्रश्न: 3. राजनीति शिक्षा को कैसे प्रभावित करती है?

13.8 सारांश

समाजशास्त्र में शिक्षा और राजनीति का अध्ययन समाज की संरचना और विकास को समझने के लिए महत्वपूर्ण है। शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है जो ज्ञान, मूल्यों और कौशलों के माध्यम से व्यक्तियों को समाज में एकीकृत करती है। यह सामाजिक एकता, आर्थिक विकास और सांस्कृतिक स्थिरता में योगदान करती है। वहीं, राजनीति शक्ति और अधिकार के वितरण, निर्णय लेने, और समाज के संसाधनों के प्रबंधन की प्रक्रिया है। राजनीति सामाजिक न्याय, समानता और जनहित के लिए नीतियां बनाकर समाज को संचालित करती है। शिक्षा और राजनीति मिलकर सामाजिक परिवर्तन और प्रगति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, क्योंकि शिक्षा व्यक्तियों को सशक्त बनाती है और राजनीति उन्हें अपने अधिकारों और कर्तव्यों का उपयोग करने का मंच प्रदान करती है।

13.9 मुख्य शब्द

1. व्यवहारिक ज्ञान: अनुभव और अभ्यास से प्राप्त समस्याओं का व्यावहारिक समाधान देने वाली क्षमता।

2. पुनर्संगठन : किसी संस्था या प्रणाली को नए तरीके से व्यवस्थित करना।

3. संस्कृति ज्ञान: किसी समाज की परंपराओं, मान्यताओं, और रीति-रिवाजों की समझ।

4. संप्रभुता: स्वतंत्र रूप से निर्णय लेने और शासन करने की सर्वोच्च शक्ति।

5. संगठित जन समूह: एक निश्चित उद्देश्य के लिए संरचित और एकजुट लोगों का समूह।

6. राजनीतिक चेतना: समाज में राजनीति, अधिकार और कर्तव्यों के प्रति जागरूकता।

13.10 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर:1. शिक्षा समाज में जागरूकता और राजनीति को दिशा प्रदान करती है, जबकि राजनीति शिक्षा के लिए नीतियां बनाती है।

उत्तर :2. शिक्षा राजनीतिक विचारधारा और सामाजिक न्याय के प्रति समझ और जागरूकता बढ़ाती है।

उत्तर: 3. राजनीति शिक्षा के लिए नीतियां, बजट और संस्थागत निर्णय निर्धारित करती है।

13.11 संदर्भ ग्रन्थ

- बालकृष्णन, पी. (2022). *भारतीय अर्थव्यवस्था की पुनर्प्राप्ति: राजनीतिक अर्थव्यवस्था दृष्टिकोण*. नई दिल्ली: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
- बसु, के. (2018). *विश्वासों का गणराज्य: कानून और अर्थशास्त्र के लिए एक नया दृष्टिकोण*. प्रिंसटन, एनजे: प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।
- घोष, ए. (2021). *भारत की उभरती अर्थव्यवस्था: 21वीं सदी में प्रदर्शन और संभावनाएँ*. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- पनगढ़िया, ए. (2020). *भारत अनलिमिटेड: खोई हुई महिमा को पुनः प्राप्त करना*. न्यूयॉर्क: हार्पर कॉलिन्स।
- नागराज, आर. (2019). *भारत में आर्थिक विकास और विकास: नए दृष्टिकोण*. नई दिल्ली: रूटलेज।

13.12 अभ्यास प्रश्न

1. शिक्षा की व्याख्या कीजिए। समझाइए कि शिक्षा सामाजिक स्तरीकरण का आधार है।

2. समाज में शिक्षा के कार्यों या महत्व की विवेचना कीजिए।

3. सामाजिक स्तरीकरण के आधार के रूप में शिक्षा की विवेचना कीजिए।

इकाई -14

समाज एवं संस्कृति (SOCIETY AND CULTURE)

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 संस्कृति का अर्थ (Meaning of Culture)

14.4 संस्कृति की विशेषताएँ (Characteristics of Culture)

14.5 उपादान-सांस्कृतिक तत्व, संस्कृति संकुल और सांस्कृतिक क्षेत्र (Components: Cultural Element, Culture Complex and Cultural Area)

14.6 संस्कृति-संकुल (Culture Complex)

14.7 सांस्कृतिक विलम्ब की परिभाषा (Definition of Cultural Lag)

14.8 सांस्कृतिक संघर्ष की परिस्थितियाँ (Condition of Cultural Conflict)

14.9 सांस्कृतिक समन्वय (Cultural Synthesis)

14.10 संस्कृति और सभ्यता (Culture and Civilization)

14.11 सभ्यता और संस्कृति में अन्तर (Difference between Culture and Civilization)

14.12 सभ्यता और संस्कृति का संबंध (Relationship between Civilization and Culture)

14.13 सार संक्षेप

14.14 मुख्य शब्द

14.15 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

14.16 संदर्भ ग्रन्थ

14.17 अभ्यास प्रश्न

14.1प्रस्तावना

समाज में अनेक जीवधारी हैं। इन जीवधारियों में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ है। उनकी इस सर्वश्रेष्ठता का आधार संस्कृति है। संस्कृति मानव की सबसे महत्वपूर्ण सम्पत्ति है जिसके कारण ही मानव, पशु-समाज से पृथक् है। मनुष्य के विकास में सांस्कृतिक वातावरण का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा है और यही संस्कृति उसके समाजीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है। ये आवश्यकताएँ भौतिक और अभौतिक-दोनों प्रकार की हो सकती है। चूँकि मनुष्य अन्य जीवधारियों की तुलना में कहीं अधिक बुद्धिमान और विवेकशील प्राणि है, अतः वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति बौद्धिकता के आधार पर करता है। साथ ही, भूत, वर्तमान का ज्ञान होता है भविष्य के बारे में चिन्तन करता है। ये चिन्तन सामाजिक आर्थिक राजनैतिक धार्मिक आदि सभी प्रकार के हो सकते हैं। उन्हीं के संचित समुच्चय को संस्कृति कहा जाता है। संस्कृति के संचित समुच्चय मानव-समाज को प्रेरणा प्रदान करते रहते हैं इसलिए डॉ. मंगलदेव शास्त्री ने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि किसी देश या समाज में विभिन्न जीवन-व्यापारों में या सामाजिक संबंधों में मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करने वाले आदर्शों को ही संस्कृति समझना चाहिए।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. समाज की संरचना को समझना: समाज में विभिन्न समूहों, वर्गों और उनके कार्यों को समझना।

2. संस्कृति का विश्लेषण: संस्कृति के तत्वों जैसे मान्यताएँ, परंपराएँ, और व्यवहारों का अध्ययन करना।

3. समाज और संस्कृति के आपसी संबंध को पहचानना: समाज और संस्कृति के बीच तालमेल और प्रभाव का विश्लेषण करना।

14.3 संस्कृति का अर्थ (Meaning of Culture)

संस्कृति का शाब्दिक अर्थ संस्कृति शब्द अंग्रेजी के 'कल्चर' का हिन्दी रूपान्तरण है। संस्कृति शब्द संस्कृत भाषा का है। संस्कृत व्याकरण के अनुसार 'सम' (उत्तम) उपसर्ग 'कृश' धातु के 'क्तिन' से प्रत्यय होने पर संस्कृति शब्द उत्पन्न होता है। जिसका सरल अर्थ है- उत्तम वृति, अर्थात् देह, इन्द्रिय, प्राण, मन बुद्धि आदि की उत्तम (सम्यक्) चेष्टाएँ या हलचलें। इसमें लौकिक पारलौकिक धार्मिक आध्यात्मिक आर्थिक, राजनैतिक सभी प्रकार के अभ्युदय-उत्पत्ति की अतुल चेष्टाएँ आ जाती हैं। वैसे तो देहात की अच्छी बुरी, चेष्टाएँ 'कृति' हैं, किन्तु उनमें अच्छी बुरी सभी चेष्टाएँ ही संस्कृति (सम-कृति) कही जाती है।

संस्कृति शब्द का उद्गम संस्कार शब्द से हुआ है। संस्कार का अर्थ वह क्रिया है, जिससे वस्तु के मल (दोष) होकर वह शुद्ध सिद्धिदायक बनती है अतः संस्कृति का अर्थ उस शिक्षा-दीक्षा से हे जिससे मनुष्य का जीवन सुधरे । पुरातन अभ्यासों और आदतों को भी संस्कार कहते हैं- यथा जन्म-जन्मान्तर के संस्कार। अतः विवेचना की है। ये लक्षण जहाँ एक ओर संस्कृति की वाह्य तथा आन्तरिक विशेषताओं की विवेचना करते हैं, वहीं दूसरी ओर इसकी प्रकृति को भी स्पष्ट करते हैं। संस्कृति के इन लक्षणों को 'तुलनात्मक आधार पर प्रस्तुत किये गये सामन्यीकरण' के नाम से जाना जा सकता है। ये लक्षण निम्न हैं-

(1) सभ्यता और संस्कृति (Civilization and Culture) संस्कृति को समझने के लिये यह आवश्यक है कि सभ्यता से इसके अन्तर को स्पष्ट किया जाय।

दुनिया में अनेक जीवधारी हैं। इन जीवधारियों में मानव सर्वश्रेष्ठ है। मानव की श्रेष्ठता का आधार उसकी सभ्यता और संस्कृति है।

साधारण बोलचाल की भाषा में सभ्यता और संस्कृति को समानार्थी समझा जाता है। किन्तु यह विचारधारा एकांगी और गलत है। ऑगबर्न ने सम्पूर्ण मानव समाज की सांस्कृतिक विरासत को दो भागों में विभाजित किया है- भौतिक और अभौतिक।

मैकाइवर और पेज का विचार है कि हमें पूर्वजों से जो कुछ मिलता है, उसी का नाम सामाजिक विरासत (Social Heritage) है। इन विद्वानों ने सामाजिक विरासत को दो भागों में विभाजित किया है-

(1) भौतिक सामाजिक विरासत (Material Social Heritage)

(2) अभौतिक सामाजिक विरासत (Non-Material Social Heritage)

भौतिक विरासत को ही सभ्यता के नाम से जाना जाता है। हम क्या हैं, जब इस प्रश्न का उत्तर पूछा जाता है, तो उसे संस्कृति कहते हैं, किन्तु हम क्या प्रयोग करते हैं, जब इस प्रश्न का उत्तर पूछा जाता है, तो उसे सभ्यता कहते हैं। सभ्यता और संस्कृति एक ही वस्तु के दो पहलू हैं। सभ्यता और संस्कृति में संबधों की विवेचना करने से पूर्व सभ्यमा के अर्थ को समझना आवश्यक है।

(2) प्रकट और अन्तर्निहित तत्व (Explicit and Implicit Elements)- संस्कृति की अवधारणा को समझने के लिए इसके प्रकट और अन्तर्निहित तत्वों को समझना अनिवार्य है। प्रत्येक संस्कृति में दो प्रकार के तत्वों का समावेश होता है। ये तत्व हैं-प्रकट और अन्तर्निहित। क्लूखेन (Kluckohn) ने संस्कृति को उपर्युक्त दो तत्वों के आधार पर स्पष्ट करने का प्रयास किया है। उदाहरण के लिए समाज के तौर-तरीके संस्कृति के प्रकट तत्व हैं, जबकि विचार, मूल्य आदि अन्तर्निहित तत्व है। किसी भी समाज की संस्कृति को इन्हीं दो

आधारों पर समझा जा सकता है।

(3) ईथास और ईडास पक्ष (Ethos and idos Aspect) प्रसिद्ध मानवशास्त्री क्रोबर (Kroeber) ने संस्कृति को इन्हीं दो पक्षों के आधार पर समझने का प्रयास किया है। ये दोनों इस प्रकार आसानी से समझे जा सकते हैं-

ईथास संस्कृति का बाह्य स्वरूप

ईडास = संस्कृति का आन्तरिक स्वरूप

क्रोबर का विचार है कि किसी भी समाज की संस्कृति को इन्हीं दो आधारों पर समझा जा सकता है। संस्कृति केवल वह नहीं, जो हमें दिखाई देती हैं, बल्कि उसमें कुछ आन्तरिक गुण या लक्षण भी विद्यमान है।

उदाहरण के लिये भारतीय परिवार संयुक्त परिवार। इसकी संरचना ईथास है, जबकि इसके मूल्य ईडास है। भारतीय संस्कृति में संयुक्त परिवार की अवधारणा के इन्हीं दो आधारों पर आसानी से समझा जा सकता है।

(4) संस्कृति बनाम व्यक्ति (Culture Versus Individual)- संस्कृति की अवधारणा को समझने के लिये संस्कृति और व्यक्तित्व के अन्तःसंबंधों को समझना आवश्यक है। लिष्टन (Linton) का विचार है कि संस्कृति व्यक्ति को निश्चित व्यवहार करने की प्रेरणा देती है तथा उसे तनावों से मुक्ति प्रदान करती है। संस्कृति व्यक्ति के निर्देशक का कार्य करती है। इस प्रकार संस्कृत जहाँ एक ओर व्यक्ति के व्यवहारों का निर्माण करती है, वहीं दूसरी ओर व्यक्ति को अनेक प्रकार की सुविधाएँ भी उपलब्ध करती हैं। इस प्रकार संस्कृति और व्यक्ति अन्तःसंबंधित हैं और इसी संदर्भ में संस्कृति की अवधारणा को समझा जा सकता है।

(5) संस्कृति निर्धारणवाद (Culture Determinism)- संस्कृति का महत्वपूर्ण लक्षण यह है कि इसमें निर्धारणवाद के गुण विद्यमान रहते हैं। दूसरे शब्दों में सम्पूर्ण समाज का निर्धारण संस्कृति के आधार पर होता है। कार्ल मार्क्स का विचार है कि संस्कृति समाज में आर्थिक संगठनों का निर्धारण करती है। समाज में केवल आर्थिक संगठनों का निर्धारण ही संस्कृति नहीं करती, अपितु सामाजिक संगठनों का निर्धारण भी संस्कृति के द्वारा ही होता है।

(6) संस्कृति और संस्कृति संकुल (Culture and Culture-Complex)- संस्कृति एक समग्रता है, जिसका निर्माण अनेक तत्वों द्वारा होता है। इन विभिन्न प्रकार के तत्वों के योग को संस्कृति-संकुल नाम से जाना जाता है। संस्कृति के आन्तरिक और इसकी बाहरी विशेषताओं की जानकारी संस्कृति-संकुल के द्वारा होती है।

14.4 संस्कृति की विशेषताएँ (Characteristics of Culture)

उपर्युक्त व्याख्या के आधार पर संस्कृति की निम्न विशेषताएँ निर्धारित की जा सकती है-

(1) सीखा हुआ व्यवहार मनुष्य समाज का सदस्य होता है। है। समाज सामाजिक संबंधों का जाल है। समाज में अनेक समूह और संस्थाएँ होती है, जिनमें निरन्तर अन्तःक्रिया होती रहती है और इन्हीं अन्तः क्रियाओं में व्यक्ति का समाजीकरण होता रहता है। व्यक्ति समाज में रहकर जन्म से मृत्यु तक कुछ न कुछ सीखता रहता है, अनुभव प्राप्त करता रहता है जो आगे चलकर संस्कृत का रूप धारण कर लेते हैं। संस्कृति किसी व्यक्ति की समाजशास्त्र : बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर- न होकर समूह की हुआ करती है, अतः समूह के सीखे हुए व्यवहारों को ही संस्कृति कहा जा सकता है।

(2) संचारशील संस्कृति सीखा हुआ व्यवहार है जो अनेक पीढ़ियों तक हस्तान्तरित होता रहता है। मनुष्य ज्ञानी प्राणी है अतः वह अपने ज्ञान के आधार पर सीखे हुए व्यवहारों को आने वाली पीढ़ी को हस्तान्तरित कर देता है और इस हस्तान्तरण का आधार उस समूह की भाषा और उस समूह के द्वारा स्वीकृत प्रतीक या चिह्न होते हैं जो अत्यन्त पवित्र समझे जाते हैं और इन प्रतीकों के प्रति समूह की गहरी श्रद्धा होती है। संचारशीलता के कारण ही संस्कृति हजारों और लाखों वर्षों के बाद भी नष्ट नहीं होती है।

(3) सामाजिक- व्यक्ति के द्वारा संस्कृति का निर्माण होता है और हर व्यक्ति में संस्कृति के गुण पाये जाते हैं। हर व्यक्ति संस्कृति के सम्बर्द्धन में प्रयत्न शील रहता है किन्तु संस्कृति व्यक्तिगत नहीं होती, वह सामाजिक होती है। किसी व्यक्ति विशेष के गुणों को संस्कृति नहीं कहा जाता है, संस्कृत तो सामाजिक गुणों का नाम है। संस्कृति में सभी सामाजिक गुणों का समावेश होता है जैसे धर्म, प्रथा, परम्परा, रीति-रिवाज, रहन-सहन, कानून, साहित्य, भाषा आदि। संस्कृति समूह के सदस्यों के व्यवहार में एकरूपता लाती है, सदस्यों के व्यवहारों को समूह की दशाओं के अनुकूल बनाती है।

(4) आदर्शात्मक संस्कृति समूह के सदस्यों के व्यवहारों का आदर्श रूप होती है और प्रत्येक सदस्य उसे आदर्श मानता है। संस्कृति में सामाजिक विचार, व्यवहार प्रतिमान एवं आदर्श प्रारूप होते हैं और इन्हीं के अनुसार कार्य करना श्रेष्ठ समझा जाता है। प्रत्येक समाज अपनी संस्कृति को दूसरे समाजों की

संस्कृतियों से श्रेष्ठ मानता है। इस श्रेष्ठता का आधार उसकी संस्कृति के आदर्श प्रारूप ही है।

(5) आवश्यकताओं की पूर्ति आवश्यकता आविष्कार की जननी है और इन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये जो साधन या उपकरण अपनाये जाते हैं, कालान्तर में वे संस्कृति का रूपधारण कर लेते हैं। अनेक आवश्यकतायें ऐसी होती हैं। जिनकी पूर्ति अन्य साधनों से न होकर, संस्कृति के माध्यम से ही होती है। सामाजिक और प्राणिशास्त्रीय दोनों प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति संस्कृति के द्वारा होती है। अधिकांशतः ऐसा देखा जाता है कि कोई भी संस्कृति जब आवश्यकताओं की पूर्ति करने में अपने को असमर्थ पाती है तो नष्ट हो जाती है। उदाहरण के लिए कहा जा सकता है कि पाषाण युग के उपकरण इस युग की संस्कृति नहीं है।

(6) अनुकूलन की क्षमता समाज परिवर्तनशील है और इसके साथ-ही-साथ संस्कृति भी परिवर्तनशील होती है। इन परिवर्तनशील के बीच प्रत्येक संस्कृति को अपने पर्यावरण से अनुकूलन करना पड़ता है। संस्कृति को भौगोलिक सामाजिक और राजनैतिक दशाओं के साथ सामंजस्य करना पड़ता है। इसके साथ ही समय की माँग के साथ भी संस्कृति को परिवर्तित होना पड़ता है। परिवर्तन सतत् चलता रहता है। जैसे कबूतर से संदेश भेजने के स्थान पर आज टेलीफोन से संदेश भेजा जाता है। रथ और बैलगाड़ी का स्थान रेल, मोटर और वायुयान ने ले लिया है। समय के अनुसार संस्कृति के इसी परिवतर्नशीलता को अनुकूलन का गुण कहा जाता है।

(7) आत्मसात समाज की क्षमता संस्कृति के विभिन्न अंग मिलकर एक समग्रता का निर्माण करते हैं। संस्कृति के ये प्रतिशत स्थिर तथा दृढ़ होते हैं। प्रत्येक संस्कृति अपने अवयवों को एक सूत्र में बाँधे रहती है और साथ ही दूसरी संस्कृति के तत्वों को आत्मसात करती रहती है। चूँकि संस्कृति के तत्व एकीकृत रहते हैं, अतः इनमें शीघ्र परिवर्तन नहीं हो पाते हैं।

(8) सांस्कृतिक पृथकता संस्कृति का निर्माण देश, काल और परिस्थितियों के मध्य होता है इसलिये एक देश की संस्कृति दूसरे देश से भिन्न होती है। प्रत्येक देश के व्यक्तियों की आवश्यकतायें अलग-अलग होती हैं, अतः

आविष्कारों का निर्माण भी भिन्न-भिन्न होता है। चूँकि आवश्यकतायें अलग-अलग होती हैं अतः आचार-विचार और व्यवहार भी अलग-अलग होते हैं। इसमें एक देश की स्थिति दूसरे देश की संस्कृति से पृथक् होती है।

(9) आधि-वैयक्तिक तथा आधि-सावयवी संस्कृति एक व्यक्तिक के व्यवहार का परिणाम न होकर सामूहिक व्यवहार का परिणाम होती है, इसीलिये ऐसा कहा जाता है कि संस्कृति व्यक्ति के शक्ति के ऊपर होती है। यह सामूहिक व्यवहार एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होता रहता है। संस्कृति के द्वारा व्यक्ति के आचार-विचार, रहन-सहन, वेश-भूषा प्रभावित होते हैं, जबकि अकेला व्यक्ति संस्कृति के प्रतिमानों को बदल नहीं सकता है, इसलिये ऐसा कहा जाता है कि संस्कृति आधि-वैयक्तिक होती है।

14.5 उपादान-सांस्कृतिक तत्व, संस्कृति संकुल और सांस्कृतिक क्षेत्र (Components: Cultural Element, Culture Complex and Cultural Area)

संस्कृति का निर्माण विभिन्न छोटी-छोटी इकाइयों से होता है, किन्तु सम्पूर्ण सांस्कृतिक ढाँचें में कोई भी अंग बेकार नहीं होता है। जिन छोटी-बड़ी इकाइयों से सांस्कृतिक ढाँचे का निर्माण होता है इसे ही संस्कृति के विभिन्न उपादान या अंग कहा जाता है। सामान्यतया संस्कृति के विभिन्न उपादानों (अंगों) को चार भागों-सांस्कृतिक तत्व, सांस्कृतिक प्रतिमान, संस्कृति संकुल और सांस्कृतिक क्षेत्र में विभाजित किया गया है। इस अध्याय से संस्कृति के प्रमुख उपादानों या अंगों की विवेचना की गयी है। जो संक्षेप में इस प्रकार है।

सांस्कृतिक तत्व या उपकरण (Cultural Elements or Traits)

पदार्थ का अति सूक्ष्म भाग परमाणु कहलाता है। इसका विभाजन नहीं हो सकता है। इसी प्रकार संस्कृति में भी अति सूक्ष्म भाग होते हैं। जिस प्रकार संस्कृति को भौतिक और अभौतिक दो भागों में विभाजित किया जाता है, उसी प्रकार सांस्कृतिक उपकरणों को भी दो भागों में विभाजित किया जा सकता है- भौतिक और अभौतिक उपकरण। यूबेन्क ने लिखा है कि "संस्कृत उपकरण, वे ईटें हैं जिसके द्वारा सम्पूर्ण समाज की संस्कृत का निर्माण होता है।"

सांस्कृतिक तत्व को परिभाषित करते हुए हाबेल ने लिखा है कि "एक सांस्कृतिक तत्व, व्यवहार का एक प्रकार है जिसे सांस्कृतिक व्यवस्था की सबसे छोटी इकाई माना जा सकता है।" इस प्रकार सांस्कृतिक तत्व संस्कृति की सबसे छोटी इकाई है जो कार्यात्मक रूप से महत्वपूर्ण है और जिसे पुनः विभाजित नहीं किया जा सकता है।

राबर्ट बीरस्टीड ने संस्कृति के तत्वों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया है-

(1) अभौतिक तत्व (Non-Material Elements)- राबर्ट बीरस्टीड ने अभौतिक तत्वों को दो भागों में विभाजित किया है-

(अ) आदर्श नियम (Norms)- प्रत्येक समाज में कुछ नियम पाये जाते हैं जो व्यक्ति के व्यवहारों का संचालन करते हैं। इन्हें ही आदर्श नियम के नाम से जाना जाता है। ये आदर्श नियम, कानून, संस्कार, निषेध, फैशन, रूढ़ियाँ, प्रथाएँ, जनरीतियाँ, परम्पराएँ इत्यादि हैं।

(आ) विचार (Ideas) प्रत्येक समाज में विचारों का अस्तित्व है और ये किसी न किसी रूप में पाये जाते हैं। ये विचार किसी भी प्रकार के हो सकते हैं। समाजीकरण की प्रक्रिया में व्यक्ति इन्हीं विचारों को अपने व्यक्तितत्व में समेटता है। बीरस्टीड ने इन विचारों को निम्नलिखत आठ भागों में बाँटा है-

(1) धार्मिक विश्वास

(2) वैज्ञानिक तथ्य

(3) पौराणिक कथाएँ

(4) उपाख्यान

(5) साहित्य

(6) अन्धविश्वास

(7) सूत्र और

(8) लोकोक्तियाँ तथा लोक कथाएँ

(2) भौतिक तत्व- बीरस्टीड ने भौतिक तत्व के अन्तर्गत भौतिक पदार्थों को सम्मिलित किया है। इन भौतिक तत्वों की कोई संख्या निर्धारित नहीं की जा सकती है। बीरस्टीड ने 12 भौतिक तत्व माने है-

(1) मशीनें

(2) उपकरण तथा यंत्र (3) बर्तन

(4) भवन

(5) सड़कें

(6) पुल

(7) शिल्प वस्तुएँ

(8) कलात्मक वस्तुयें

(9) कपड़े

(10) परिवहन

(11) फर्नीचर

(12) खाद्य-पदार्थ

उदाहरण- प्रत्येक समाज में सांस्कृतिक उपकरण अथवा संस्कृति के तत्व विद्यमान हैं। उदाहरण के लिए चरण स्पर्श करना, तिलक लगाना, केश बढ़ाना, चुम्बन लेना, झंडे को सलामी देना, मूर्तियों पर जल छिड़कना आदि। उपकरण या तत्व संस्कृति की प्रारम्भिक इकाइयाँ होती हैं। इनके द्वारा एक संस्कृति को दूसरी संस्कृति से अलग किया जा सकता है। किसी एक संस्कृति का महत्वपूर्ण तत्व दूसरी संस्कृति के लिए महत्वहीन हो सकता है।

विशेषताएँ- सांस्कृतिक उपकरण की प्रमुख विशेषताओं को निम्न तीन भागों में विभाजित किया जासकता है-

(a) इतिहास- प्रत्येक सांस्कृतिक उपकरण का निश्चित इतिहास होता है। किसी उपकरण का इतिहास छोटा होता है, तो किसी का बड़ा ।

(b) गतिशीलता- संस्कृति के ये उपकरण स्थिर नहीं होते हैं। सामाजिक परिवेश के साथ इनमें गतिशीलता पाई जाती है।

(c) संयुक्तीकरण- संस्कृति के उपकरणों की प्रकृति फूलों के गुलदस्ते के समान होती है। अर्थात् वे आपस में एक-दूसरे से घुले मिले हैं।

अध्ययन का महत्व-संस्कृति के इन उपकरणों के अध्ययन का क्या महत्व है इन प्रश्नों के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि उपकरणों की सहायता से संस्कृति का स्वरूप (Forms) को समझने में मदद मिलती है। संस्कृति के उपकरण व आधार हैं, जो संस्कृति की संरचना का निर्माण करते हैं। टायलर (Tylor), बोआस (Boas), रे (Ray) गिफोर्ड और क्रोबर (Krober) आदि ने संस्कृति का अध्ययन इन्हीं उपकरणों के माध्यम से किया है।

14.6 संस्कृति-संकुल (Culture Complex)

संस्कृति के अनेक उपकरण अथवा तत्व होते हैं। ये उपकरण आपस में अंतः संबंधित होते हैं। ये अनेक

तत्व मिलकर संस्कृति के एक गुच्छे का निर्माण करते हैं। इस गुच्छे को ही संस्कृति-संकुल के नाम से जाना

जाता है। हाबेल ने लिखा है कि "संस्कृति-संकुल परस्पर घनिष्ठ रूप से संबंधित प्रतिमानों का एक जाल है।"

सदललैण्ड और बुडवर्ड के अनुसार संस्कृति-संकुल तत्व की वह सम्पूर्णता है जो अर्थपूर्ण संबंधों द्वारा परस्पर आबद्ध रहते हैं। इसके आधार पर संस्कृति-संकुल की तीन विशेषताएँ निर्धारित की जा सकती हैं-

(a) संस्कृति-संकुल सांस्कृतिक उपकरणों के एक गुच्छे के रूप में होता है।

(b) यह गुच्छा सांस्कृतिक नियमों के द्वारा व्यवस्थित और मान्यता-प्राप्त होता है, और

(c) संस्कृति-संकुल संम्पूर्ण संस्कृति की एक क्रियाशील इकाई के रूप में कार्य करता है।

उदाहरण- उदाहरण के लिये भाषा एक संस्कृति-संकुल है। इसमें वाक्य, शब्द, उच्चारण आदि उपकरण है- जिनसे भाषा का निर्माण होता है। ठीक इसी प्रकार विवाह भी संस्कृति संकुल है जिसमें विवाह की पद्धतियाँ, खान-पान, आदान-प्रदान उपकरण हैं। ये सभी मिलकर विवाह जैसी संस्कृति-संकुल का निर्माण करते हैं जिससे समाज में व्यवस्था बनी रहती है। संक्षेप में सांस्कृतिक उपकरणों का सम्मिश्रण ही संस्कृति-संकुल है। मूर्ति भी एक संस्कृति-संकुल है। इसमें संस्कृति के अनेक उपकरण समाहित हैं। उदाहरण के लिए मूर्ति को नहलाना, उस पर फूल चढ़ाना, अगरबत्ती जलाना, प्रसाद पाना, प्रणाम करना आदि। ये सब संस्कृति के उपकरण है, जो संस्कृति-संकुल का निर्माण करते हैं।

विशेषताएँ (i) संस्कृति-संकुल सांस्कृतिक उपकरणों का योग है।

(ii) ये मानव व्यवहार का निर्धारण करते हैं।

(iii) इनकी प्रकृति गतिशील होती है।

सांस्कृतिक क्षेत्र (Cultural Areas)

सांस्कृतिक क्षेत्र का तात्पर्य ऐसे क्षेत्र से है जहाँ एक विशेष संस्कृति पाई जाती है। विसलर ने सांस्कृतिक क्षेत्र की व्याख्या करते हुए लिखा है कि "सांस्कृतिक क्षेत्र एक वह भौगोलिक प्रदेश है जहां समान सांस्कृतिक विशेषताओं वाली अनेक स्वतंत्र जनजातियाँ निवास करती हों।" इसकी कोई निश्चित सीमा नहीं होती है और साथ ही ऐसा कहना प्रायः असंभव होता है कि एक सांस्कृतिक क्षेत्र कहाँ से प्रारम्भ होता है और कहाँ समाप्त होता है। भोजन की दृष्टि से भारतवर्ष को अनेक क्षेत्रों में बाँटा जा सकता है, इसी प्रकार विवाह, परिवार के रहन-सहन के तरीकों के आधार पर भी भारत को अनेक सांस्कृतिक क्षेत्रों में बांटा जा सकता है।

हर्सकोविट्स का विचार है कि "उस क्षेत्र को जिसमें समान संस्कृतियाँ पाई जाती हैं, एक सांस्कृतिक क्षेत्र कहा जाता है।" समाजशास्त्र बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर-1

उदाहरण- भारत को हिन्दु संस्कृति का सांस्कृतिक क्षेत्र कहा जा सकता है। आधुनिक युग में फैशन, सिनेमा, यातायात और संदेशवाहन के साधनों में विकास के कारण सांस्कृतिक क्षेत्रों की सीमा रेखाएँ धुँधली होती जा रही हैं। (1)

14.7 सांस्कृतिक विलम्ब की परिभाषा (Definition of Cultural Lag)

विभिन्न विद्वानों ने सांस्कृतिक विलम्ब की जो परिभाषाएँ दी है, वे निम्नलिखित है- (1) ऑगबर्न और निमकॉफ 'संस्कृति के उन दो संबंधित भागों (भौतिक तथा अभौतिक) पर यह तनाव इसीलिए पड़ता है कि वे असमान गति से परिवर्तित होते हैं। ऐसी अवस्था में हम उसे उस भाग की विडम्बना कहते हैं, जो मन्दगति से परिवर्तित हो रहा है क्योंकि एक दूसरे के पीछे रह जाता है।'

(2) फेयरचाइल्ड (Fairchild)- 'संस्कृत के अन्तः निर्भर और पारस्परिक आश्रित दो भागों की परिवर्तन गति में समकालीनता के अभाव को सांस्कृतिक विलंब कहा जाता है, इससे संस्कृति में अपसमायोजन उपस्थित हो जाता है।'

(3) गिसबर्ट (Gisbert)- 'सांस्कृतिक विलम्ब वह तनाव है जो समाज के दो अन्तःनिर्भर भागों में असमान गति के कारण उत्पन्न हो जाता है।' (4) ऑगबर्न- 'मान्यता यह है कि आधुनिक संस्कृति के विभिन्न भाग एक रफ्तार से परिवर्तित नहीं

होते हैं। चूंकि संस्कृति के विभिन्न भागों में सह-संबंध एवं अन्योन्याश्रितता पाई जाती है, अतः एक भाग में

तीव्र परिवर्तन संस्कृति के दूसरे संबंधित भागों को सामंजस्य स्थापित करने के लिए बाध्य करते हैं।'

'सांस्कृतिक विलम्ब की परिभाषा संस्कृति की भौतिक और अभौतिक भागों में असमान गति से हाने वाले परिवर्तन के रूप में की जा सकती है।'

ऑगबर्न ने सांस्कृतिक विलम्ब को निम्नांकित उदाहरण के द्वारा समझाने का प्रयास किया है-

(1) कांगो के बेसिन में निवास करने वाली पिग्मी जाति के व्यक्ति भौतिक संस्कृति और उसके सुख-साधनों को भी अपनाते आ रहे हैं किन्तु उनकी अभौतिक संस्कृति अत्यन्त ही पिछड़ी हुई अवस्था में है।

(2) भौतिक संस्कृति इतनी आगे चली गई है कि अन्तरिक्ष यानों का निर्माण हो गया है, किन्तु अभौतिक संस्कृति अभी भी पीछे ही पड़ी हुई हैं।

(3) अमेरिका में उन नगरों में जहाँ जनसंख्या कम है, 10,000 निवासियों के पीछे पुलिस की संख्या अधिक है, किन्तु जिन नगरों में जनसंख्या अधिक हैं, वहाँ 10,000 निवासियों के पीछे पुलिस की संख्या कम

है।

उपर्युक्त उदाहरण ऑगबर्न के अनुसार सांस्कृतिक विलम्ब के उदाहरण हैं। ऑगबर्न का विचार है कि संस्कृति के दो भाग हैं-

(1) भौतिक (Material), और

(2) अभौतिक (Non-material) 1

भौतिक संस्कृति के अन्तर्गत उद्योग, व्यापारिक मनोरंजन, रेडियो, कार, घड़ी, कप, प्लेट, मशीन, टाइपराइटर, कम्प्यूटर आदि भौतिक वस्तुयें आती हैं। अभौतिक संस्कृति में विश्वास, कला, धर्म और नैतिकता को सम्मिलित किया जाता है। भौतिक संस्कृति का संबंध बाहरी जीवन और वस्तुओं से होता है, जबकि अभौतिक संस्कृति मनुष्य की आन्तरिक परिस्थितियों और जीवन से संबंधित होती है। भौतिक संस्कृति शीघ्रता से परिवर्तित होती है, जबकि अभौतिक संस्कृति में जो परिवर्तन होते हैं वे मन्द गति से होते हैं। दोनों संस्कृतियाँ अन्तःसंबंधित होती है, जबकि अभौतिक संस्कृति आगे बढ़ती है, तो दूसरी पीछे रह जाती है। इस अवस्था को ऑगबर्न ने सांस्कृतिक विलम्ब कहा है।

सांस्कृतिक विलम्ब सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of Cultural Lag Theory)

अनेक विद्वान ऑगबर्न द्वारा प्रस्तुत सांस्कृतिक विलम्ब के सिद्धान्त से सहमत नहीं हैं। इसीलिए उन्होंने निम्न आधारों पर इसकी आलोचना की है-

(1) बुडवर्ड (James W. Woodward) ने अपनी पुस्तक 'A New Classification of Cultural and a restatement of the Cultural Lag Theory' में इस सिद्धान्त की आलोचना करते हुए लिखा है कि 'संस्कृति को दो भागों में विभाजित करना तर्कसंगत नहीं है।'

136 (2) न्यूमेयर ऑगवर्न द्वारा प्रस्तुत इस सिद्धान्त से असहमति व्यक्त करते हुए लिखता है कि यह समाजशास्त्र बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर- आवश्यक है कि भौतिक संस्कृति में पहले परिवर्तन हो और भौतिक संस्कृति के परिणामस्वरूप अभौतिक संस्कृति में भी परिवर्तन हो ।

NOTES

(3) सोरोकिन भी ऑगबर्न द्वारा प्रस्तुत इस सिद्धान्त से असहमति व्यक्त करते हुए लिखता है कि यह आवश्यक है कि भौतिक संस्कृति में पहले परिवर्तन हो और भौतिक संस्कृति के परिणामस्वरूप अभौतिक संस्कृति में भी परिवर्तन हो ।

(4) वेबलेन (Veblen) का विचार है कि भौतिक संस्कृति में भी परिवर्तन की गति धीमी रहती है। पूँजीवादी व्यवस्था में ऐसे भौतिक आविष्कारों का विरोध किया जाता है, जो पूँजीपतियों के निहित स्वार्थ को ठेस पहुँचाते हैं।

(5) यह मापना कि भौतिक संस्कृत्ति आगे बढ़ गई है और अभौतिक संस्कृति पिछड़ गई, संभव नहीं है।

(6) यह आवश्यक नहीं है कि सभी देश और सभी कालों में भौतिक संस्कृति अभौतिक संस्कृति से आगे बढ़ जाय। भारतीय 'अहिंसा' का सिद्धान्त हजारों वर्षों के बाद भी उतना ही महत्वपूर्ण है, और

(7) अन्त में, मैकाइवर ने ऑगबर्न के सांस्कृतिक विलम्ब सिद्धान्त की आलोचना निम्न तीन आधारों

पर की है-

(a) भौतिक और अभौतिक संस्कृति का विभाजन तथ्यहीन है।

(b) (c) यह आवश्यक नहीं है कि अभौतिक संस्कृति सदैव ही भौतिक संस्कृति के पीछे रहे, और ऑगबर्न सिद्धान्त में विलम्ब को मापने के लिए मापदण्ड का अभाव है।

सांस्कृतिक संघर्ष

(Cultural Conflict)

संघर्ष असहयोगी प्रक्रिया है। यह समाज में एकीकरण को समाप्त करके विभेदीकरण को जन्म देता

है। संघर्ष के आधार पर व्यक्ति की ईर्ष्या द्वेष में वृद्धि होती है। फिर भी समाजशास्त्री इसका अध्ययन क्यों करते हैं? सामाजिक विघटन की इस प्रक्रिया को पढ़ने से समाजशास्त्री को क्या लाभ होते हैं? संघर्ष का क्या महत्व है? यहाँ पर संघर्ष के महत्व की व्याख्या की जायेगी।

यूटर और हार्ट (Reuter and Hart) ने लिखा है कि "संघर्ष समस्त चेतन जीवन का आधार है।आत्म-चेतना और सामूहिक चेतना संघर्ष के द्वारा ही उत्पन्न हो सकती है।" संघर्ष के द्वारा व्यक्ति के प्रति, राष्ट्र के प्रति, धर्म के प्रति और अपने समुदाय के प्रति चेतना की भावना का विकास करता है।व्यक्तित्व के निर्माण में भी संघर्ष का अत्यधिक महत्व है। यदि व्यक्ति अपनी परिस्थितियों के साथ संघर्ष न करे, उनका अपने अनुकूल शोषण न करे, तो उनका जीवन विघटन की ओर मुड़ जायेगा और वह अपने अन्दर की छिपी शक्ति का उचित विकास नहीं कर सकेगा।संघर्ष के द्वारा एकीकरण को भी बढ़ावा मिलता है। संघर्ष ऊपर से तो पृथक्करण करने वाली प्रक्रिया लगती है किन्तु उसके अन्तर में एकीकरण के तत्व छिपे रहते हैं। उदाहरण के लिए भारत की जनता शांति के अवसरों पर उतनी संगठित नहीं रही जितनी कि संघर्ष के अवसरों पर। मैकाइवर ने ऐसा विचार व्यक्त किया है कि संघर्ष के द्वारा ही सहयोग की भावना का विकास होता है।सामाजिक जीवन में अप्रत्यक्ष संघर्ष का अत्यधिक महत्व है और इसी के द्वारा व्यक्ति, परिवार, समुदाय, जाति और राष्ट्र की उन्नति की जा सकती है।

14.8 सांस्कृतिक संघर्ष की परिस्थितियाँ (Condition of Cultural Conflict)

संस्कृति में संघर्ष अनिवार्य है, क्योंकि प्रत्येक संस्कृति की अपनी मान्यतायें तथा जीवन प्रतिमान होते हैं। संस्कृति की शैली में भी अन्तर होता है। सामाजिक जीवन में संस्कृति संघर्ष मुख्य रूप से तीन परिस्थितियों में होता है-

(1) सांस्कृतिक संघर्ष की पहली परिस्थिति वह है जब दो संस्कृतियाँ आपस में मिलती हैं। इसके साथ ही जब एक देश में अनेक धर्म, भाषा, विचार और विश्वास के व्यक्ति एक साथ निवास करते हैं तो सांस्कृतिक संघर्ष अनिवार्य हो जाता है।

137 समाजशास्त्र : बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर

(2) सांस्कृतिक संघर्ष की दूसरी परिस्थिति यह है जब एक सांस्कृतिक समूह का कानून दूसरे सांस्कृतिक समूह पर लागू किया जाता है।

(3) सांस्कृतिक संघर्ष की तीसरी परिस्थिति वह है जब एक सांस्कृतिक समूह का व्यक्ति दूसरे समूह में प्रवेश करता है।

समूह प्रतिरोध (Group Resistance)

सांस्कृतिक संघर्ष में समूह प्रतिरोध का महत्वपूर्ण स्थान है। समूह प्रतिरोध वह अवस्था हैं, जो कुछ कार्यों की स्वीकृति तथा कुछ कार्यों की अस्वीकृति देता है। इस स्वीकृति तथ अस्वीकृति के आधार पर संघर्षों का जन्म होता है। सामूहिक प्रतिरोध तीन प्रकार का होता है, जो सांस्कृतिक संघर्ष को जन्म देता है-

(a) वे सामाजिक प्रतिमान जिनको तोड़ने से संघर्ष का जन्म नहीं होता है।

(b) वे सामाजिक प्रतिमान जिनको तोड़ने से कम मात्रा में प्रतिरोध होता है।

(c) वे सामाजिक प्रतिमान जिनको तोड़ने से अधिक मात्रा में सामूहिक प्रतिरोध होता है।

सामान्य अवस्था में व्यक्ति समूह के प्रतिमानों के अनुसार ही अपने व्यवहारों का निर्धारण करता है, किन्तु कभी-कभी ऐसी स्थिति निर्मित हो जाती है कि जब व्यक्ति चाहते हुए समूह के अनुरूप अपने व्यवहारों का निर्धारण नहीं कर

पाता है तो प्रतिरोध की स्थिति का निर्माण होता है। यह प्रतिरोध सांस्कृतिक संघर्षों को जन्म देता है।

14.9 सांस्कृतिक समन्वय (Cultural Synthesis)

सांस्कृतिक संघर्ष कोई चिरस्थायी प्रक्रिया नहीं है। कालान्तर में संघर्ष की तीव्रता कम होती जाती है और एक ऐसी स्थिति का जन्म होता है जब संघर्ष शिथिल पड़ जाता है। इस शिथिलता के कारण समन्वय की स्थिति का निर्माण हो जाता है। इसे सांस्कृतिक समन्वय के नाम से जाना जाता है। रेडफील्ड (Redfield) के अनुसार "सांस्कृतिक समन्वय से उन घटनाओं को समझा जाता है जो कि तब होती जबकि विभिन्न संस्कृति वाले व्यक्तियों के समूह एक-दूसरे के निकट अथवा निरन्तर सम्पर्क में आते हैं जिनके फलस्वरूप उन समूहों में से किसी एक के या दोनों के मूल सांस्कृतिक प्रतिमान में परिवर्तन हो जाते है।"

प्रसिद्ध मानवशास्त्री मैलिनोवस्की (Malinowski) ने भी सांस्कृतिक समन्वय पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। मैलिनोवस्की का विचार है कि सांस्कृतिक परिवर्तन दो शक्तियों और कारणों का परिणाम होता है-

(a) पहली शक्तियाँ वे हैं, जो समुदाय के अन्दर ही उत्पन्न होती हैं, तथा

(b) दूसरी शक्तियाँ वे हैं, जो विभिन्न संस्कृतियों के सम्पर्क के कारण उत्पन्न होती हैं। इसी प्रक्रिया को सांस्कृतिक समन्वय कहा जाता है।

थर्नवाल्ड (Thurnwald) ने भी सांस्कृतिक समन्वय पर अपने विचार व्यक्त किये हैं कि किसी बाहरी सांस्कृतिक समूह के निरन्तर सम्पर्क में आने के फलस्वरूप जीवन में कुछ नवीनतायें उत्पन्न हो जाती हैं। ये नवीनतायें सांस्कृतिक समन्वय के कारण उत्पन्न होती हैं। धर्नवाल्ड ने सांस्कृतिक समन्वय के लिए निम्न तीन अवस्थाओं का उल्लेख किया है-

(a) दोनों सांस्कृतिक समूहों में घनिष्ठ तथा निरन्तर सम्पर्क हो। थोड़ी बहुत मात्रा का होना आवश्यक है।

(b) दोनों सांस्कृतिक समूहों में समानता की (c) सांस्कृतिक समूह का शासकीय दबाव भी सांस्कृतिक समन्वय को प्रभावित करता है।

14.10 संस्कृति और सभ्यता (Culture and Civilization)

दुनिया में अनेक जीवधारी हैं। इन जीवधारियों में मानव सर्वश्रेष्ठ है। मानव की श्रेष्ठता का आधार उसकी सभ्यता और संस्कृति है।

साधारण बोल-चाल की भाषा में सभ्यता और संस्कृति को समानार्थी समझा जाता है। किन्तु यह विचारधारा एकांगी और गलत है। ऑगबर्न ने सम्पूर्ण मानव समाज की सांस्कृतिक विरासत को दो भागों में विभाजित किया है- भौतिक और अभौतिक।

138 मैकाइवर और पेज का विचार है कि हमें अपने पूर्वजों से जो कुछ मिलता है, उसी का नाम सामाजिक समाजशास्त्र श्री. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर- विरासत (Social Heritage) है। इन विद्वानों ने सामाजिक विरासत को दो भागों में विभाजित किया है-

(1) भौतिक सामाजिक विरासत (Material Social Heritage)

(2) अभौतिक सामाजिक विरासत (Non-material Social Heritage)

भौतिक विरासत को ही सभ्यता के नाम से जाना जाता है। हम क्या है, जब इस प्रश्न का उत्तर पूछा जाता है, तो उसे संस्कृति कहते हैं। किन्तु हम क्या प्रयोग करते हैं, जब इस प्रश्न का उत्तर पूछा जाता है, तो उसे सभ्यता कहते हैं। सभ्यता और संस्कृति एक ही वस्तु के दो पहलू हैं। सभ्यता और संस्कृति में संबंधों की विवेचना करने से पूर्व सभ्यता के अर्थ को समझना आवश्यक है।

सभ्यता की परिभाषा (Definition of Civilization)

विभिन्न विद्वानों ने सभ्यता की जो परिभाषाएँ दी हैं, वे इस प्रकार है-

(1) मैथ्यू अरनाल्ड 'यह समाज में मनुष्य का मानवीकरण है।

(2) आक्सफोर्ड अंग्रेजी शब्दकोष 'यह मानवीय समाज की विकसित और उन्नत व्याख्या है।'

(3) ऑगबर्न और निमकॉफ 'सभ्यता को आधिसावयवी के विकसित पक्ष के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

(4) मैकाइवर और पेज 'मनुष्य ने अपने जीवन की दशाओं को नियंत्रित करने के प्रयत्न में जिस सम्पूर्ण कला-विन्यास और संगठन की रचना की है, उसे सभ्यता कहते हैं।'

(5) फेयरचाइल्ड 'सामान्यतया इस शब्द का अर्थ संस्कृति के उद्‌विकासीय पैमाने में एक उन्नत स्थिति से है।'

इस प्रकार सभ्यता समाज के भौतिक विकास की वह चरम स्थिति है, जो व्यक्ति के सुख-समृद्‌धि में वृद्‌धि से संबंधित है।

सभ्यता की विशेषताएँ (Characteristics of Civilization)

ऊपर जो परिभाषाएँ दी गयी हैं, उनमें सभ्यता की अवधारणा को स्पष्ट किया गया है। उपर्युक्त अवधारणाओं के आधार पर सभ्यता की प्रमुख विशेषताओं को निम्नलिखित शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) सभ्यता साधन है- साध्य और साधन मानव जीवन के दो डोर हैं, जो आपस में अन्तः संबंधित हैं। सभ्यता साधन है, इसका कारण यह है कि हम जो कुछ भी प्रयोग करते हैं, संक्षेप में यही सभ्यता है। मानव जीवन की अनन्त आवश्यकतायें हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हम जिन साधनों का प्रयोग करते हैं, संक्षेप में यही सभ्यता है। उदाहरण के लिये पेन, जिसकी सहायता से हम लिखते हैं और इस प्रकार लिखकर अपनी आवश्यकता की पूर्ति करते हैं।

(2) प्रसारण योग्य सभ्यता साधन है, जो उपयोगी होती है। उपयोगी होने के कारण सभ्यता को शीघ्र ही अपना लिया जाता है। उदाहरण के लिए साइकिल। देश में साइकिल का इतनी तीव्रता से प्रसारण इसीलिए हुआ कि यह उपयोगी है। उपयोगिता के कारण ही सभ्यता के आविष्कार शीघ्र ही एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रसारित हो जाते हैं।

(3) उपयोगी सभ्यता उपयोगी होती है। प्रत्येक सभ्यता किसी न किसी प्रकार की उपयोगिता को लिये हुए होती है। उपयोगिता के समाप्त हो जाने पर सभ्यता इतिहास के गर्त में विलीन होती है।

(4) परिवर्तनशील व्यक्ति और समाज में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। परिवर्तन समाज की मूलभूत विशेषता है। सभ्यता उपयोगी होती है। यह मानव आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। मानव आवश्यकताएँ परिवर्तनशील है। इस प्रकृति के कारण ही सभ्यता में निरन्तर आविष्कार होते रहते हैं। पैदल और बैल-गाड़ी पर चलने वाला मानव परिवर्तनशीलता के कारण ही हवाई जहाज और रॉकेटों पर उड़ रहा है।

(5) प्रगतिशील सभ्यता परिवर्तनशील है, किन्तु यह परिवर्तन प्रगति की दिशाओं में होता है। यह एक क्रम से आगे बढ़ती जाती है। सभ्यता की प्रगति सदैव ही आगे की दिशाओं में होती है, यह कभी भी पीछे नहीं जाती है। जैसे साइकिल के बाद स्कूटर, स्कूटर के बाद मोटर और मोटर के बार हवाई जहाज मानव प्रगति के अमिट चिन्ह हैं।

सभ्यता और संस्कृति में अन्तर (Difference between Culture and Civilization)

सभ्यता और संस्कृति में निम्नलिखित अन्तर है-

(1) सभ्यता और संस्कृति में मौलिक अन्तर यह है कि सभ्यता का संबंध जीवनयापन या सुख-सुविधा की बाहा वस्तुओं से है, जबकि संस्कृति का संबंध आन्तरित वस्तुओं से है।

(2) सभ्यता की माप की जा सकती है, किन्तु संस्कृति की माप नहीं की जा सकती है। उदाहरण के लिए ऐसा बता देना अधिक आसान है कि साइकिल की अपेक्षा मोटर अधिक उपयोगी है, किन्तु इसका प्रमाण प्रस्तुत करना कठिन है कि पश्चिमी संस्कृति की अपेक्षा भारतीय संस्कृति श्रेष्ठ है- इसके लिये कोई मापदण्ड नहीं है।

(3) सभ्यता सदैव उन्नतशील है, किन्तु संस्कृति की उन्नति और अवनति होती ही रहती है। उदाहरण के लिये बैलगाड़ी से हम रेलगाड़ी, वायुयान तथा अन्य वस्तुओं का नित नया आविष्कार करते जाते हैं, किन्तु मिश्र, चीन और वेबीलोनिया की संस्कृति विकसित होकर फिर पतन की ओर चली गई।

(4) सभ्यता का प्रसार तीव्रगति से होता है, किन्तु संस्कृति का प्रसार तीव्रगति से नहीं होता है। टायनबी ने उचित ही कहा है कि वाणिज्य के माध्यम से किसी पश्चिमी वस्तु को विदेशों में पहुंचा देना एक सरल कार्य है, किन्तु किसी पश्चिमी कवि या सन्त के लिये यह कार्य अत्यन्त कठिन है कि वह अपने हृदय में जलने वाली आध्यात्मिक ज्योति को किसी गैर-पश्चिमी व्यक्ति की आत्मा तक पहुँचा सके।

(5) सभ्यता बिना प्रयास के आगे बढ़ती है किन्तु संस्कृति के लिये प्रयास करना पड़ता है। सभ्यता का संबंध उपयोगिता हो और भौतिक आवश्यकताओं के होने के कारण वह अन्य व्यक्तियों को अपनी ओर आकर्षित करती है। संस्कृति का प्रसार उन्हीं व्यक्तियों में किया जा सकता है जो मानसिक रूप से ऐसा करने को तैयार हो। उदाहरण के लिये कोई भी व्यक्ति किसी कलाकार की कला को तब तक नहीं अपना सकता, जब तक कि स्वयं कलाकार न हो।

(6) सांस्कृतिक वस्तुएँ प्रतियोगितारहित होती हैं, किन्तु सभ्यता का आधार प्रतियोगिता है। दो आविष्कारों में प्रतियोगिता होती है, किन्तु आध्यात्मिकता में कोई प्रतियोगिता नहीं होती है।

(7) सभ्यता साधन है, जबकि संस्कृति साध्य है। साध्य का तात्पर्य अंतिम लक्ष्य से है जिससे असीम संतुष्टि का अनुभव होता है और इस असीम संतुष्टि की प्राप्ति के लिए जो विधि अपनायी जाती है, उसे साधन कहते हैं। उदाहरण के लिए साहित्य का ज्ञान साध्य है, यह संस्कृति है, उसे प्राप्त करने के लिए विभिन्न साधनों अर्थात् साहित्यिक पुस्तकों अथवा उपकरणों को सभ्यता कहा जाता है।

(8) प्रसिद्ध दार्शनिक कान्ट ने सभ्यता और संस्कृति के अन्तर को स्पष्ट करते हुए कहा है- सभ्यता तो वाह्य व्यवहार की वस्तु है। परन्तु संस्कृति को नैतिकता की आवश्यकता होती है तथा यह आन्तरिक व्यवहार की वस्तु है।

(9) गिसबर्ट का विचार है कि सभ्यता यह बतलाती है कि हमारे पास क्या है और संस्कृति यह बतलाती है कि हम क्या है?

(10) सभ्यता में सुधार किया जा सकता है, किन्तु संस्कृति में नहीं। साधारण व्यक्ति श्रेष्ठ आविष्कारों में सुधार कर सकता है, किन्तु महान कवि और कलाकार की कविता और कलाकृति में साधारण व्यक्ति

सुधार नहीं कर सकता है।

(11) संस्कृति में गहराई होती है, जबकि सभ्यता में गहराई का अभाव होता है। मोटर और ट्रैक्टर के मशीन का ज्ञान सभी को हो सकता है किन्तु संस्कृति की गहराई तक सभी नहीं पहुँच सकते हैं।

(12) डॉ. भगवतशरण उपाध्याय ने सभ्यता और संस्कृति के अन्तर को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि सभ्यता और संस्कृति एक ही मानव विकास के दो पहलू हैं। एक सभ्यता-उसकी स्थूल और आविष्कार की दिशा की ओर संकेत करता है। दूसरा संस्कृति-उस विकास के चिन्तित, सुन्दर, शालीन सूक्ष्म तत्वों की ओर। सभ्यतां आदिम बनैली स्थिति से सामाजिक जीवन की ओर मनुष्य की प्रगति का नाम है, संस्कृति उसी प्रगति को सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् और रुचिकर परम्परा का। हम इस संस्कृति के इतिहास में सभ्यता का समावेश करते हैं।

14.11 सभ्यता और संस्कृति का संबंध (Relationship between Civilization and Culture)

मानव जीवन के दो पक्ष है वह क्या है? और वह क्या प्रयोग करता है? मानव जीवन के इन्हीं दो पहलुओं की अभिव्यक्ति सभ्यता और संस्कृति के माध्यम से होती है। यही कारण है कि सभ्यता और संस्कृति में अन्तर करना अत्यंत ही कठिन कार्य है। जहाँ एक ओर संस्कृति मानव का अन्तरपक्ष है, तो सभ्यता उसका बाहरी पक्ष। ये दोनों पक्ष आपस में अन्तःसंबंधित हैं और इन्हें एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। सभ्यता और संस्कृति का संबंध देश और काल की परिस्थितियों से होता है। परिस्थितियाँ परिवर्तित होती रहती है, अतः उनकी अवधारणाओं (Concepts) में भी परिवर्तन नितान्त स्वाभाविक है। कुछ देश और काल संस्कृति के बाहरी पक्ष को अधिक महत्व प्रदान करते हैं, तो कुछ आन्तरिक पक्ष को। यही कारण है कि कुछ तो खाओ, पियो और मौज करो (cat, drink and merry) पर आधारित होते हैं, तो कुछ देश अध्यात्मवाद

(Spritualism) और मोक्ष (Liberation) पर। जो देश परम्परात्मक होते हैं, वहाँ सांस्कृतिक तत्वों का अधिक महत्व प्रदान किया जाता है और जो देश आधुनिक होते हैं, वहाँ सभ्यता को अधिक महत्व प्रदान किया जाता है। सभ्यता और संस्कृति के संबंध को मैकाइवर और पेज ने निम्न आधारों पर प्रस्तुत किया है-

(1) सभ्यता, संस्कृति की वाहक है (Civilization Vehicle of Culture)- वेद, उपनिषद्,

रामायण, महाभारत और स्मृतियों में भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर आज भी विद्यमान है। वेदों में जो विचार व्यक्त किये गये हैं, वे भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर हैं। वैदिक विचार आज तक जिन्दा है, इसका कारण सभ्यता है। लेखन-लिपि का विकास, छापाखाने का जन्म आदि ऐसी उपलब्धियाँ हैं, जिनके कारण वैदिक विचार आज भी स्थायी है। विचार, संस्थायें, प्रथायें, धर्म और रीतियाँ संस्कृति के आन्तरिक पक्ष हैं, किन्तु सभ्यता की विधियों के द्वारा संस्कृति के ये पक्ष निरन्तर गतिशील रहते हैं। सभ्यता हमें साधन प्रदान करती है, जिसकी सहायता से संस्कृति अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल होती है।

(2) सभ्यता, संस्कृति के प्रचार में सहायक है (Civilization is helpful in propagation

of Culture)- सभ्यता और संस्कृति का अगला संबंध यह है कि सभ्यता संस्कृति के प्रचार में मदद करती है। सभ्यता के माध्यम से ही संस्कृति के तत्व एक स्थान से दूसरे स्थान, में पहुँच जाते हैं। भोजन करने में टेबिल कुर्सी का प्रयोग भी सभ्यता का ही प्रतिफल है। टाई और सूट की संस्कृति के प्रसार में सभ्यता का योगदान महत्वपूर्ण है। गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित अहिंसा के सिद्धान्त को भारत से दूर विश्व के विभिन्न कोनों में प्रसारित करने का श्रेय सभ्यता को ही है। जैसे-जैसे सभ्यता का विकास होता जा रहा है, व्यक्ति की शारीरिक शक्ति में बचत होती जा रही है। शारीरिक शक्ति बचत होने के कारण ही वह अपनी आन्तरिक संस्कृति को विकसित करने में समर्थ हो सकता है। अजन्ता-एलोरा और खजुराहो की कला का विकास उस मानव ने किया होगा, जो शारीरिक श्रम से मुक्त हो गया होगा। शारीरिक श्रम की कमी और मानसिक

विकास के कारण ही मानव आज चन्द्रमा पर पहुंचा है तथा अन्य ग्रहों पर जाने की तैयारी कर रहा है। गौतम बुद्ध और महावीर शारीरिक श्रम से मुक्त हो जाने के कारण ही आध्यात्मिक शक्ति को विकसित करने में समर्थ हो सके हैं। इस प्रकार सभ्यता संस्कृति के प्रचार और प्रसार में मदद करती है। अतः कहा जा सकता है कि सभ्यता और संस्कृति का आपस में घनिष्ठ संबंध है।

(3) सभ्यता, संस्कृति का पर्यावरण है (Civilization is environment of Culture)- प्रत्येक देश, काल और समाज का अपना पर्यावरण होता है। इस पर्यावरण का जन्म और विकास सभ्यता के आधार पर होता है। पर्यावरण सभ्यता का निर्माण करता है, जिसके अनुसार सांस्कृतिक क्रियाओं का अनुशीलन होता है। आगबर्न और निमकॉफ ने मोटरगाड़ियों में स्वचालन (Self Starter) का उदाहरण देकर सिद्ध करने का प्रयास किया था कि सभ्यता, संस्कृति का पर्यावरण है। इन विद्वानों ने अपने अध्ययन में पाया कि प्रारम्भिक समाजों में मोटर-गाड़ियों में स्वचालन के स्थान पर हैंडिल का प्रयोग करना पड़ता था। यह श्रम-साध्य कार्य था, अतः स्त्रियों में मोटर-चालन का प्रचलन नहीं था। स्वचालन के आविष्कार के कारण मोटरगाड़ियों का चलाना सरल हो गया और इस प्रकार औरतों द्वारा मोटर चलाना सामान्य बात हो गई है। स्वचालन सभ्यता को उपलब्धि है। इस उपलब्धि ने सांस्कृतिक वातावरण को प्रभावित किया है, जिनके कारण अमेरिकन संस्कृति में स्त्रियों द्वारा मोटर चलाना आम बात हो गई। सभ्यता ने अनेक आविष्कारों को जन्म दिया है। उद्योग-व्यापार, संचार और आवागमन के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। इन सब के परिणामस्वरूप जीवन अत्यंत ही व्यस्त हो गया। मानव जीवन की इस व्यवस्था ने नवीन संस्कृति को जन्म दिया है। प्रारम्भिक समाजों में आवागमन के द्रुतगामी साधनों के न होने के कारण समुद्र को पार करना संस्कृति के प्रतिकूल माना जाता था, किन्तु अब इस प्रकार की विचारधारा में अन्तर आया है। सामाजिक और प्रौद्योगिक परिवर्तन ने अध्यात्म और मोक्ष वाली भारतीय संस्कृति को वर्तमान भौतिक आधारों पर लाकर खड़ा कर दिया है। इस प्रकार सभ्यता और संस्कृति का विकास एक-दूसरे पर आश्रित है। मैकाइवर ने लिखा है कि "सभ्यता परिणाम में जितनी विस्तृत होती है, संस्कृति बाहरी रूप में उतनी ही संकुचित हो जाती है।"

(4) संस्कृति, सभ्यता की दिशा को निर्धारित करती है (Culture determines the direction of Civilization) संस्कृति को अगर विचार (idea) कहा जा सकता है, तो सभ्यता वस्तु (Matter) है। सभ्यता का प्रवाह किस दिशा में होगा, इसका निर्धारण भी संस्कृति ही करती है। कारखाना सभ्यता का उदाहरण है, जबकि उत्पादन संस्कृति का। हम कारखाने की स्थापना कर सकते हैं, किन्तु इस कारखाने में कि वस्तु का उत्पादन होगा, इसका निर्धारण संस्कृति करती है। यंत्र सभ्यता है। इसका निर्माण किया जा सकता है, कि सभ्यता मानव समाज की क्रमिक उपलब्धि है। इस उपलब्धि का प्रयोग किस प्रकार किया जाएगा, इसका निर्धारण भी संस्कृति के माध्यम से ही होता है। मैकाइवर ने लिखा है कि "संस्कृति अंतिम मूल्यांकनों का क्षेत्र है और मानव को चाहिए कि वह इन मूल्यांकनों के दृष्टिकोण से ही अपनी विधियों और योजनाओं को आत्मसात् कर समस्त संसार का विश्लेषण करें।"

स्वप्रगति परीक्षण

1.समाज की भौतिक विरासत को कहते हैं-

(अ) संस्कृति (ब) सभ्यता (स) परिवर्तन (द) परम्परा

2. "सभ्यता समाज में मनुष्य का मानवीकरण है।" उपर्युक्त कथन है-

(अ) फेयरचाइल्ड(ब) मैथ्यू अर्नाल्ड (स) मैकाइवर और पेज (द) टायलर

3. निम्न में से कौन-सा कथन सत्य है-

(अ) सभ्यता परिवर्तनशील होती है।(ब) सभ्यता साधन है।

(स) सभ्यता एवं संस्कृति एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

(द) उपर्युक्त सभी कथन सत्य हैं।

4. निम्न में से कौन-सा कथन असत्य है-

(अ) सभ्यता की माप की जा सकती है।

(ब) सभ्यता का संबंध आन्तरिक वस्तुओं से होता है।

(स) सभ्यता का प्रसार तीव्रगति से होता है।

(द) सभ्यता का आधार प्रतियोगिता है।

5. "सभ्यता परिमाण में जितनी विस्तृत होती है, संस्कृति बाहरी रूप में उतनी ही संकुचित हो जाती है।" उपर्युक्त कथन है-

(अ) टायलर (ब) हाबेल (स) ऑगबर्न (द) मैकाइवर

14.12 सार संक्षेप

14.13 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जाँच

उत्तर :

(1) व (2) ब (22) द (3) ब (4) द

14.14 मुख्य शब्द

1. समाज: मनुष्यों का समूह जो समान मान्यताओं और संरचनाओं पर आधारित होता है।

2. संस्कृति: किसी समाज के जीवन की शैली, परंपराएँ, विश्वास और मूल्य।

3. सामाजिक संरचना: समाज की व्यवस्थित व्यवस्था जिसमें विभिन्न समूहों और संस्थाओं का समावेश होता है।

4. सांस्कृतिक असमानता: विभिन्न समाजों और संस्कृतियों में भिन्नता या भेदभाव।

14.15 संदर्भ ग्रन्थ

- प्रसाद, जयशंकर। (2019). स्कंदगुप्तः एकनाटक. नईदिल्ली: राजकमल प्रकाशन। ISBN: 978-8126710981.

- प्रसाद, जयशंकर। (2020). चंद्रगुप्त. वाराणसी: लोक भारती प्रकाशन।ISBN: 978-8180313025.
- शुक्ल, राम स्वरूप। (2021). जयशंकर प्रसाद का नाट्य साहित्यःएक अध्ययन. नई दिल्ली: साहित्य अकादमी।ISBN: 978-8126035039.

14.16 अभ्यास प्रश्न

परीक्षाओं के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न

(Important Questions for Examinations)

(अ) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. संस्कृति के अर्थ को स्पष्ट कीजिये ।

2. संस्कृति के लक्षणों की विवेचना कीजिये ।

3. संस्कृति को परिभाषित कीजिये एवं इसके प्रमुख लक्षणों को स्पष्ट कीजिये।

4. सभ्यता की अवधारणा की व्याख्या कीजिए।

5. सभ्यता से आप क्या समझते हैं? सभ्यता और संस्कृति के संबंध की विवेचना कीजिए।

6. सभ्यता एवं संस्कृति के बीच पाये जाने वाले अन्तरों को स्पष्ट कीजिए।

7. सभ्यता एवं संस्कृति पर निबंध लिखिए।

8. सांस्कृतिक तत्व की व्याख्या कीजिए।

9. संस्कृति-संकुल एवं सांस्कृतिक क्षेत्र की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।

10. सांस्कृतिक तत्व पर निबंध लिखिए।

11. सांस्कृतिक विलम्ब से आप क्या समझते हैं? सांस्कृतिक विलम्ब सिद्धान्त को स्पष्ट कीजिए।

12. सांस्कृतिक विलम्ब की अवधारणा की विवेचना कीजिए।

13. सांस्कृतिक विलम्ब पर संक्षेप में निबंध कीजिए।

14. सांस्कृतिक संघर्ष की विवेचना कीजिए।

15. सांस्कृतिक विलम्ब तथा सांस्कृतिक संघर्ष की अवधारणाओं की व्याख्या कीजिए।

(ब) लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. संस्कृति का शाब्दिक अर्थ लिखिये।

2. संस्कृति का मानवशास्त्रीय अर्थ लिखिये ।

3. संस्कृति की तीन प्रमुख परिभाषायें लिखिये।

4. सभ्यता एवं संस्कृति को 100 शब्दों में समझाइये ।

5. संस्कृति के प्रमुख लक्षणों को संक्षेप में स्पष्ट कीजिये।

6. सभ्यता के अर्थ को स्पष्ट कीजिए।

7. सभ्यता साधन है?

8. सभ्यता की दो प्रमुख परिभाषा लिखिए।

9. सभ्यता एवं संस्कृति के पाँच प्रमुख अन्तर लिखिए।

10. सांस्कृतिक तत्व से आप क्या समझते हैं?

11. राबर्ट बीरस्टीड ने संस्कृति के तत्वों को कितने भागों में विभाजित किया है?

12. राबर्ट बीरस्टीड ने कितने भौतिक तत्वों का उल्लेख किया है?

13. संस्कृति-संकुल को परिभाषित कीजिए।

14. संस्कृति-संकुल की विशेषताएँ लिखिए।

15. सांस्कृतिक क्षेत्र के अर्थ को स्पष्ट कीजिए।

16. सांस्कृतिक विलम्ब के अर्थ को स्पष्ट कीजिए।

17. सांस्कृतिक विलम्ब को परिभाषित कीजिए।

18. सांस्कृतिक विलम्ब को उदाहरण सहित संक्षेप में समझाइए ।

19. सांस्कृतिक विलम्ब सिद्धान्त की आलोचनाओं को संक्षेप में समझाइए ।

20. सांस्कृतिक संघर्ष को परिभाषित कीजिए।

इकाई -15

समाजीकरण [SOCIALIZATION]

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 समाजीकरण की परिभाषा (Definition of Socialization)

15.4 फ्रायड का सिद्धान्त या सुपर इगो सिद्धान्त

15.5 समाजीकरण में समाज और संस्कृति की भूमिका (Role of Society and Culture in Socialization)

15.6 सार संक्षेप

15.7 मुख्य शब्द

15.8 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

15.9 संदर्भ ग्रन्थ

15.10 अभ्यास प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

चाइल्ड ने समाजीकरण की परिभाषा देते हुए लिखा है कि समाजीकरण का तात्पर्य उस प्रक्रिया से है, जिसके आधार पर बच्चे अपने समाज के योग्य और उचित नागरिक बनते हैं। सामाजिक मान्यताओं को आत्मसात् करके अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों को सम्हालने की चेतना का विकास ही समाजीकरण है। प्रारम्भ में बालक अपना ही हित देखता है। सामाजिक हितों का मूल्य क्रमशः विकसित होता है। मान्य सामाजिक आदतों का विकास और समाज के एक उत्तरदायी, कर्तव्यपरायण सदस्य की भाँति जीवन व्यतीत करने की क्रियाओं को सीखना ही समाजीकरण है। व्यक्ति का मूल स्वभाव पशु की भाँति स्वार्थी, असभ्य और पाशविक होता है। जब मनुष्य के इस पाशविक मूल स्वभाव में परिवर्तन व परिमार्जन होता है, तभी वह मानव बनता है। पाशविक-वृत्ति के

मानव-वृत्ति में परिवर्तन को ही समाजीकरण कहा जा सकता है। चाइल्ड ने समाजीकरण की परिभाषा देते हुए लिखा है कि समाजीकरण का तात्पर्य उस प्रक्रिया से है, जिसके आधार पर बच्चे अपने समाज के योग्य और उचित नागरिक बनते हैं। सामाजिक मान्यताओं को आत्मसात् करके अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों को सम्हालने की चेतना का विकास ही समाजीकरण है। प्रारम्भ में बालक अपना ही हित देखता है। सामाजिक हितों का मूल्य क्रमशः विकसित होता है। मान्य सामाजिक आदतों का विकास और समाज के एक उत्तरदायी, कर्तव्यपरायण सदस्य की भाँति जीवन व्यतीत करने की क्रियाओं को सीखना ही समाजीकरण है। व्यक्ति का मूल स्वभाव पशु की भाँति स्वार्थी, असभ्य और पाशविक होता है। जब मनुष्य के इस पाशविक मूल स्वभाव में परिवर्तन व परिमार्जन होता है, तभी वह मानव बनता है। पाशविक-वृत्ति के मानव-वृत्ति में परिवर्तन को ही समाजीकरण कहा जा सकता है।

बालक प्रारम्भ में स्वयं को समाज का अंग नहीं समझता है। परिवार को अपनाकर स्वयं को परिवार

का एक सदस्य समझने की चेतना का क्रमशः विकास होता है, जब बालक पूरे समाज को अपनाकर स्वयं को समाज का एक सदस्य समझने लगता है, तभी उसका समाजीकरण पूर्ण होता है। दूसरे के सम्पर्क में आने के कारण बालक उनसे सीखता है। प्रारम्भ में बालक और समाज के हितो की ओर उसके माता-पिता व गुरुजन ही उसका ध्यान आकर्षित करते हैं और यहीं से समाजीकरण की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। समाजीकरण एक सामाजिक क्रिया है।

15.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. समाजीकरण की प्रक्रिया को समझना: व्यक्ति समाज में अपने स्थान और पहचान को कैसे प्राप्त करता है, इसका अध्ययन करना।

2. समाजीकरण के विभिन्न तत्वों का विश्लेषण: परिवार, विद्यालय, मीडिया और समाज के अन्य संस्थाओं का समाजीकरण पर प्रभाव देखना।

3. समाजीकरण का सामाजिक जीवन पर प्रभाव: यह कैसे व्यक्ति की सोच, व्यवहार और सामाजिक संबंधों को आकार देता है, यह समझना।

15.3 समाजीकरण की परिभाषा (Definition of Socialization)

(1) अकोलकर 'व्यक्ति द्वारा व्यवहार के परम्परागत प्रतिमानों को ग्रहण करने की प्रक्रिया उसका समाजीकरण कहलाती है क्योंकि वह उसके दूसरों से संगठन करने पर और उसके द्वारा कार्य करने वाला संस्कृति के प्रति खुलने (Exposure) पर निर्भर करता है।'

(2) रॉस "सहयोग करने वाले लोगों में हम भावना का विकास और उसकी क्षमता तथा साथ काम करने के सम्पर्क में वृद्धि समाजीकरण है।'

(3) बोगार्डस "समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिससे व्यक्ति मानव कल्याण के लिए एक दूसरे पर निर्भर होकर व्यवहार करना सीखते हैं और ऐसा करने में सामाजिक आत्मनियन्त्रण, सामाजिक जिम्मेदारी और सन्तुलित व्यक्तित्व का अनुभव करते हैं।"

(4) गिलिन और गिलिन "समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिससे व्यक्ति समूह के क्रियाशील सदस्य के रूप में स्तरों के अनुसार, रूढ़ियों के अनुरूप, परम्पराओं का पालन करते हुए और सामाजिक संस्थाओं के साथ व्यवस्थान करते हुए विकसित होता है।".

सामाजिक जीवन की विभिन्न दशाओं के अनुरूप एक व्यक्ति का विकास समाजीकरण द्वारा ही होता है। एक व्यक्ति समाज में प्रचलित विभिन्न मान्यताओं या गतिविधियों के साथ व्यवस्थापन करता है। वह सीखता है कि साथियों के बीच किस तरह व्यवहार करना चाहिए। व्यक्ति उन्हीं आदर्शों को निभाता है जो उसके समाज में प्रचलित रहते हैं। व्यक्ति समाज के आदर्शों और विचारों को आत्मसात करने का प्रयास करता है। व्यक्ति अपने दायित्वों को पूर्ण करने का प्रयास करता है। इसी आधार पर गिलिन और गिलिन ने बड़े ही मार्मिक शब्दों में समाजीकरण को परिभाषित किया है कि "समाजीकरण एक

प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति पूर्व निर्धारित स्थितियों दशाओं के साथ समाज में जिसका कि वह सदस्य है, व्यवस्थापन करने का प्रयत्न करता है।"

व्यक्ति अनुकरण (Imitation), सुझाव (Suggestion) तथा सहानुभूति (Sympathy) द्वारा एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं। इसके अतिरिक्त सामाजिक संस्थाएँ और समितियाँ भी व्यक्ति का समाजीकरण करते हैं। व्यक्ति समाज की अनेक प्रक्रियाओं, प्रशंसा और आरोप (Praise and Blame), सहिष्णुता (Submission) तथा प्रभुत्व (Ascendency) का फल है, इन्हीं से समाजीकरण होता है।

(5) किम्बाल यंग "समाजीकरण व्यक्ति का सामाजिक और सांस्कृतिक संसार से परिचय कराने, तथा उस समाज के आदर्श, नियमों तथा मूल्यों को स्वीकार करने को प्रेरित करने वाली प्रक्रिया है।"

(6) फिचर "समाजीकरण एक व्यक्ति और उसके अन्य साथी व्यक्तियों के बीच पारस्परिक प्रभाव

की एक प्रक्रिया है, यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके फलस्वरूप व्यक्ति सामाजिक व्यवहार के प्रतिमानों को

स्वीकार करता तथा उसके साथ अनुकूलन करता है।

(7) ग्रीन "समाजीकरण वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति का विकास इस भाँति होता है कि हम उसे सामाजिक प्राणी कह सकते हैं।"

(8) न्यूमेयर (Neumeyer) "व्यक्ति के सामाजिक प्राणी के रूप में विकसित होने की प्रक्रिया को ही समाजीकरण कहते हैं।"

है।" (9) जॉनसन "समाजीकरण एक सीखना है, जो सीखने वाले को सामाजिक कार्य के योग्य बनाता

इस प्रकार 'समाजीकरण की परिभाषा मानव सीखने के रूपों में की जा सकती है, जिसके द्वारा मनुष्य 'सामाजिक प्राणी' बनता है।'

समाजीकरण के सिद्धान्त (Theories of Socialization)

समाजीकरण की प्रक्रिया में समाज की विभिन्न संस्थाओं और संगठनों के महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। समाजीकरण का समाज और व्यक्ति की दृष्टि से अत्यन्त ही महत्व है। स्वस्थ्य समाजीकरण व्यक्तित्व का संगठन तो करता ही है, इसके साथ ही समाज को संगठित करके इसे स्थिरता प्रदान करता है। सामाजिक संस्थाओं और संगठन के अतिरिक्त अनेक मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ भी समाजीकरण की प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं। इन प्रक्रियाओं में सुझाव, सहानुभूति और अनुकरण महत्वपूर्ण है।

समाजीकरण स्वयं में एक जटिल प्रक्रिया है। इसके सहायक कारकों की व्याख्या करना और भी कठिन कार्य है। इस कठिन कार्य को अनेक विद्वानों ने अपने अनुसार समझने का प्रयास किया। साथ ही समाजीकरण के कारणों की व्याख्या प्रस्तुत की है। इन विद्वानों की इस व्याख्या को "सिद्धान्त" के नाम से जाना जाता है। यहाँ

समाजीकरण के सम्बन्ध में प्रस्तुत इन्हीं सिद्धान्तों की संक्षिप्त विवेचना की जाएगी।

15.4 फ्रायड का सिद्धान्त या सुपर इगो सिद्धान्त (Theory of Freud) Or (Super Ego Theory)

समाजीकरण के सम्बन्ध में प्रसिद्ध मनोविश्लेषणवेत्ता फ्रायड ने अपने सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। उसके अनुसार समाजीकरण की मान्यता की चेतना के निम्न तीन आधार हैं-

(i) इंड (Id),

(ii) इगो (Ego),

(iii) सुपर इगो (Super Ego) 1

फ्रायड ने इन तीनों की जो विवेचना प्रस्तुत की है, वह निम्नलिखित है -

(1) ईड (Id) फ्रायड ने ईड की निम्न विशेषताएँ बतलाई है -

(a) यह मनुष्य की वह अवस्था है जिसमें वह मूलतः काम प्रवृत्तियों के द्वारा संचालित होता है।

(b) यह प्रवृत्ति अत्यन्त ही प्रबल होती है, इसलिए इसकी सन्तुष्टि करना अनिवार्य होता है।

(c) सन्तुष्टि की अनिवार्यता का परिणाम यह होता है कि इसमें किसी प्रकार के नियमों और व्यवस्थाओं का पालन नहीं किया जाता है।

(d) यह प्रवृत्ति व्यक्ति में क्रियाशीलता का विकास करती है।

(2) सुपर इगो (Super Ego) इसकी निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं -

(a) सुपर इगो सामाजिक मान्यताओं को प्रस्तुत करता है।

(b) ये मान्यताएँ व्यक्ति को उन नियमों की जानकारी प्रदान करती हैं, जिनकी सहायता से वह अपनी मूलभूत प्रवृत्तियों की सन्तुष्टि कर सकता है,

(c) इस प्रकार इसकी सहायता से व्यक्ति उन नियमों की जानकारी प्राप्त करता है, जिनसे अपनी इच्छाओं की पूर्ति कर सके। (3) इगो (Ego)- यह मानव मस्तिष्क का तीसरा भाग है। यह ईंग और सुपर इगो दोनों ही पक्षों समाजशास्त्र बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर-1 पर विचार प्रस्तुत करता है, उचित और अनुचित की जाँच करता है तथा ऐसे साधन बनाता है जिससे मनुष्य अपनी मूलभूत आवश्यकताओं और इच्छाओं की सन्तुष्टि कर सके।

इस प्रकार मानव मस्तिष्क के उपर्युक्त तीनों भाग समाजीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका का काम करते हैं। साथ ही इनके द्वारा पशुवत् जीव (Animal Being) एक सामाजिक जीव (Social Being) में परिवर्तित हो जाता है।

मीड का सिद्धान्त या आत्मवादी या 'स्व' का सिद्धान्त (Theory of Mead) Or (Theory of Self)

यदि हम मीड के समाजीकरण के सिद्धान्त को संक्षेप में कहना चाहें तो इसे 'अपने सम्बन्ध में चेतना' (Self Consciousness) या 'स्व-चेतना' कहकर सम्बोधित किया जा सकता है। मीड के अनुसार व्यक्ति के अन्दर विद्यमान 'स्व' का विकास करना ही समाजीकरण है। मौलिक प्रश्न यह पैदा होता है कि इस 'स्व' का विकास कैसे होता है?

जन्म के समय बालक एक प्राणिशास्त्रीय जीव (Biological Individual) मात्र होता है। उसका संचालन मूलप्रवृत्तियों (Instincts) के द्वारा होता है। समाजीकरण की यह प्रक्रिया बालक के जन्म के साथ से ही प्रारम्भ हो जाती है। जब बालक पैदा होता है, तो वह स्वकेन्द्रित (Ego Centric) रहता है, और उसमें सिर्फ 'मैं' (1) का ही ज्ञान रहता है। उसे अच्छे और बुरे का ज्ञान नहीं होता है। इसके बाद वह माता-पिता तथा अन्य सम्बन्धियों के सम्पर्क में आता है। इसका परिणाम यह होता है कि 'मैं' (1) की भावना 'वह' (He) की भावना में परिणित हो जाती है। इस प्रकार बालक में 'मैं' और 'वह' की भावना का विकास हो जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि उसमें 'स्व' (Self) के विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। परिणामस्वरूप एक प्राणिशास्त्रीय जीव (Biological Individual) 'स्व चेतन व्यक्ति' (Self-Conscious Individual) के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

इस सम्बन्ध में मीड का कहना यह कि व्यक्ति में 'स्व' का विकास उस समय से ही हो जाता है, सबसे व्यक्ति अपने को समझने लगता है। व्यक्ति अनुकरण, सुझाव और सहानुभूति के माध्यम से अपने स्व को विकसित करता है। वह अपने को सामाजिक प्राणी समझने लगता है। इससे उसमें दृष्टिकोण और विचारों का जन्म होता है। आत्म या स्व के विकास के साथ ही व्यक्ति के व्यवहार निश्चित होने लगते हैं। वह अपने और पराए के व्यवहार में अन्तर करने लगता है। इस प्रकार उसका समाजीकरण प्रारम्भ हो जाता है। समाजीकरण के सम्बन्ध में मीड ने इसी प्रकार के विचार प्रतिपादित किए हैं।।

दुर्खीम का सिद्धान्त या सामूहिक प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त

(Theory of Durkhiem) Or (Theory of Collective Representation)

समाजीकरण के सम्बन्ध में दुखींम ने सामूहिक प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। इसका कारण यह है कि "दुर्खीम के लिए समस्त मानवीय व्यवहार समूह की प्रतिछाया मात्र है।" (For Durkhiem all human activity is merely a reflection of group) ।

मौलिक प्रश्न यह है कि सामूहिक प्रतिनिधित्व क्या है? दुखींम के सामूहिक प्रतिनिधित्व को निम्न आधारों पर समझा जा सकता है -

(1) व्यक्तिगत प्रतिनिधित्व (Individual Representation) व्यक्तिगत प्रतिनिधित्व की मूल आत्मा निम्न है -

(a) समाज में अनेक व्यक्ति होते हैं।

(b) इन अनेक व्यक्तियों के अलग-अलग विचार, आदर्श और भावनायें होती हैं।

(c) ये विचार, आदर्श और भावनाएँ व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं।

(2) सामूहिक प्रतिनिधित्व (Collective Representation) सामूहिक प्रतिनिधित्व को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है -

(a) जिस प्रकार व्यक्ति के आदर्श, विचार और भावनाएँ होती हैं। ठीक इसी प्रकार समाज के आदर्श, विचार और भावनाएँ होते हैं।

(b) समाज के ये आदर्श, विचार और भावनाएँ सामाजिक प्रतिनिधित्व करते हैं। व्यक्ति के अलग-अलग विचार, आदर्श और भावनाओं के होते हुए भी जब व्यक्ति समूह में आता है; तो उसके व्यक्तिगत विचार, आदर्श और भावनाएँ सामूहिक विचार, आदर्श और भावनाओं के अधीन हो जाते हैं। समूह में व्यक्ति के यही सामूहिक प्रतिनिधित्व के नाम से जाने जाते हैं। दुर्खीम ने समाजीकरण और व्यक्तित्व के विकास में समूहवाद को अत्यन्त ही महत्व प्रदान किया है। इस सम्बन्ध में 'स्मालपान' ने लिखा है कि "सामाजिक समूह को दुखींम ने बार-बार उच्च आध्यात्मिकता, व्यक्तित्व सृजनात्मकता एवं सर्वव्यापकता के गुणों से विभूषित किया है।"

(3) सामूहिक चेतना (Collective Consciousness) दुर्खीम के अनुसार समाजीकरण में अन्तःक्रियाओं की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। इन अन्तःक्रियाओं के कारण सामूहिक चेतना का विकास होता है। यह सामूहिक चेतना व्यक्तिगत अन्तः क्रियाओं के कारण व्यक्तिगत चेतना के समन्वय और संगठन के कारण विकसित होती है। इस सामूहिक चेतना का आधार समाज या समूह होता है। यह सामूहिक चेतना 'सामूहिक प्रतिनिधानों' (Collective Representation) या प्रतीकों (Symbols) को जन्म देती हैं। ये प्रतीक सामाजिक आदर्श और मूल्य होते हैं। इन आदशों और मूल्यों के अनुसार व्यक्ति अपने को ढालता है। इसी ढालने की क्रिया को ही समाजीकरण कहा जाता है।

कूले का सिद्धान्त या 'स्वयं का आईना' का सिद्धान्त

(Theory of Cooley or Mirror Theory)

समाजीकरण के सिद्धान्त की विवेचना करते हुए कूले ने लिखा है कि 'व्यक्ति' और 'समाज' दो पृथक सत्ताएँ नहीं है। इन्हें एक दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता है। समाजीकरण के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए कूले ने दो प्रश्नों के उत्तर दिये हैं-

(i)स्व क्या है?

(ii) व्यक्तित्व क्या है?

बालक में 'स्व' का विकास ही समाजीकरण की आत्मा व्यक्ति और समाज अभिन्न होने के कारण व्यक्ति का स्वभाव सामाजिक सम्पर्क (Social Contact) और अनुभवों (Experiences) पर निर्भर होता है। अन्तःक्रियाओं के द्वारा व्यक्ति समाज में अपने विचार प्रस्तुत करता है और दूसरों के विचारों को ग्रहण करता है। इस प्रकार अन्तःक्रियाओं के परिणामस्वरूप 'स्व' का विकास होता है। कूले का विचार है कि 'स्व' की दृष्टि से तीन मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ होती हैं, ये मनोवैज्ञानिक प्रक्रियायें निम्नलिखित हैं -

(अ) व्यक्ति में ऐसी धारणाएँ और विचार विकसित होते हैं कि 'दूसरे व्यक्ति उसके बारे में क्या सोचते हैं।' (आ) दूसरे व्यक्ति उसके बारे में जो कुछ भी विचार रखते हैं वे अच्छे हैं या बुरे? वह अपने मन में इन विचारों की अच्छाई और बुराई के बारे में सोचता है, और

(इ) दूसरे हमारे बारे में जो भी विचार रखते हैं इसकी जब हमें जानकारी होती है तो इसकी निम्न दो प्रतिक्रियाएँ होती है -

(i) या तो हम गर्व का अनुभव करते हैं, या

(ii) शर्मिन्दा होते हैं।

इन तीनों प्रक्रियाओं के आधार पर स्व का निर्माण होता है। हम दूसरे व्यक्तियों को दर्पण मानते हैं, उसमें हमारा जो प्रतिबिम्ब पड़ता है वही हमारा 'स्व' (Self) है। यही कारण है कि कूले ने स्व को 'दर्पण स्व' कहा है। इसी स्व के कारण

व्यक्ति में आत्म-चेतना का विकास होता है। यही आत्म-चेतना समाजीकरण का आधार है।

जब बालक पैदा होता है तो उसमें 'स्व' का अभाव रहता है। जैसे ही वह दूसरे के सम्पर्क में आता है स्व का विकास प्रारम्भ हो जाता है। इस प्रकार स्व या समाजीकरण के विकास में समाज का स्थान महत्वपूर्ण होता है।

15.5 समाजीकरण में समाज और संस्कृति की भूमिका (Role of Society and Culture in Socialization)

समाजीकरण एक लम्बी प्रक्रिया है। इस लम्बी प्रक्रिया में समाज और संस्कृति की महती भूमिका होती है। भारतीय दर्शन में संस्कारों का उल्लेख है। संस्कारो के माध्यम से व्यक्तित्व को विकसित करने का प्रयास किया जाता था। संतान के पैदा होने के पहले से ही संस्कारों का सम्पादन व्यक्तित्व को विकसित करने का ही एक माध्यम था। मृत्यु के बाद भी संस्कारों की जो व्यवस्था की गई है, उसका उद्देश्य भी व्यक्तित्व का समुननत और विकसित करना है। समाजीकरण में समाज और संस्कृति की जिन संस्थाओं की भूमिका होती है, उनका समाजशास्त्र बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर-1 विवरण इस प्रकार है-

(1) परिवार (Family) परिवार सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्था है जिसका समाजीकरण में योगदान है। बालक का विकास परिवार में ही होती है। उसकी संवेगात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति परिवार ही करता है। परिवार के सदस्यों के बीच इन आवश्यकताओं की पूर्ति होती है और इस प्रकार उसका समाजीकरण होता है। व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्यु तक परिवार में ही रहता है। समाज में ऐसी कोई संस्था नहीं है, जहाँ व्यक्ति इतने लम्बे समय तक रहता हो। परिवार में जो शान्ति और सुरक्षा मिलती है, अन्यत्र संभव नहीं है। परिवार के सदस्य अन्तःक्रियात्मक सम्बन्धों से बँधे रहते हैं। इन अन्तःक्रियात्मक पारिवारिक सम्बन्धों का समाजीकरण पर स्थायी रूप से प्रभाव पड़ता है। समाजीकरण में निम्न पारिवारिक दशाओं का प्रभाव पड़ता है-

(i) माता-पिता के पारस्परिक सम्बन्ध, (ii) माता-पिता और बच्चों के सम्बन्ध, (iii) पक्षपातपूर्ण व्यवहार, (iv) परित्यक्त या विधवा माता; (v) संयुक्त परिवार,

(vi) भाई-बहनों के परस्पर सम्बन्ध, (vii) परिवार में बालक का स्थान बड़ा बच्चा या छोटा बच्चा, (viii) अन्य सम्बन्धियों का प्रभाव, (ix) परिवार का आर्थिक व सामाजिक स्तर ।

इस प्रकार समाजीकरण में उपर्युक्त वातावरण का बड़ा हाथ होता है। परिवार किस प्रकार समाजीकरण में सहायता करता है, विभिन्न अध्ययनों द्वारा स्पष्ट है। हीली और बोनर ने लिखा है कि बाल अपराधी अधिकतर उन्हीं परिवारों में मिलते हैं जिनमें स्वस्थ सामाजिक सम्बन्धों का अभाव होता है। फ्रायड और एलडर का विचार है कि बालक जिस प्रकार का व्यवहार परिवार में सीखता है, समाज में वैसा ही व्यवहार करता है। टरमैन के अनुसार वे ही बालक बड़े होकर विवाह को सुखमय बना सकते हैं, जिनके माँ-बाप सुखी थे। पारिवारिक शान्ति और सुख के अभाव में लड़के-लड़कियाँ बिगड़ जाते हैं। इसी प्रकार की परिस्थितियों में बहुत से चोर, डाकू कातिल और वेश्याओं का जन्म होता है।

(2) खेल समूह (Play Groups) प्राथमिक समूहों में परिवार के बाद समाजीकरण के साधनों में खेल समूहों की महत्वपूर्ण भूमिका है। खेल के समूह महत्वपूर्ण प्राथमिक समूह होते हैं। खेल के समूह में साथ-साथ खेलने वाले बच्चे होते हैं और जैसे ही बालक चलने लगता है, घर से बाहर आता है, उसका सम्पर्क अन्य बच्चों से होता है। उसके साथ खेलने वाले ये बच्चे विभिन्न परिवारों से आते हैं, जिनकी रुचियाँ, रीति-नीति, विचार और पद्धतियों में अन्तर भिन्नताएँ होती हैं। बालक इन विविधताओं के बीच खेलते हुए अपने व्यक्तित्व की आधारशिला रखता है। इस आधारशिला में परिवार और खेल समूह का मिला-जुला वातावरण उसके समाजीकरण के महत्वपूर्ण अंग बन जाते हैं।

(3) पड़ोस (Neighbourhood) परिवार के सदस्यों और खेल के साथियों के अतिरिक्त

समाजीकरण की प्रक्रिया में पास-पड़ोस में रहने वाले व्यक्तियों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। बालक पास-पड़ोस में रहने वाले व्यक्तियों के विचार, आदर्श और क्रियाओं का बालक के समाजीकरण पर प्रभाव पड़ता है। इन विचारों, आदर्शों और क्रियाओं के प्रति वह प्रतिक्रिया पर प्रत्युत्तर (Response) करता है।

यह प्रत्युत्तर चेतन या अचेतन किसी भी प्रकार का हो सकता है। परिणाम यह होता है कि व्यक्ति की आदतों, क्रियाओं और विचारों का विकास होता है, जो समाजीकरण के महत्वपूर्ण अंग होते हैं।

(4) नातेदारी समूह (Kinship Groups) नातेदारी समूह उन व्यक्तियों का समूह होता है, जो रक्त सम्बन्धों के माध्यम से आपस में अन्तःसम्बन्धित होते हैं। इसमें वे रिश्तेदार आते हैं, जो आपस में रक्त और विवाह के बन्धनों से बंधे हुए होते हैं। इस दृष्टि से समाजीकरण की प्रक्रिया में नातेदारी समूह का अत्यन्त ही महत्व है। बच्चा अपने रिश्तेदारों से जो कुछ भी सीखता है, इसके आधार पर अपने व्यक्तित्व को विकसित करता है।

(5) स्कूल (School) परिवार के पश्चात् स्कूल ही वह स्थान है, जहाँ बालक का सामाजिक विकास होता है। स्कूल ही बालक के बौद्धिक सामाजिक और संवेगात्मक विकास को बल प्रदान करता है। समाज और संस्कृति में प्रचलित आदर्शों, मान्यताओं और दार्शनिक स्थापनाओं की शिक्षा स्कूल में ही मिलती है। परिवार से अधिक विस्तृत समाज का अनुभव बालक को स्कूल में ही होता है। अपने मित्रों के संसर्ग में और गुरुजनों की शिक्षा के प्रभाववश बालक का समाजीकरण द्रुतगति से होता है, स्कूल कार्यक्रमों का बालक के समाजीकरण पर प्रभाव पड़ता है -

(i) प्रतियोगिताएँ और स्पष्ट निर्णय,

(ii) आदर और सेवा भाव,

(iii) सहपाठियों और अध्यापकों का प्रभाव,

(iv) अनुशासनपूर्ण जीवन,

(v) स्कूल का भौतिक वातावरण ।

(7) समाज अथवा समुदाय समाज अनेक रूपों में बालक के समाजीकरण को प्रभावित करता है। निम्नलिखित सामाजिक परिस्थितियों की उपस्थिति व अनुपस्थिति का बालकों के समाजीकरण पर गहरा प्रभाव पड़ता है -

(i) मनोरंजन के साधन,

(ii) सामाजिक केन्द्र (संख्या, स्थान, सुविधाएँ),

(iii) सामाजिक प्रथाओं व परम्पराओं में बच्चों को प्राप्त स्वतन्त्रता

(iv) वर्ग, वर्ण, जाति, धर्म व अन्य भेद,

(v) जातीय पूर्व धारणाएँ,

(vi) धार्मिक उदारता,

(vii) समाज का आर्थिक व राजनैतिक ढाँचा,

(viii) शिक्षा की सुविधाएँ,

(ix) जातीय व राष्ट्रीय परम्पराएँ व प्रथाएँ,

(x) संस्कृति (साहित्य, कला, इतिहास)।

मैस्ली और मिटिल मैन ने कुच्छ सामाजिक परिस्थितियों का उल्लेख किया है जिनकी उपस्थिति में बालक के समाजीकरण में बाधा पड़ती है। ये परिस्थितियाँ इस प्रकार हैं-

(i) सांस्कृतिक परिस्थितियाँ सहः सांस्कृतिक विरोध, वर्ण, वर्ग, जाति और धर्म सम्बन्धी पूर्ण धारणाएँ, निर्धनता, लगातार व्यापक बेरोजगारी ।

(ii) बालकालीन परिस्थितियाँ माता-पिता द्वारा अस्वीकृति, स्नेह का अभाव, लाड़-प्यार, विधवा माता, माता-पिता में सतत झगड़ा व तलाक, पक्षपात और असुरक्षा, सामाजिक दृष्टि से एकाकीपन, एकान्त, अपूर्ण व अपर्याप्त लिग शिक्षा, दुःखद अनुभव, अनुचित, अन्यायपूर्ण व अधिक शारीरिक दण्ड।

भाई, बहन, मित्र, पड़ोसी व सहपाठी की जलन ।

(iii) तात्कालिक परिस्थितियाँ भग्नाशाएँ अपमान और मजाक, अनियमितता, अन्याय, निर्दयता,

(iv) अन्य परिस्थितियाँ स्कूल की शिक्षा, आत्मनिर्भरता की कमी, लगातार दूसरों से तुलना, शारीरिक न्यूनता व हीनता, असफलताएँ, व आशा से कम सफलताएँ, स्त्री व पुरुष सम्बन्धी सामाजिक आशाओं की पूर्ति न कर सकने का

आभास, पाप की भावना, सदैव बच्चा समझा जाना, अनुपयुक्त व्यक्तियों के साथ अनन्यता, उदासीनता, खेल व साथियों का अभाव।

(8) जाति (Caste) एक ही समाज और संस्कृति में जातीय विभेद होते हैं। प्रत्येक जाति की अपनी प्रथाएँ व परम्पराएँ होती हैं। उदाहरणार्थ, ब्राह्मण जाति में उत्पन्न बालक के समाजीकरण का क्रम शूद्र जाति के बालक के समाजीकरण के क्रम से एकदम भिन्न होगा। संस्कृति की विभिन्न उपलब्धियों का प्रयोग विभिन्न जातियाँ भिन्न-भिन्न रूप में करती है। इस विभिन्नता का प्रभाव बालक के समाजीकरण पर भिन्न रूप से पड़ता है। प्रत्येक जाति में परिवार के गठन का स्वरूप परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार जाति और धर्म बालक के समाजीकरण को विशेष दिशा देते हैं।

(9) अनुपम अनुभव (Unique Experience) उपर्युक्त कारकों के अलावा व्यक्ति को कुछ अनुपम अनुभव भी प्राप्त होते हैं। उनके अनुभवों के आधार पर ऐसी भावना का विकास होता है जो कि वह अपने द्वारा सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों को भी प्रदान करता है या उन्हें किसी न किसी मात्रा में अवश्य परिणित करता है। मानव अपने समूह की विशेष संस्कृति के द्वारा विभिन्न अनुपम अनुभवों के सम्पर्क में आता है। उसके अनचाहे और चाहे अनुभव उसे नवीनता प्रदान करते हैं।

1.50 मानव के अनुपम अनुभव भी उसके विकास में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। क्यूवर का कथन है "अपनी समाजशास्त्र बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर-1 अनेक व्यक्तिगत चाह और अफवाह, आशा और भय, अपने विशिष्ट अनुभवों का फल है, जो कि प्रत्येक व्यक्ति इन अनुपम अनुभवों को रखता था और आज भी रखता है।"

(10) भाषा (Language) समाजीकरण की प्रक्रिया में 'सामाजिक अन्तःक्रिया' (Social Interaction) का महत्वपूर्ण स्थान होता है। अन्तःक्रिया ही वह आधार है जिसके द्वारा व्यक्ति का विकास होता है। साथ ही, वह अनेक संस्थाओं और संगठनों को विकसित करने में सफल होता है। भाषा मानव समाज में अन्तःक्रिया का सशक्त माध्यम है। भाषा की सहायता से ही व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों और समूहों के बारे में जानकारी प्राप्त करता है। भाषा ही वह आधार

है, जिसके द्‌वारा संस्कृति, आदशों और मूल्य का निर्माण होता है। यह संस्कृति, आदर्श और मूल्य सामाजिक विरासत (Social Heritage) के रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होते रहते हैं। इस प्रकार भाषा व्यक्तित्व का विकास तो करता ही है साथ ही उसको भाषा के द्‌वारा जीवन और जगत के बारे में विभिन्न प्रकार की जानकारी भी प्राप्त होती है। इस प्रकार भाषा समाजीकरण का महत्वपूर्ण अंग है।

(11) अन्य द्‌वैतीयक समूह और संस्थाएँ (Other Secondary Groups and Institutions) समाजीकरण के लिए ऊपर जो साधन बतलाए गये हैं, इनके अतिरिक्त अन्य द्‌वैतीयक समूह और संस्थाएँ भी समाजीकरण का निर्माण करती है। इन द्‌वैतीयक संस्थाओं में राष्ट्र, राष्ट्रीयता, राजनैतिक दल, धार्मिक संस्थाएँ, व्यावसायिक समूह, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध आदि प्रमुख हैं। ये सभी द्‌वैतीयक समूह और संस्थाएँ समाजीकरण की आधारशिला को निर्मित करते हैं।

समाजीकरण का महत्व (Importance of Socialization)

व्यक्ति के सामाजिक जीवन में समाजीकरण का अत्यधिक महत्व है। इसका कारण यह है कि मानव एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक प्राणी होने के लिए समाज में रहना उसके लिए अनिवार्य है। समाजीकरण वह प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से व्यक्ति समाज में रहने के योग्य बनता है। संक्षेप में, व्यक्ति के सामाजिक जीवन

में समाजीकरण की प्रक्रिया का महत्व निम्न कारणों से है

(1) मूल्यों और आदर्शों का निर्माण (Creation of Values and Norms) - समाजीकरण की प्रक्रिया का सर्वाधिक महत्व इसलिये है कि इसके द्‌वारा विभिन्न सामाजिक मूल्यों और मान्यताओं का निर्माण होता है। ये मूल्य और आदर्श व्यक्ति के जीवन और समाज से सम्बन्धित निम्न निर्माणात्मक कार्य करते हैं -

(a) व्यक्तित्व का निर्माण समाजीकरण का महत्वपूर्ण कार्य है मानव व्यक्तित्व का निर्माण करना। समाजीकरण वह प्रक्रिया है जो बालकों के शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक और भावात्मक पहलू को विकसित

करती है। इस प्रकार व्यक्तित्व का निर्माण होता है और यह आकर्षक बनता है।

(b) व्यक्ति का निर्माण समाजीकरण व्यक्तित्व को निर्मित करने वाली प्रक्रिया है। इस प्रकार व्यक्तित्व के निर्माण के द्वारा व्यक्ति का स्वयं ही निर्माण हो जाता है, क्योंकि व्यक्ति व्यक्तित्व का ही स्वरूप होता है।

(c) समाज का निर्माण समाज का निर्माण व्यक्तियों से होता है, समाजीकरण व्यक्ति में सभी प्रकार की सामाजिक सम्भावनाओं को विकसित करके उसे सामाजिक प्राणी बनाता है। इस प्रकार उस समाज में जिसमें समाजीकरण की प्रक्रिया उपयुक्त होती है अच्छे व्यक्तियों से अच्छे समाज का निर्माण होता है समाजीकरण ही वह साधन है जिससे व्यक्ति समाज में रहने के योग्य बनता है। इस प्रकार समाजीकरण समाज का भी निर्माण करता है।

(d) सामाजिक आदर्शों का निर्माण प्रत्येक समाज कुछ आदर्शों और मूल्यों पर टिका होता है। इन आदशों और मूल्यों का निर्माण समाज और उसके व्यक्तियों द्वारा होता है। किसी समाज में यदि अच्छे व्यक्तित्व वाले व्यक्ति होंगे, अच्छा समाज होगा, तो मूल्य और आदर्श भी अच्छे बनेंगे। ये आदर्श समाज के मापदण्ड (Standard) होते हैं। इनके आधार पर समाज को जानने पहचानने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार समाजीकरण की प्रक्रिया सामाजिक आदशों और मूल्यों को निर्मित करती है।

(c) अनुकूल पर्यावरण का निर्माण पर्यावरण की अनुकूलता और प्रतिकूलता बहुत कुछ व्यक्तित्व पर आधारित होती है। समाजीकरण व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करता है और उसे प्रत्येक परिस्थिति के बारे में जानकारी देता है। इसका परिणाम यह होता है कि समाज में अनुकूल पर्यावरण का निर्माण होता है। इस अनुकूल पर्यावरण के निर्माण में समाजीकरण और व्यक्तित्व की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। समाजशास्त्र : बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर-

(2) व्यवहारों पर नियन्त्रण (Control on Behaviours) समाजीकरण व्यवहारों को नियन्त्रित करने में सहायता करता है। समाजीकरण वह सामाजिक प्रक्रिया है जिससे व्यक्ति के व्यवहारों को उचित दिशा प्राप्त होती है। उचित समाजीकरण व्यक्ति को उचित व्यवहार करने का ज्ञान प्राप्त करता है। इसका परिणाम यह होता है कि समाज में व्यक्ति के व्यवहारों में नियन्त्रण बना रहता है।

(3) सामाजिकता का ज्ञान (Knowledge of Sociability) समाजीकरण व्यक्ति में सामाजिक भय (Social Fear) की प्रतिस्थापना करता है। इस प्रतिस्थापना का परिणाम यह होता है कि व्यक्ति असामाजिक और समाज विरोधी तत्वों का त्याग कर देता है। वह जानता है कि यदि सामाजिक मान्यताओं के विपरीत काम किया जाएगा तो इससे सामाजिक बहिष्कार होगा। इसका परिणाम यह होता है कि व्यक्ति को सामाजिकता का ज्ञान प्राप्त होता है।

(4) उत्तरदायित्व का ज्ञान (Knowledge of Responsibility) समाज के कुछ निश्चित मापदण्ड, मूल्य और आदर्श होते हैं। व्यक्ति को ऐसा ज्ञान होना चाहिए कि वह किस प्रकार इन मापदण्डों, आदर्शों और मूल्यों की रक्षा करे। समाजीकरण व्यक्ति को इस आशय की जानकारी प्रदान करता है कि इन मापदण्डों, आदर्शों और मूल्यों का पालन करना चाहिए। इसका परिणाम यह होता है कि व्यक्ति में उत्तरदायित्व की भावना का विकास होता है।

(5) सीखने का ज्ञान (Knowledge of Learning) 'मानव सीखना' (Human Learning) अत्यन्त ही महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के द्वारा व्यक्ति सामाजिक ज्ञान को सीखने का प्रयास करता है। समाज में 'सद्' और 'असद्' दो प्रकार की प्रवृत्तियों वाले व्यक्ति होते हैं। समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा असद् प्रवृत्ति वाले व्यक्तियों को सद्द्मवृत्ति में परिवर्तित करती है।

इससे स्पष्ट होता है कि समाजीकरण में समाज एवं संस्कृति का अत्यधिक महत्व है।

स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्न :

1. प्रश्न: शिक्षा और राजनीति का संबंध क्या है?

2. प्रश्न: शिक्षा राजनीति को कैसे प्रभावित करती है?

3. प्रश्न: राजनीति शिक्षा को कैसे प्रभावित करती है?

15.6 सारांश

समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से व्यक्ति समाज के मानदंडों, मूल्यों और संस्कृति को अपनाता है। यह प्रक्रिया जीवन भर चलने वाली होती है, जिसमें परिवार, विद्यालय, और समाज की अन्य संस्थाएँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। समाजीकरण के दौरान, व्यक्ति अपनी पहचान, सामाजिक मान्यताएँ और सांस्कृतिक मूल्य विकसित करता है, जो उसे समाज में एक समर्पित और सक्रिय सदस्य बनाता है। यह व्यक्ति के मानसिक और सामाजिक विकास को प्रभावित करता है, जिससे वह सामाजिक संबंधों में सामंजस्य स्थापित कर सकता है।

15.7 मुख्य शब्द

1. समाजीकरण: समाज के मूल्य और परंपराएँ सीखने और अपनाने की प्रक्रिया।

2. सामाजिक भूमिका: व्यक्ति द्वारा निभाए गए कार्यों और जिम्मेदारियों का समूह।

3. सामाजिक संस्थाएँ: वे संरचनाएँ जो समाज के कार्यों और उद्देश्यों को पूरा करती हैं (जैसे परिवार, विद्यालय)।

4. सांस्कृतिक मान्यताएँ: समाज की स्वीकृत परंपराएँ, विश्वास और आदतें।

15.8 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1: शिक्षा समाज में जागरूकता और राजनीति को दिशा प्रदान करती है, जबकि राजनीति शिक्षा के लिए नीतियां बनाती है।

उत्तर 2: शिक्षा राजनीतिक विचारधारा और सामाजिक न्याय के प्रति समझ और जागरूकता बढ़ाती है।

उत्तर 3: राजनीति शिक्षा के लिए नीतियां, बजट और संस्थागत निर्णय निर्धारित करती है।

15.9 संदर्भ ग्रन्थ

- बालकृष्णन, पी. (2022). *भारतीय अर्थव्यवस्था की पुनर्प्राप्ति: राजनीतिक अर्थव्यवस्था दृष्टिकोण*. नई दिल्ली: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
- बसु, के. (2018). *विश्वासों का गणराज्य: कानून और अर्थशास्त्र के लिए एक नया दृष्टिकोण*. प्रिंसटन, एनजे: प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।
- घोष, ए. (2021). *भारत की उभरती अर्थव्यवस्था: 21वीं सदी में प्रदर्शन और संभावनाएँ*. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- पनगढ़िया, ए. (2020). *भारत अनलिमिटेड: खोई हुई महिमा को पुनः प्राप्त करना*. न्यूयॉर्क: हार्पर कॉलिन्स।
- नागराज, आर. (2019). *भारत में आर्थिक विकास और विकास: नए दृष्टिकोण*. नई दिल्ली: रूटलेज।

15.10 अभ्यास प्रश्न

1. व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध में एक निबन्ध लिखिए।

Write an essay on relationship between individual and society.

2. समाजीकरण की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।

Explain the concept of socialization.

3. समाजीकरण की व्याख्या कीजिए। बालक के समाजीकरण में परिवार की भूमिका लिखिए। Define socialization. Write the role of family in socialization of child.

4. समाजीकरण के महत्व की विवेचना कीजिए। Discuss the importance of socialization.

5. 'समाजीकरण वह प्रक्रिया है, जिसके द्‌वारा प्राणिशास्त्रीय जीव सामाजिक जीव में परिवर्तित होता है।' समझाइए ।

animal.' Explain.

'Socialization is a process by which biological animal transfers into social

6. समाजीकरण पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

Write short essay on socialization.

7. समाजीकरण के विभिन्न सिद्‌धान्तों को समझाइए ।

Explain the different theories of socialization.

8. समाजीकरण में समाज एवं संस्कृति की भूमिका लिखिए। Write role of society and culture in socialization.

इकाई -16

सामाजिक नियंत्रण-आदर्श एवं मूल्य

[SOCIAL CONTROL-NORMS AND VALUES]

16.1 प्रस्तावना

16.2 उद्देश्य

16.3 सामाजिक नियन्त्रण (Social Control)

16.4 सामाजिक नियंत्रण की विशेषताएँ (Characteristics of Social Control)

16.5 सामाजिक नियन्त्रण की आवश्यकता (The Need of Social Control)

16.6 आदर्श (Norms)

16.7 सामाजिक नियंत्रण में आदर्शों की भूमिका (Role of Norms in Social Control)

16.8 सामाजिक नियंत्रण में अभिमति की भूमिका(Role of Sanctions in Social Control)

16.9 दण्ड (Punishment)

16.10 सार संक्षेप

16.11 मुख्य शब्द

16.12 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

16.13 संदर्भ ग्रन्थ

16.14 अभ्यास प्रश्न

16.1प्रस्तावना

समाज में सामाजिक नियंत्रण की अहम् भूमिका होती है। नियंत्रण ही वह आधार है, जिस पर समाज की नींव टिकी हुई है। नियंत्रण दो प्रकार के होते हैं औपचारिक तथा अनौपचारिक। औपचारिक समाज नियंत्रण समाज में दबाव (Pressure) का काम करते हैं और जो इनका पालन नहीं करता, उनको दण्डित किया जाता है। इसके अतिरिक्त अनौपचारिक सामाजिक नियंत्रण वे हैं, जिनका पालन व्यक्ति अपनी आदत से करता है, स्वतः नियंत्रण के द्वारा करता है। अनौपचारिक सामाजिक नियंत्रणों में समाज के आदर्शों (Norms) मूल्यों (Values) और अभिमति (Sanctions) की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सामाजिक नियंत्रण के साधनों के रूप में इन्हीं आदर्शों, मूल्यों और अभिमतियो की विवेचना की जाएगी।

स्तरीकरण स्तर से बना है। स्तर को सीढ़ियों के रूप में समझा जा सकता है। जिस प्रकार से छत में जाने के लिए अनेक सीढ़ियाँ होती हैं, इनमें से कोई सीढ़ी ऊपर होती है तो कोई सीढ़ी नीचे। इसी अवस्था को स्तरीकरण के नाम से जाना जाता है। जिस प्रकार से छत में जाने के लिए अनेक सीढ़ियाँ होती हैं, उसी प्रकार समाज में भी अनेक स्तर की सीढ़ियाँ होती हैं। समाज की इन्हीं सीढ़ियों को सामाजिक स्तरीकरण के नाम से जाना जाता है। समाज में अनेक व्यक्ति होते हैं। ये व्यक्ति आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक दृष्टि से एक-दूसरे से भिन्न-भिन्न होते हैं। इसी भिन्नता के आधार पर जब समाज के सभी व्यक्ति भिन्न-भिन्न भागों में बंट जाते हैं और जिस आधार पर वे भिन्न-भिन्न भागों में बंटते हैं, इसी व्यवस्था को सामाजिक स्तरीकरण के नाम से जाना जाता है। स्तरीकरण का यह स्वरूप सभी समाजों में पाया जाता है, जो भिन्न-भिन्न नामों से जाना जाता है।

16.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. सामाजिक नियंत्रण की प्रक्रिया को समझना: समाज में अनुशासन और व्यवस्थित जीवन बनाए रखने के उपायों का अध्ययन करना।

2. आदर्श और मूल्य की भूमिका: समाज में आदर्श और नैतिक मूल्यों का महत्व और उनका सामाजिक व्यवस्था पर प्रभाव समझना।

3. सामाजिक नियंत्रण के साधन: सामाजिक नियंत्रण के विभिन्न साधनों जैसे कानून, परंपराएँ, और नैतिक शिक्षा का विश्लेषण करना।

16.3 सामाजिक नियन्त्रण (Social Control)

स्वभाव से ही मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। अब सामाजिक प्राणी होने के साथ ही साथ उसके लिए आवश्यक हो जाता है कि समाज की व्यवस्था को बनाए रखे। समाज की व्यवस्था तभी कायम रह सकती है जब समाज के ढाँचे (Structure) में सन्तुलन बना रहे, अर्थात् समाज के प्रत्येक व्यक्ति और संस्थाएँ अपने पद (Status) के अनुसार अपने कर्तव्यों, अपने कार्यों (Roles) को अदा करें।

यह भी सत्य है कि समाज में समानता (Likeness) और भिन्नता (Differencess) दोनों का होना

आवश्यक है। समाज में अनेक प्रकार के व्यक्ति होते हैं। मनुष्यों में मुख्य रूप से ही दो प्रकार की प्रवृत्तियों पाई जाती हैं सद् और असद्। सद् प्रवृत्तियाँ समाज की निर्माणक (Constructive) प्रवृत्तियाँ हैं जबकि असद् विध्वंसक (Destructive) प्रवृत्तियाँ है। अब यदि समाज के ढाँचे को सन्तुलित रखना है, तो असद् की अपेक्षा सद् प्रवृत्तियों का आधिक्य आवश्यक है।

मनुष्य विवेकशाली प्राणी है। उसने जिस अंधकार युग से अपनी यात्रा शुरू की, असद् प्रवृत्तियों को छोड़ नहीं सका। उस युग में नियन्त्रण के साधन भी कम थे। जैसे-जैसे वह सभ्य होता जा रहा है वैसे-वैसे असद् प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण बढ़ता

जा रहा है। असद् प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण बढ़ने से सद् प्रवृत्तियों का विकास होना स्वाभाविक ही है। व्यक्ति नियन्त्रण में बँधना नहीं चाहता है। अगर उसको नियन्त्रण से अलग कर दिया जाये तो क्या सामाजिक ढाँचा स्थायी रह सकता है? नहीं। यदि व्यक्ति को एक दिन की भी छूट दे दी जाये तो वह मनमानी करने से चूकेगा नहीं और ऐसी अवस्था में समाज का ढाँचा छिन्न-भिन्न हो जायेगा। ऐसी हालत में मनुष्य सामाजिक संरचना को बनाए रखने के लिए सामाजिक नियन्त्रण करता है। कायदे- कानून बनाता है, उसके व्यवहारों पर नियन्त्रण रखता है। इस नियन्त्रण से सामाजिक संरचना नष्ट होने से बच जाती है। सामाजिक नियन्त्रण के उद्देश्य ही मनुष्य ने कायदे- कानून, रीति-रिवाज, विधि-विधान बनाए। इन सबका उद्देश्य मनुष्य के व्यवहार का नियन्त्रण करना है। मानव व्यवहार के इस प्रकार के नियन्त्रण को ही सामाजिक नियन्त्रण कहा जाता है।

सामाजिक नियंत्रण की परिभाषा (Definition of Social Control)

सामान्यतया सामाजिक नियन्त्रण के दो अर्थ लगाये जाते हैं। साधारण अर्थों में व्यक्तियों को समूह द्वारा स्थापित आदशों और स्वीकृत प्रतिमानों के अनुसार व्यवहार करने के लिए बाध्य करना है। व्यापक अर्थों में सामाजिक नियन्त्रण समाज की सम्पूर्ण व्यवस्था के नियमन से सम्बन्धित है। सामाजिक नियंत्रण की प्रमुख परिभाषाओं में से कुछ अग्रलिखित हैं -

(1) मैकाइवर और पेज "सामाजिक नियन्त्रण का तात्पर्य उस ढंग से है जिससे कि सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था सम्बन्धित रहती है और इसे बनाए रखती है। इससे यह सम्पूर्ण व्यवस्था परिवर्तनशील सन्तुलन के रूप में क्रियाशील रहती है।"

153 समाजशास्त्र: बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर-

(2) आगबर्न और निमकाफ "दबाव का वह प्रतिमान जिसे एक समाज व्यवस्था बनाए रखने के लिए स्थापित करता है, सामाजिक नियन्त्रण कहलाता है।"

(3) लैण्डिस "सामाजिक नियन्त्रण वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा सामाजिक व्यवस्था स्थापित की जाती है और बनाए रखी जाती है।"

(4) बोगार्डस "समूह नियन्त्रण वह पद्धति है जिससे एक समूह अपने सदस्यों से व्यवहार को नियन्त्रित करता है।"

(5) रॉस "सामाजिक नियन्त्रण उन पद्धतियों की व्यवस्था है जिसके द्वारा समाज अपने सदस्यों को मान्य व्यवहार प्रतिमानों के अनुरूप बताते हैं।"

(6) गिलिन और गिलिन "सामाजिक नियन्त्रण सुझाव, अनुनय, प्रतिरोध, तथा दमन जिसमें कि शारीरिक बल के साथ-साथ सब साधनों की वह व्यवस्था है जिससे कि कोई समाज अपने उप-समूहों के व्यवहार को स्वीकृत प्रतिमानों के अनुरूप बनाता है या जिससे कि कोई उप समूह अपने सदस्यों के व्यवहारों को अपने अनुकूल रूप में डाल देता है।"

(7) ब्रियरली - "सामाजिक नियंत्रण उन आयोजित अथवा अनायोजित प्रक्रियाओं तथा विधियों के लिए प्रयोग में आने वाला एक सामूहिक शब्द है, जिसके द्वारा व्यक्तियों को यह सिखाया जाता है, उनसे यह आग्रह किया जाता है अथवा उन्हें इसके लिए बाध्य किया जाता है कि वे जिन समूहों के सदस्य हैं, उनकी रीतियों का पालन करें तथा उनके जीवन के मूल्यों को अपने जीवन में उतारें।"

(8) बीसन्स "वह साधन जिसके द्वारा सामाजिक व्यवस्था स्थापित की जाती है और बनाए रखी जाती है।"

(9) जार्ज एटबरी "सामाजिक नियन्त्रण से तात्पर्य उस प्रणाली से है जिससे समाज सामाजिक सम्बन्धों में एकरूपता एवं स्थायित्व प्राप्त करता है।"

इस प्रकार समाज सामाजिक सम्बन्धों की एक व्यवस्था है। सामाजिक व्यवस्था सामाजिक संगठन का आधार है। इसी संगठन को स्थायी बनाए रखने के लिए समाज पर जिन दबाव के प्रतिमानों का प्रयोग किया जाता है, सामाजिक नियन्त्रण कहा जाता है।

16.4 सामाजिक नियंत्रण की विशेषताएँ (Characteristics of Social Control)

ऊपर जो परिभाषाएँ दी गई हैं, इनके जाधार पर सामाजिक नियन्त्रण की निम्न विशेषताएँ निर्धारित की जा सकती है -

(1) सामाजिक नियन्त्रण का तात्पर्य सामाजिक दबाव के प्रतिमानों से है,

(2) सामाजिक नियन्त्रण व्यक्ति और समूह पर लागू होता है,

(3) सामाजिक नियन्त्रण का उद्देश्य समाज के सदस्यों के व्यवहारों और क्रियाओं में समरूपता स्थापित करना है,

(4) इस एकरूपता का उद्देश्य सामाजिक संगठन को अति शक्तिशाली बनाना होता है।

(5) इससे सामाजिक व्यवस्था की स्थापना की जाती है,

(6) सामाजिक नियन्त्रण में 'पुरस्कार' और 'दण्ड' दोनों ही सम्मिलित रहते हैं और

(7) समाज में नियंत्रण स्थापित करने के लिए अनेक साधनों का प्रयोग किया जाता है।

सामाजिक नियंत्रण के प्रकार

समाज में नियन्त्रण स्थापित करने के भिन्न-भिन्न साधन है। समाजशास्त्रियों ने इन्हें अपने-अपने प्रकार से वर्गीकृत किया है। सामाजिक नियन्त्रण के प्रमुख प्रकारों के सम्बन्ध में विद्वानों के निम्न मत हैं-

(1) कार्ल मैनहीम (Karl Manheim) कार्ल मैनहीम (Karl Manheim) ने सामाजिक नियन्त्रण को दो भागों में बाँटा है- (i) प्रत्यक्ष सामाजिक नियन्त्रण (Direct Social Control) वह शक्ति के समीप रहने वाले समाजशास्त्र बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर- लोगों की प्रतिक्रियाओं में व्यक्ति के व्यवहार का नियन्त्रण है। यह नियन्त्रण परिवार, पड़ोस, खेल का समूह, आदि प्राथमिक समूहों में पाया जाता है। माता-पिता, शिक्षक, साथ के खिलाड़ियों, सहपाठियों तथा पड़ोसियों और साथ काम करने वालों के मतों का व्यक्ति पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। उनकी निन्दा, प्रशंसा, संकेत तथा आग्रह आदि से व्यक्ति के व्यवहार का नियन्त्रण होता है। यह प्रत्यक्ष नियन्त्रण है।

(ii) अप्रत्यक्ष सामाजिक नियन्त्रण (Indirect Social Control) इसमें द्वैतीयक समूहों द्वारा व्यक्ति के व्यवहारों पर नियन्त्रण किया जाता है। इसके प्रमुख

साधन परम्परागत संस्थाएँ, प्रथाएँ आदि हैं। ये साधन अप्रकट और सूक्ष्म होते हैं। आजकल के जटिल समाज में जनमत, कानून, प्रथा आदि पर इसी प्रकार का प्रभाव पड़ता है।

(2) किम्बाल यंग (Kimbal Young) किम्बाल यंग (Kimbal Young) ने रीतियों के दृष्टिकोण से सामाजिक नियन्त्रण के दो प्रकार किए हैं-

(i) सकारात्मक (Positive) पुरस्कार का समाज में अत्यधिक महत्व होता है। प्रत्येक व्यक्ति पुरस्कार पाना चाहता है। अतः वे समाज द्वारा स्वीकृत परम्पराओं, प्रथाओं, मूल्यों तथा आदर्शों का सदैव पालन करने

की कोशिश करते हैं। इसके बदले में उन्हें सामाजिक यश, सम्मान आदि के रूप में पुरस्कार मिलता है।

(ii) नकारात्मक (Negative) इसमें दण्ड का भय दिखलाकर व्यक्ति को किसी काम से रोका जाता है। दण्ड हल्का, कठोर, शारीरिक आर्थिक किसी भी प्रकार का होता है। बदनामी, व्यंग्य, उपहास आदि मौखिक दण्ड के उदाहरण हैं। इन दण्डों के भय से व्यक्ति समाज की प्रथाओं, परम्पराओं, मूल्यों और आदर्शों के विरुद्ध आचरण करने से डरते हैं।

(3) कूले (C. H. Cooley) कूले ने सामाजिक नियन्त्रण को निम्न दो भागों में विभाजित किया-

(i) चेतन (Sensational) चेतन सामाजिक नियन्त्रण वे हैं, जिनका पालन सोच विचारकर कर सकते हैं। इन सामाजिक नियन्त्रण के साधनों के प्रति हमें निरन्तर जागरूक रहना पड़ता है। इन घटनाओं के प्रति व्यक्ति निरन्तर जागरूक रहता है।

(ii) अचेतन (Unsensational) यह सामाजिक नियन्त्रण का वह प्रकार है, जिसका पालन हम अचेतनावस्था में करते हैं। मानव जीवन के अनेक व्यवहार हमारे आदर्शों और मूल्यों का अंग बन जाते हैं। इनका पालन हम बिना किसी आदेश-निर्देश के स्वभावतः करते हैं। ये नियन्त्रण हमारे जीवन व्यवहार के ढंग बन जाते हैं।

(4) गुरविच तथा मूर (Gurvitch and Moore) गुरविच तथा मूर ने सामाजिक नियन्त्रण को निम्न तीन भागों में विभाजित किया है -

(i) संगठित (Organized) संगठित सामाजिक नियन्त्रण वह है, जो विभिन्न साधनों और व्यापक नियमों के द्वारा समाज के सदस्यों के व्यवहारों पर नियन्त्रण स्थापित करता है। परिवार, विवाह, कानून, पुलिस, न्यायालय इसके उदाहरण हैं।

(ii) असंगठित (Unorganized) असंगठित सामाजिक नियन्त्रणों की न तो कोई व्यवस्था होती है और न ही कोई नियम। असंगठित सामाजिक नियन्त्रण 'विरासत' (Heritage) के रूप में होते हैं। सदस्य इनका पालन करते हैं तथा ये अपने आप एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होते रहते हैं। संस्कार, प्रथा,

रूढ़ि इसके उदाहरण है।

(iii) सहज या स्वचालित (Automatic) व्यक्ति की अनेक आवश्यकताएँ हैं। वह इन आवश्यकताओं की पूर्ति करना चाहता है। इस आवश्यकता की पूर्ति में उसे अनेक अनुभव (Experience) होते हैं। अपने अनुभवों का प्रयोग करके वह सहज-स्वाभाविक ढंग से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेता है। धार्मिक नियम सहज स्वाभाविक ढंग से ही व्यक्ति के व्यवहारों पर नियन्त्रण स्थापित करते हैं। मन्दिर के पास से गुजरने से हमारा मस्तक आप झुक जाता है।

(5) हेज (Hages) हेज के सामाजिक नियन्त्रण को दो भागों में विभाजित किया है-

(i) अभिमति द्वारा नियन्त्रण (Control by Sanction) नियन्त्रण का यह प्रकार दो तथ्यों पर आधारित है पुरस्कार (Reward) और दंड (Punishment) पुरस्कार के द्वारा उन व्यक्तियों पर नियन्त्रण स्थापित किया जाता है, जो आज्ञा का पालन करते हैं। इसके विपरीत उन व्यक्तियों को दण्ड देकर नियन्त्रित किया जाता है, जो आज्ञा का उल्लंघन करते हैं।

(ii) समाजीकरण और शिक्षा द्वारा नियन्त्रण (Control by Socialization and Education) इसमें व्यक्ति को ऐसी शिक्षा दी जाती है तथा उसका समाजीकरण

इस प्रकार किया जाता है कि सामाजिक नियन्त्रण का पालन उसकी आदत बन जाती है।

अन्य स्वरूप (Other Forms) -

उपर्युक्त वर्गीकरण के अतिरिक्त सामाजिक नियन्त्रण को निम्न दो भागों में विभाजित किया जा सकता

(i) औपचारिक (Formal) औपचारिक सामाजिक नियन्त्रण दिखावटी होता है। व्यक्ति को बाध्य होकर नियन्त्रण के इन साधनों का पालन करना पड़ता है। जो व्यक्ति नियन्त्रण के इन साधनों का पालन नहीं करते हैं, उन्हें नियमानुसार दण्ड दिया जाता है। कानून, पुलिस, जेल और न्यायालय औपचारिक सामाजिक नियन्त्रण के उदाहरण हैं।

(ii) अनौपचारिक (Informal) ये नियन्त्रण के वे साधन हैं, जो मात्र दिखावे के लिए न होकर वास्तविक होते हैं। इन साधनों के पीछे किसी प्रकार की वैधानिक शक्ति नहीं होती है। फिर भी इनका प्रभाव कानून की अपेक्षा अधिक होता है। ये नियन्त्रण मानव व्यक्तितत्व के आन्तरिक पक्ष को प्रभावित करते हैं। नियन्त्रण के इन साधनों में रूढ़ियों, प्रथाओं, परम्पराओं को सम्मिलित किया जाता है। नियन्त्रण के प्रमुख प्रकार को निम्न तालिका में दिखाया गया है-

16.5 सामाजिक नियन्त्रण की आवश्यकता (The Need of Social Control)

प्लेटो अरस्तू से लेकर आधुनिक सामाजिक दर्शनशास्त्रियों ने इस बात को स्वीकार किया है कि समाज के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए सामाजिक नियंत्रण आवश्यक है। इन विद्वानों के अनुसार निम्न कारणों से सामाजिक नियन्त्रण आवश्यक है -

(i) मानव संस्कृति का बनाये रखने के लिये समाज पर नियन्त्रण आवश्यक है।

(ii) समाज में सहयोग और शान्ति को स्थायी बनाये रखने के लिये नियन्त्रण आवश्यक है।

(iii) उच्च सामाजिक संगठन का आधार भी सामाजिक नियन्त्रण ही है।

(iv) वैयक्तिक सम्पत्ति और जीवन की रक्षा नियन्त्रण द्वारा ही सम्भव हो सकती है।

(v) व्यस्त और भीड़-भाड़ के नगरीय जीवन के लिये तो सामाजिक नियन्त्रण आवश्यक है।

(vi) सामाजिक नियन्त्रण ही वह आधार है, जिसकी सहायता से पूँजीपतियों और समाज के सशक्त वर्गों के श्रमिकों और बलवानों की रक्षा की जा सकती है।

(vii) प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो ने भी समाज में सामाजिक नियन्त्रण की आवश्यकता का प्रतिपादन किया है। उसके अनुसार विधायक (Legislator) का उद्देश्य राज्य के अन्य वर्गों के ऊपर किसी एक विशेष वर्ग को सुखी बनाना नहीं है, अपितु सम्पूर्ण राज्य में सुख, शान्ति और व्यवस्था की स्थापना करना है। विधायक का काम नागरिकों में एकता की भावना का प्रसार करना है। ऐसा करके नागरिक राज्य का अधिक हित कर सकते हैं और इस प्रकार वे अपना स्वयं का अधिक हित कर सकते हैं।

(viii) अरस्तू ने भी समाज में सामाजिक नियन्त्रण की आवश्यता का प्रतिपादन किया है। अरस्तू ने नागरिकों के लिये 'समानता' को महत्वपूर्ण मानता है। उसने दो प्रकार की समानताएँ बतलाई है -

(अ) भावनात्मक समानता, और

(ब) परिस्थितियों की समानता ।

सामाजिक नियन्त्रण की स्थापना के लिये अरस्तू परिस्थितियों की समानता के स्थान पर भावनात्मक समानता को महत्वपूर्ण मानता है।

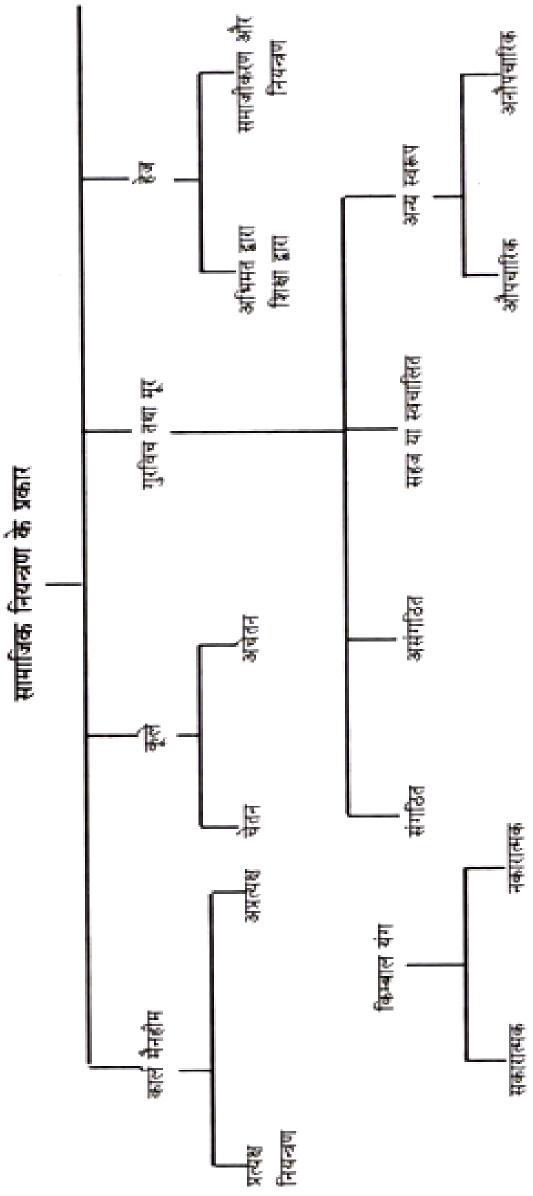
सामाजिक नियन्त्रण के प्रकार
कार्ल मैनहीम
प्रत्यक्ष नियन्त्रण
अप्रत्यक्ष
कूले
चेतन
अचेतन
गुरविच तथा मूर
संगठित
असंगठित
सहज या स्वचालित
अन्य स्वरूप
औपचारिक
अनौपचारिक
हेज
अभिमत द्वारा शिक्षा द्वारा
समाजीकरण और नियन्त्रण
किम्बाल यंग
सकारात्मक
नकारात्मक

समाज सामाजिक नियन्त्रण की आवश्यकता का प्रतिपादन करते हुये किम्बाल यंग ने लिखा है कि- "सामाजिक नियन्त्रण के उद्देश्य एक विशिष्ट समूह या समाज की समरूपता, एकता और निरन्तरता को लाना है।" इसी प्रकार के विचार लैंडिस ने जो व्यक्त किये हैं। लैंडिस के शब्दों में "सामाजिक नियन्त्रण (i) व्यक्ति को स्वयं से रक्षा करने, और (ii) समाज को अव्यवस्था से बचाने के लिए आवश्यक है।"

उपर्युक्त विद्वानों ने सामाजिक नियंत्रण की आवश्यकता का प्रतिपादन किया है। इन विद्वानों के विचारों के अतिरिक्त सामाजिक नियन्त्रण की समाज में निम्न कारणों से आवश्यकता है-

(1) सामाजिक संगठन की स्थिरता (Estability to Social organization) सामाजिक संगठन समाज की मूलभूत आवश्यकता है। संगठन के अभाव में समाज की कल्पना नहीं की जा सकती है। व्यक्ति का व्यवहार स्वछन्द और उच्छृंखल होता है। यह स्वच्छन्दता और उच्छृंखलता सामाजिक व्यवस्था को अस्त-व्यस्त कर देती हैं और सामाजिक संगठन टूट जाता है। सामाजिक नियंत्रण के द्वारा व्यक्ति के व्यवहारों पर अंकुश लगाया जाता है। व्यक्ति समाज-विरोधी व्यवहार नहीं कर पाते हैं इससे सामाजिक व्यवस्था बनती है। यह सामाजिक व्यवस्था सामाजिक संगठन की स्थापना में सहायक होती है।

(2) व्यक्ति का समाजीकरण (Socialization of Individual) समाज में व्यक्ति के समाजीकरण के लिए भी सामाजिक नियन्त्रण आवश्यक है। बालक पशु प्रवृत्तियों को लेकर जन्म लेता है। व्यक्ति में विद्यमान जन्मजात पशु प्रवृत्तियों को सामाजिक प्रवृत्तियों में परिवर्तित करने में सामाजिक नियन्त्रण की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। समाजीकरण की प्रक्रिया जीवन-पर्यन्त चलती रहती है। इस प्रक्रिया में स्कूल, परिवार, विवाह, पद, प्रतिष्ठा, नेतृत्व, जनमत आदि सामाजिक नियन्त्रण के साधन महत्वपूर्ण कार्य करते हैं।

(3) सामूहिक एकता (Group Solidarity) प्रत्येक समाज में विभिन्न समूह होते हैं। इन समूहों का निर्माण विभिन्न हितों या उद्देश्य के आधार पर होता है। अर्थात् समाज में उनके हित समूह होते हैं। विभिन्न समूह स्वार्थ विरोध के कारण संघर्षों को जन्म देते हैं। इन विभिन्न समूहों में एकता स्थापित करने में

सामाजिक नियन्त्रण की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सामाजिक नियन्त्रण ही वह साधन है, जो सामाजिक विविधता को एकता के सूत्र में बाँधता है। इस प्रकार समाज में विद्यमान विभिन्न हित समूहों और विविधता में एकता स्थापित करने की दृष्टि से सामाजिक नियन्त्रण का महत्वपूर्ण स्थान है।

(4) सांस्कृतिक विरासत की रक्षा (Preservation of Cultural Heritage) - प्रत्येक समाज की कुछ सांस्कृतिक उपलब्धियाँ होती हैं। इन उपलब्धियों को सांस्कृतिक विरासत के नाम से जाना जाता है। प्रत्येक समाज अपनी सांस्कृतिक विरासत की रक्षा करता है। मौलिक प्रश्न यह है कि इन सांस्कृतिक विरासतों की रक्षा कैसी की जाये ? अजंता और एलोरा तथा खजुराहो की अपनी सांस्कृतिक विरासत अभी तक स्थायी है। क्यों? इसलिए कि समाज में नियंत्रण के साधन हैं। प्रत्येक समाज की अपनी परम्पराएँ, प्रथाएँ, जनरीतियाँ होती हैं, जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक जल के प्रवाह की भाँति अपने आप बहती रहती हैं। क्यों? इसलिए कि समाज में नियंत्रण के साधन हैं। इस प्रकार सामाजिक नियंत्रण सांस्कृतिक विरासत की रक्षा करता है।

(5) सामाजिक सुरक्षा (Social Security) समाज में निवास करने वाले व्यक्तियों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने की दृष्टि से भी समाज में नियंत्रण की आवश्यकता है। इससे व्यक्तियों में मानसिक सुरक्षा (Mental Security) का विकास होता है। मानसिक सुरक्षा के विकसित हो जाने पर लोगों को यह विश्वास हो जाता है कि उनके हितों पर कोई भी आघात नहीं पहुँचाएगा। सामाजिक नियंत्रण समाज में विरोधी तत्वों को दबाकर समाज में सामाजिक सुरक्षा की भावना को विकसित करता है।

(6) सहयोग (Co-operation) सहयोग सामाजिक प्रगति और विकास का आधार है। सहयोग के अभाव में समाज का अस्तित्व ही समाप्त हो सकता है। यदि समाज में व्यक्तियों के व्यवहारों पर कोई नियंत्रण न हो, तो वे कभी भी सहयोग नहीं करेंगे। सहयोग के अभाव में समाज में संघर्ष का जन्म होगा, जो समाज को विघटन और पतन की ओर मोड़ देगा। इसलिए सहयोग समाज की मूलभूत आवश्यकता है। सामाजिक नियंत्रण समाज में सहयोग की स्थापना में महत्वपूर्ण कार्य करता है। सामाजिक नियंत्रण के कार्य या महत्व (Importance

or Functions of Social Control) सामाजिक जीवन में सामाजिक नियंत्रण के प्रमुख कार्य या महत्व निम्नलिखित है :-

(1) विभिन्न समूहों में कार्यों को सामाजिक नियमों के अनुरूप बनाना। इसका उद्देश्य यह कि 'वे सामूहिक चेतना में भाग ले सकें' (They can share in group consciousness) और गिडिंग्स (Giddings) के शब्दों में 'वे अपनी असमानताओं को जान सके और उससे लाभ उठा सकें' (They may know and enjoy their likeness) 1

(2) सामाजिक नियंत्रण का कार्य सामाजिक दृढ़ता की इस मात्रा को बनाए रखना है जो कि सामाजिक संगठन का निर्धारण करते हैं।

(3) सामाजिक नियंत्रण समाज में व्यवस्था की स्थापना करता है। इस प्रकार समाज की अनेक समस्याओं के समाधान में मदद करता है।

(4) सामाजिक संगठन का कार्य समाज के सभी सदस्यों को संगठित करके सामाजिक विकास की परिस्थितियाँ प्रस्तुत करना।

(5) सामाजिक नियंत्रण विभिन्न विरोधी समूह के सदस्यों को उनकी भलाई के लिए एक साथ मिलाना, उन्हें निश्चित स्थिति प्रदान करना सामाजिक नियंत्रण का ही कार्य है।

(6) सामाजिक नियंत्रण समाज के व्यवहार प्रतिमानों को निर्धारण करता है। व्यक्तियों को इन व्यवहार प्रतिमानों का पालन करने का निर्देश देता है तथा इसके लिए शक्ति का प्रयोग करता है।

16.6 आदर्श (Norms)

प्रसिद्ध अमेरिकन समाजशास्त्री मैकाइवर (Maciver) का मत है कि "समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है। इसका सीधा अर्थ है कि समाजशास्त्र के अन्तर्गत हम जिस 'समाज' (Society) शब्द का प्रयोग करते हैं, वह कोई सरल व्यवस्था नहीं है। ऊपर से समाज भले ही सरल हो, किन्तु जब इसकी आन्तरिक व्यवस्था की ओर दृष्टिपात करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह एक जटिल व्यवस्था है और इसे आसानी से नहीं समझा जा सकता है। इस

व्यवस्था को समझने के लिए मानव ज्ञान के साथ ही अनुभव की आवश्यकता होती है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि अनेक व्यक्तियों के स्वार्थों में समानता होने के कारण उनमें टकराहट होती है। स्वार्थों में टकराहट न होने पर भी मानव स्वभाव कुछ ऐसा होता है कि वह अपने स्वार्थ की रक्षा के लिए समाज के अन्य लोगों के स्वार्थ की चिन्ता नहीं करता है। ऐसी अवस्था में समाज में अव्यवस्था पैदा होती है और समाज विघटित होने लगता है। समाज को विघटन से बचाने के लिए समाज अपने सदस्यों के व्यवहारों और क्रियाओं पर कुछ नियन्त्रण लगा देता है। ये नियन्त्रण उस समूह के नियमों के अनुरूप होते हैं। इन नियमों को सामाजिक प्रतिमान (Social Norms) के नाम से जाना जाता है।

पुरस्कार (Reward) और दण्ड (Punishment) का सिद्धान्त सभी समाजों में पाया जाता है। प्रत्येक समाज अपने सदस्यों पर दो प्रकार से नियन्त्रण रखता है:

(i) आदेश देकर, और (ii) निषेध के द्वारा।

समाज व्यक्तियों को कुछ कार्यों के सम्पादन की आज्ञा देता है; जैसे सत्य बोलना चाहिए, बड़ों का आदर करना चाहिए और दुःखी लोगों की सहायता करनी चाहिए। जो व्यक्ति इन आदेशों का पालन करते हैं, वे पुरस्कार के पात्र होते हैं। इसके साथ ही समाज व्यक्ति की क्रियाओं पर नियन्त्रण लगाता है। यह नियन्त्रण निषेध के रूप में होता है; जैसे चोरी नहीं करनी चाहिए, झूठ नहीं बोलना चाहिए और बड़ों की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। जो व्यक्ति इन निषेधों का उल्लंघन करते हैं, उन्हें दण्ड दिया जाता है।

अब मौलिक प्रश्न यह आता है कि समाज में पुरस्कार और दण्ड का आधार क्या होगा? किन आधारों पर किसी व्यक्ति की क्रियाओं को पुरस्कृत किया जायेगा और दण्ड के कौन आधार होंगे? पुरस्कार और दण्ड देने के कुछ समाज स्वीकृत-नियम होंगे और इन्हीं नियमों को सामाजिक प्रतिमान (Social Norms) के नाम से जाना जायेगा ।

प्रत्येक समाज में नैतिकता के कुछ निश्चित मापदण्ड होते हैं। नैतिकता के मापदण्ड क्या है? किन आधारों पर नैतिकता को निर्धारित किया जाता है?

नैतिकता के निर्धारण में मानव प्रवृत्तियों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। मानव प्रवृत्तियों को सुविधा की दृष्टि से दो भागों में बाँटा जा सकता है:

(i) सद्मवृत्तियाँ, और

(ii) असद् प्रवृत्तियाँ ।

मौलिक प्रश्न यह है कि कौन-सी प्रवृत्तियों को सद् कहा जायेगा और कौन-सी प्रवृत्तियों को असद् कहना चाहिए? इसका निर्धारण समाज करता है। समाज के पास कौन-से आधार हैं, जिनके आधार पर उसकी प्रवृत्तियों का निर्धारण होता है? जिन आधारों पर मनुष्य की प्रवृत्तियों का निर्धारण होता है, उसी आधार को सामाजिक आदर्श (Social Norms) के नाम से जाना जाता है।

प्रत्येक समाज का अपना अलग प्रतिमान होता है जिसके आधार पर व्यक्ति के औचित्य अथवा अनौचित्य का निर्धारण किया जाता है। इन प्रतिमानों के अभाव में समाज के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती है। यही कारण है कि प्रत्येक समाज इन प्रतिमानों को महत्व देता है। सामाजिक प्रतिमानों का निर्धारण मानव-व्यवहार पर किया जाता है। सामाजिक प्रतिमानों के अन्तर्गत दन्तकथाओं, प्रथाओं, परम्पराओं तथा फैशन आदि को सम्मिलित किया जाता है। सामाजिक प्रतिमानों के पीछे समाज के उद्देश्य होते हैं। व्यक्ति जब भी कोई कार्य करता है तो उसे भले-बुरे की समझ के आधार पर करना पड़ता है। भले और बुरे कार्यों के निर्धारण में सामाजिक प्रतिमानों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। ये सामाजिक प्रतिमान एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरित होते रहते हैं। इस हस्तान्तरण में भाषा का महत्वपूर्ण स्थान होता है।

इन प्रतिमानों के निर्माण में उस देश की परिस्थितियों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। महापुरुष अपने देश के प्रतिमानों का निर्माण करते हैं। उदाहरण के लिए, स्वामी विवेकानन्द, रामकृष्ण परमहंस, राजा राममोहन राय और महात्मा गाँधी ने परिस्थितियों के अनुकूल अपने देश में विभिन्न प्रकार के प्रतिमानों का निर्माण किया था। ये प्रतिमान व्यक्ति और समाज के कल्याण से सम्बन्धित थे। प्रतिमानों के निर्माण में काफी समय लगता है, क्योंकि इन्हें धीरे-धीरे स्वीकार किया जाता है। ये सामाजिक आदर्श प्रत्येक समाज में पाये जाते हैं,

चाहे वह समाज संगठित हो या विघटित ही हो। सामाजिक आदर्श की विद्वानों ने जो परिभाषाएँ दी हैं, वे इस प्रकार हैं:

(1) श्री एवं श्रीमती शेरिफ "जीवन और उसके उन्नयन के विविध कार्यों में संलग्न व्यक्तियों की अन्तःक्रिया के बीच समूह रचना का जन्म होता है, व्यक्ति विभिन्न कार्य करते रहते हैं और प्रत्येक की एक सापेक्ष स्थिति हो जाती है। कार्य-संचालन का क्रम और उनके नियमों का स्वरूप स्थिर हो जाता है। इस प्रकार नियम, व्यवहार के तरीके तथा अनुकरणीय जीवन-मूल्य, आदि समूह अन्तःक्रिया के ही सह-उत्पादन (Bye-products) हैं। नियमों, मानकों और मूल्यों के इस विशिष्ट गठन को प्रायः समूह के सामाजिक आदर्शों के रूप में माना जाता है।"

(2) बीरस्टीड "एक आदर्श, संक्षेप में, प्रक्रिया का मानकी (Standardized) प्रतिरूप है। अपने समाज के लिए स्वीकार करने योग्य कुछ करने का तरीका है।"

बीरस्टीड ने सामाजिक आदशों की व्याख्या करते हुए लिखा है कि "यहाँ यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि आदर्श सांख्यिकीय औसत नहीं है। न ही यह मध्य, माध्यिका तथा भूयष्ठिक ही है। इसका सम्बन्ध एक निश्चित संख्या के एक निश्चित सामाजिक परिस्थित्ति के औसत व्यवहार से नहीं है, बल्कि इसका सम्बन्ध तो मनुष्य के उस अपेक्षित व्यवहार से है, जो उस परिस्थिति से उपयुक्त माना जाता है।"

(3) डेविस "ये (आदर्श) नियन्त्रण हैं। ये वे तत्व हैं जिनके द्वारा मानव समाज अपने सदस्यों के व्यवहारों का नियमन इस प्रकार करता है कि वे सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए अपनी क्रियाओं का सम्पादन करते रहें और कभी-कभी सावयवी आवश्यकताओं के मूल्य पर भी।"

(4) ग्रीन "सामाजिक आदर्श मानवीय सामान्यीकरण है, जिनके परिणामस्वरूप सदस्यों से एक निश्चित व्यवहार करने की आशा की जाती है।"

संक्षेप में, "सामाजिक आदर्श समाज के वे मूल्य है जो सदस्यों के व्यवहार को नियन्त्रित करते हैं।"

आदर्श की विशेषताएँ (Characteristics of Norms) II)

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर आदर्श की निम्न विशेषताएँ निर्धारित की जा सकती हैं:

(1) संस्कृति के प्रतिनिधि सामाजिक प्रतिमानों की मौलिक विशेषता यह है कि ये उस विशेष देश, काल और समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं। आदर्शों का निर्माण नहीं किया जाता, अपितु इनका समाज में विकास होता है। आदशों के इस विकास में सामूहिक कल्याण की भावना निहित होती है। यही कारण है कि ये प्रतिमान विशेष समाज की दिशा का निर्देशन करते हैं। ये आदर्श एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होते रहते हैं, अतः संस्कृति का रूप धारण करते हैं।

(2) स्थायी प्रकृति - सामाजिक आदर्शों की दूसरी विशेषता यह है कि ये स्थायी प्रकृति के होते हैं। इसका कारण यह है कि इनका निर्माण न होकर विकास होता है। साथ ही ये एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होते रहते हैं। हस्तान्तरण और विकास के दो ऐसे तत्व हैं, जो सामाजिक प्रतिमानों का समाज में स्थायी स्वरूप प्रदान करते हैं। सामाजिक प्रतिमानों में परिवर्तन लाना अत्यन्त ही कठिन होता है। इसका कारण यह है कि सदस्य इन प्रतिमानों में परिवर्तन का विरोध करते हैं। भले ही यह परिवर्तन समाज के लाभ को दृष्टि में रखकर किया जाता हो। यही कारण है कि सामाजिक सुधारों में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इसका कारण यह है कि ये प्रतिमान समूह के जीवन से कुछ इस प्रकार घुल-मिल जाते हैं कि इनमें परिवर्तन करने में उन्हें कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उदाहरण के लिए, विवाह से सम्बन्धित नियम । इन नियमों में परिवर्तन से व्यक्ति की भावनाओं को चोट लगती है। अतः इनमें स्थायित्व बना रहता है।

(3) कल्याणकारी प्रकृति सामाजिक आदर्श कल्याण की भावनाओं से ओत-प्रोत होते हैं और यह कल्याण व्यक्तिगत न होकर सामाजिक होता है। इसका कारण यह है कि समाज स्वयं भी जानबूझकर इन प्रतिमानों का निर्माण करता है। इसीलिए जब सामाजिक आदर्श सामाजिक कल्याण की भावना को छोड़ देते हैं तो उनमें सुधार करने की आवश्यकता होती है।

(4) लिखित और अलिखित स्वरूप सामाजिक आदर्शों के दो स्वरूप होते हैं- लिखित और अलिखित । सामाजिक आदर्शों के लिए आवश्यक नहीं है कि वे सिर्फ लिखित ही हों। वे अलिखित भी होते हैं। जैसे बालकों के खेल के नियम, जिनका पालन करना प्रत्येक खिलाड़ी के लिए अनिवार्य होता है। समाज जिन प्रतिमानों का निर्माण करता है, सभी सदस्य उनका आदर और श्रद्धा से पालन करते हैं। यदि कोई सदस्य इन नियमों का पालन नहीं करता है, तो उसकी सामूहिक निन्दा की जाती है। सामाजिक आदर्श चाहे वे लिखित हों या अलिखित, वे समूह में व्यक्ति के व्यवहार को नियन्त्रित करते हैं।

(5) कर्तव्य की भावना सामाजिक आदर्श कर्तव्य की भावना के साथ आपस में सम्बन्धित होते है। सामाजिक प्रतिमानों का पालन इसलिए किया जाता है कि ऐसा करना समाज और व्यक्ति का कर्तव्य होता है। कर्तव्य की भावना के आधार पर ही ऐसा निर्धारित होता है कि सामाजिक प्रतिमानों का पालन किया जायेगा अथवा नहीं। सामान्यतया इनका पालन गौरव के साथ किया जाता है।

(6) सामाजिक व्यवहार के आधार सामाजिक आदर्श समाज में व्यवहार के आधार स्तम्भ होते हैं। इसका कारण यह है कि इसके साथ व्यक्ति और समाज के मूल्य जुड़े होते हैं। इसका कारण यह है कि प्रतिमानों का एक विशेष उद्देश्य होता है। सामाजिक आदर्शों के उद्देश्य को मुख्य रूप से दो भागों में बाँटा जा सकता है:

(i) सामाजिक कल्याण, और

(ii) व्यक्ति को उचित और अनुचित के बारे में सचेत करना।

(7) अधिकांश रूढ़िवाद - अधिकांश सामाजिक आदर्श रूढ़िवादी होते हैं। फैशन और कानून इसके अपवाद हो सकते हैं। इसका कारण यह है कि फैशन और कानून में नवीनता के तत्वों का समावेश होता जाता है। किन्तु जब नवीनता काफी आगे चली जाती है, तो पुनः उसकी पुनरावृत्ति होती है। इसके अतिरिक्त प्रथम परम्परा, जनरीति, रूढ़ि और धर्म रूढ़िवादी होते हैं।

(8) दोहरी प्रकृति - सामाजिक आदशों का स्वरूप दो प्रकार का होता है:

(i) ये व्यक्ति को प्रभावित करते हैं, और

(ii) साथ ही व्यक्ति से प्रभावित होते हैं। गो समाजशास्त्र: बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर

16.7 सामाजिक नियंत्रण में आदर्शों की भूमिका (Role of Norms in Social Control)

आदर्श किसी भी समाज के आईना होते हैं। जिस प्रकार आइने में व्यक्ति अपने चेहरे को देखता है, ठीक इसी प्रकार आदर्शों के माध्यम से समाज को देखा, जाना और पहचाना जा सकता है। यही कारण है कि समाज में आदर्शों की अत्यन्त ही उपयोगिता होती है। इन्हीं आदर्शों के द्वारा समाज के मापदण्ड की रक्षा की जा सकती है। यही कारण है कि समाज आदर्शों की रक्षा करता है तथा इन्हें एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित करता रहता है। सामाजिक नियंत्रण में आदर्शों की भूमिका को निम्न श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है -

1. आदर्श नियंत्रण का कार्य करते हैं। यह नियंत्रण दो प्रकार से होता है-

(अ) व्यक्ति के व्यवहारों पर नियंत्रण, और

(आ) समूह के व्यवहारों पर नियंत्रण ।

इस प्रकार आदर्श सामाजिक नियंत्रण के महत्वपूर्ण साधन के रूप में कार्य करते हैं।

2. आदर्श समाज को संगठित करते हैं तथा समाज में व्यवस्था को जन्म देते हैं। इस व्यवस्था के द्वारा समाज में एकता स्थापित होती है तथा समाज को विघटन से रोका जाता है। इससे समाज नियंत्रित रहता है।

3. आदर्श व्यक्ति और समाज की आदतों का निर्धारण करते हैं। इन आदतों के माध्यम से समाज में नियंत्रण की स्थापना होती है।

4. आदर्शों के द्वारा व्यक्ति को समाज में उचित और अनुचित का ज्ञान होता है। व्यक्ति जानता है कि उसे क्या करना है और क्या नहीं करना है। इस प्रकार व्यवहारों के निर्धारण में आदर्शों का सहारा लेना पड़ता है, जिससे समाज में नियंत्रण बना रहता है।

5.आदर्श सामाजिक विरासत की रक्षा करते हैं तथा इसे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित करते रहते हैं। इससे समाज में स्थायित्व और नियंत्रण बना रहता है।

6. आदर्श समाज में व्यक्ति की प्रतिष्ठा का भी निर्धारण करते हैं। साथ ही उस प्रतिष्ठा की रक्षा का प्रयास भी करते हैं। इससे समाज में नियंत्रण बना रहता है।

7. आदर्श समाज में व्यक्ति का समाजीकरण करके व्यक्तित्व का विकास करते हैं। एक अच्छे नागरिकों का निर्माण करते हैं। इससे सामाजिक संगठन बना रहता है तथा समाज नियंत्रित रहता है।

8. आदर्श निषेधों को अवगत कराते हैं तथा व्यक्ति इनसे दूर रहते हैं। इस प्रकार समाज में आदर्श स्थापित होते हैं, जो संगठन के आधार होते हैं।

उपयुक्त विवेचना से स्पष्ट है कि आदर्श सामाजिक नियंत्रण के महत्वपूर्ण साधन है।

मूल्य (Values)

समाज का निर्माण नहीं किया गया है, अपितु इसका विकास हुआ है। इस विकास की भी एक परम्परा रही है और वह यह है कि समाज का विकास सरल से जटिल की ओर हुआ है। इसी प्रकार समाज की विभिन्न संस्थाओं और समूहों का भी विकास सरल से जटिल की ओर हुआ है। अब मौलिक प्रश्न यह उठता है कि यदि समाज का विकास सरल से जटिल की ओर होता है तो इस जटिलता का आधार क्या है? यह जटिलता भौतिक और अभौतिक दोनों पहलुओं में होती है। विकास की परम्परा में जब हम आगे बढ़ते हैं तो अपने साथ कुछ प्रतिमानों और मूल्यों को लेकर चलते हैं। मूल्यों के अभाव में किसी भी समाज की प्रगति (Progress) का निर्धारण नहीं किया जा सकता है। मूल्य और मूल्यांकन ऐसे दो तत्व है जिनके आधार पर किसी समाज की प्रगति का अन्दाजा लगाया जा सकता है। इन मूल्यों के ही आधार पर भविष्य की क्रियाओं का निर्धारण किया जाता है। वह समाज अपनी क्रियाशीलता खो देता है, जो मूल्यों की उपेक्षा करता है।प्रत्येक समाज के कुछ निश्चित मापदण्ड होते हैं। इन मापदण्डों के आधार पर समाज की अच्छाई या बुराई का अंकन किया

जाता है। इस अंकन का मूल्यांकन किन आधारों पर किया जाता है? मूल्यांकन का मुख्य आधार 'क्या करना चाहिए' और 'क्या नहीं करना चाहिए' है। जब हम विभिन्न विषयों और विभिन्न परिस्थितियों का मूल्यांकन करते हैं तो अपने पास कुछ निश्चित आधार रखते है और इन्हीं आधारों को मूल्य के नाम से जाना जाता है। इन मूल्यों का व्यक्ति के सामाजिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान होता है। प्रत्येक समाज की परिस्थितियों में विभिन्नता रहती है, यही कारण है कि एक समाज के मूल्य दूसरे समाज से भिन्न होते हैं। ये सामाजिक जीवन के वे तत्व हैं, जिनका जीवन में विशेष उद्देश्य होता है। इसके साथ ही इन्हें जीवन के लिए महत्वपूर्ण समझा जाता है। सामाजिक मूल्य सभी समाजों में पाये जाते हैं। इन मूल्यों को सामाजिक विरासत (Social Heritage) के एक भाग के रूप में समझा जा सकता है। यही कारण है कि समाज इनकी रक्षा करने का प्रयास करता है। उदाहरण के लिए, विवाह एक सामाजिक मूल्य है। इस मूल्य के माध्यम से समाज को दो लाभ होते हैं:

(i) यौन जीवन में व्यवस्था का विकास होता है और इस आधार पर पशु तथा मानव के यौन जीवन में भेद करने का प्रयास किया था।

(ii) इस मूल्य के माध्यम से अस्तित्व (Chastity) की रक्षा का प्रयास किया गया था।

मौलिक प्रश्न यह है कि मूल्य कहाँ होते हैं? बर्जेस और लॉक (Burgess and Loke) के अनुसार सामाजिक मूल्य दो स्थानों पर होते हैं:

(i) व्यक्ति के पास, और

(ii) समूह के पास।

व्यक्ति और समाज के मूल्यों में समाज का मूल्य प्राथमिक है इसका कारण यह है कि व्यक्ति सामाजिक मूल्यों के संसार में जन्म लेता है और इन्हीं मूल्यों के आधार पर अपनी मनोवृत्तियों को निर्धारित करता है सामाजिक संगठन के लिए सामाजिक मूल्यों और वैयक्तिक मनोवृत्तियों में समानता का होना अनिवार्य है। सामाजिक मूल्यों की विभिन्न विद्वानों ने जो परिभाषाएँ दी हैं, वे इस प्रकार हैं:

(1) इलियट और मेरिल "सामाजिक मूल्य वे वस्तुएँ हैं, जो हमारे लिए अर्थपूर्ण होती हैं और जिन्हें हम अपनी जीवनचर्या में महत्वपूर्ण मानते हैं।"

(2) जॉनसन "मूल्य को एक संकल्पना या मानक के रूप में परिभाषित किया जाता है जो कि सांस्कृतिक हो सकता है या मात्र व्यक्तिगत और जिसके द्वारा चीजों की एक-दूसरे के साथ तुलना की जाती है- स्वीकृति या अस्वीकृति प्राप्त होती है। एक-दूसरे को तुलना में उचित या अनुचित या बुरा, ठीक अथवा गलत माना जाता है।"

(3) मुकर्जी "मूल्य समाज द्वारा स्वीकृति प्राप्त वे इच्छाएँ तथा लक्ष्य हैं, जिनका अन्तरीकरण, सीखने या समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से होता है और जो कि प्रतीतिक अधिमान्यताएँ, मानक तथा अभिलाषाएँ बन जाती है।"

इस प्रकार "सामाजिक मूल्यों को सामाजिक पैमाने के रूप में परिभाषित किया जाता है, जिनके माध्यम से विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों और घटनाओं का मूल्यांकन किया जाता है।"

सामाजिक मूल्यों के प्रकार (Types of Social Values)

सामाजिक मूल्य कितने प्रकार के होते हैं? इन मूल्यों को कितने भागों में विभाजित किया जा सकता है। सामाजिक मूल्यों के प्रकारों को विद्वानों ने भिन्न-भिन्न भागों में बाँटा है। विद्वानों का प्रमुख वर्गीकरण निम्नलिखित हैं:

(1) इलियट और मेरिल इलियट और मेरिल ने सामाजिक मूल्यों का वर्गीकरण अमेरिकन समाज को दृष्टि में रखकर किया है। इन विद्वानों ने सामाजिक मूल्यों को अग्र तीन भागों में विभाजित किया है:

(i) देश-प्रेम या राष्ट्रीयवाद की भावना,

(ii) मानव के प्रति प्रेम, और(२)

(iii) आर्थिक सफलता ।

(2) कैण्टन ने मूल्यों का सामान्य वर्गीकरण किया है। उसके अनुसार प्रमुख मूल्य 6 हैं:

(i) मानव जीवन, जो स्वयं में एक सामाजिक मूल्य है

(ii) मानव कला और मानव सम्बन्धों की दृष्टि से उत्पादन उपलब्धि, किया जाता है कि वस्तु मूल्यवान है या नहीं। संक्षेप में मूल्यों के निर्माण की यही प्रक्रिया है। मूल्य सामाजिक नियंत्रण में अहम् भूमिका का सम्पादन करते हैं। इससे समाज में अच्छाई का प्रसार तथा बुराई पर रोक लगाई जाती है। सामाजिक नियंत्रण में मूल्यों की भूमिका को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है -

1. मूल्य व्यक्ति को स्वीकृत नियमों का पालन करने के लिए प्रेरित करते हैं। इससे समाज में नियंत्रण बना रहता है।

2. व्यक्ति मूल्यों के अनुसार आचरण करता है। इससे भी समाज में नियंत्रण बना रहता है।

3. मनुष्य की अनेक आवश्यकताएँ होती हैं। प्रत्येक समाज में आवश्यकताओं की पूर्ति के निश्चित मूल्य और मापदण्ड होते हैं। व्यक्ति इनका पालन करता है। इस प्रकार समाज में नियंत्रण बना रहता है।

4. मूल्य सामाजिक विरासत होते हैं, जिनकी समाज रक्षा करता है तथा इनके अनुसार अपने आचरण को ढालता है। इससे भी समाज में नियंत्रण बना रहता है।

5. मूल्य मानवीय प्रवृत्तियों का निर्धारण करते हैं। ये प्रवृत्तियाँ मानव व्यवहार को नियंत्रित करती हैं। इससे समाज में नियंत्रण की स्थापना होती है।

6. मूल्य व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। समाजीकरण में मूल्यों की अहम् भूमिका होती है। इससे व्यक्ति मूल्यों के अनुसार व्यवहार करता है, जिससे सामाजिक नियंत्रण बना रहता है।

7. दुर्खीम का विचार है कि सामाजिक तथ्यों को समझने के लिए सामाजिक मूल्यों को जानना अनिवार्य है। मूल्यों के आधार पर समाज का निर्माण होता है तथा समाज में नियंत्रण बना रहता है।

8. डॉ. राधाकमल मुकर्जी का मत है कि व्यक्ति मूल्यों के आधार पर ही अपनी इच्छा और उद्देश्यों को वास्तविकता प्रदान करता है।

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि मूल्य समाज में नियंत्रण की स्थापना में महत्वपूर्ण कार्य करते हैं।

16.8 सामाजिक नियंत्रण में अभिमति की भूमिका(Role of Sanctions in Social Control)

प्रसिद्ध समाजशास्त्री हेज ने सामाजिक नियंत्रण को दो भागों में विभाजित किया है

1. समाजीकरण और शिक्षा द्वारा नियंत्रण।

Control by socialization and education.

2. अभिमति द्वारा नियंत्रण ।

Control by sanctions.

अभिमति द्वारा नियंत्रण निम्न दो तथ्यों पर आधारित हैं-

(a) पुरस्कार (Reward) और

(b) दण्ड (Punishment)

पुरस्कार के द्वारा इन व्यक्तियों को नियंत्रित किया जाता है, जो आज्ञा का पालन करते हैं इसके विपरीत उन व्यक्तियों को दण्ड के द्वारा नियंत्रित किया जाता है, जो आज्ञा का पालन नहीं करते हैं। सामाजिक नियंत्रण में पुरस्कार और दण्ड की भूमिका की अलग-अलग विवेचना की जाएगी, जो इस प्रकार है-

पुरस्कार (Reward)

सामाजिक विकास और प्रगति के लिए सामाजिक संगठन अनिवार्य है। सामाजिक संगठन वह आधार है, जिसके माध्यम से सामाजिक जीवन और कार्यों में एकता स्थापित की जाती है। सामाजिक जीवन में एकता स्थापित करने के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति के व्यवहारों को नियंत्रित किया जाये और व्यक्ति की सामाजिक क्रियाओं (Social Action) को सीमा में बाँधा जाये। प्रत्येक समाज के कुछ निश्चित मूल्य और आदर्श होते हैं, इन मूल्यों और आदर्शों की रक्षा करना व्यक्ति के लिए आवश्यक होता है। समाज के ये मूल्य

और आदर्श जीवन को एकरूपता प्रदान करते हैं। प्रत्येक समाज के विशिष्ट मूल्य होते हैं- जैसे धर्म की आज्ञा का पालन करना, सत्य बोलना, जीवों पर दया करना, आदि। ये मूल्य सामाजिक मापदंड (Social Standard) का निर्धारण करते हैं। प्रत्येक समाज में सामाजिक मूल्यों की रक्षा का प्रयास पाया जाता है। मूल्यों को रक्षा के इस प्रयास को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(a) प्रशंसात्मक प्रशंसा की सहायता से व्यक्ति को नियंत्रित करना। व्यक्ति की प्रशंसा करके उसे सामाजिक मूल्यों की रक्षा के प्रति जागरुक बनाना, और

(b) निन्दात्मक व्यक्ति की सामाजिक निन्दा करना और सामाजिक निन्दा के भय से व्यक्ति को नियंत्रित रखना ।

मानव जीवन और उसकी कार्य प्रणालियों दो भागों में विभाजित की जा सकती हैं-

(i) सकारात्मक (Positive), और

(ii) नकारात्मक (Negative) 1

समाज को नियन्त्रित करने की नकारात्मक पद्धति इस बात पर आधारित है कि व्यक्ति को दंड के भय से नियन्त्रण में बाँधना। साथ ही सकारात्मक पद्धति वह है जिसकी सहायता से व्यक्ति को प्रोत्साहित किया जाता है, और प्रोत्साहन के द्वारा व्यक्ति नियन्त्रित रहता है, सामाजिक मूल्यों और आदर्शों का पालन करता है। मानव प्रवृति कुछ इस प्रकार होती है कि वह प्रशंसा चाहता है। वह सामाजिक जीवन में उन्हीं कार्यों को सम्पादित करना चाहता है, जिससे समाज में उसकी प्रशंसा हो, समाज में उसकी इज्जत हो और उसे सम्मान मिले। इस प्रकार पुरस्कार व्यक्ति की प्रशंसा करके सामाजिक नियन्त्रण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है।

पुरस्कार का अर्थ (Meaning of Reward)

गीता में स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि सम्पूर्ण संसार कर्म पर आधारित है, जो व्यक्ति जैसा कर्म करता है, उसे उसी कर्म के अनुरूप फल का भोग करना

पड़ता है। व्यक्ति जो भी कार्य करता है, उन्हें मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(a) व्यक्तिगत (Personal), और

(b) सामाजिक (Social) 1

यद्यपि उसके व्यक्तिगत कार्य भी पूरी तरह से, व्यक्तिगत नहीं हैं, वे सामाजिक कार्यों के एक अंग मात्र होते हैं। व्यक्ति जो भी कार्य करता है, उसकी अधिकांश क्रियाएँ फल की आशा से ओत-प्रोत रहती हैं, वह कार्यों के बदले में किसी न किसी प्रकार का पुरस्कार चाहता है। प्रत्येक समाज में व्यक्ति को उसके अच्छे कार्यों के बदले में कुछ न कुछ प्रदान करने की व्यवस्था है। व्यक्ति को उसके अच्छे कार्यों के बदले में जो भी प्रदान किया जाता है, इसका स्वरूप भौतिक और अभौतिक दोनों प्रकार का हो सकता है। इस प्रकार "पुरस्कार व्यक्ति या समूह को प्रदान की जाने वाली वह सान्त्वना है, जो विशिष्ट कार्यों और सेवाओं के लिए दी जाती है, तथा जो भौतिक अथवा अभौतिक या दोनों रूपों में हो सकती है। यदि हम पुरस्कार की उपर्युक्त विवेचना को ध्यान में रखें, तो इसकी निम्नलिखित विशेषताएँ निर्धारित की जा सकती हैं

(1) पुरस्कार या तो किसी व्यक्ति को या किसी समूह को दिया जाता है, क

(2) पुरस्कार का स्वरूप भौतिक या अभौतिक तथा दोनों ही प्रकार का हो सकता है।

(3) पुरस्कार देने का उद्देश्य व्यक्ति को मानसिक सान्त्वना प्रदान करना होता है, और

(4) पुरस्कार व्यक्ति या समूह द्वारा किए जाने वाले अच्छे कार्यों के लिए प्रदान किया जाता है।

पुरस्कार की व्याख्या करते समय इस तथ्य को ध्यान में रखना आवश्यक है कि पुरस्कार समाज की सांस्कृतिक विशेषताओं पर आधारित होता है। पुरस्कार किसी देश और समाज की संस्कृति के प्रतीक होते हैं। उदाहरण के लिए 'परमवीर चक्र' का भारत में अत्यन्त ही महत्व है, किन्तु यह आवश्यक नहीं है

कि इसका भारत में जितना महत्व है, इतना ही महत्व विश्व के अन्य देशों में भी हो।

पुरस्कार के स्वरूप (Forms of Reward)

सामान्य व्यक्ति धन, पूँजी और भौतिक वस्तुओं मात्र को ही पुरस्कार के अन्तर्गत सम्मिलित करते हैं, किन्तु पुरस्कार की यह अवधारणा सही नहीं है। पुरस्कार के लिए भौतिक ही होना अनिवार्य नहीं है। पुरस्कार

166 अभौतिक भी ही सकते हैं। संक्षेप में इसी आधार पर पुरस्कारों के प्रमुख स्वरूपों को दो भागों में विभाजित समाजशास्म बी. ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर किया जा सकता है -

(1) अभौतिक पुरस्कार (Non-Material Reward) जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट होता है कि इस प्रकार के पुरस्कार का कोई भी भौतिक आकार-प्रकार नहीं होता है। इस प्रकार के पुरस्कारों से किसी भी प्रकार का प्रत्यक्ष आर्थिक लाभ भी नहीं होता है। ये पुरस्कार व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा को बढ़ाते हैं और समाज में उसका पद ऊँचा करते हैं। उदाहरण के लिए किसी व्यक्ति को कक्षा का मॉनीटर बनाना या अच्छे खिलाड़ी का प्रमाणपत्र देना आदि।

(2) भौतिक पुरस्कार (Material Reward) भौतिक पुरस्कार अभौतिक पुरस्कार का विपरीत है। यह पुरस्कार भौतिक आकार-प्रकार से परिपूर्ण होता है। इस पुरस्कार के अन्तर्गत नगद पुरस्कार, मैडल, शील्ड आदि को सम्मिलित किया जा सकता है। किसी विद्यार्थी को पुस्तक देकर पुरस्कृत करना भौतिक पुरस्कार के अन्तर्गत आता है। संक्षेप में भौतिक पुरस्कार किसी न किसी वस्तु या धन के रूप में प्रदान किया जाता है।

सामाजिक नियंत्रण में पुरस्कार का महत्व (Importance of Reward in Social Control)

पुरस्कार और दण्ड मानव जीवन के दो पहलू हैं, जो एक ही प्रकार के कार्यों को सामाजिक नियंत्रण की दृष्टि से करते हैं, किन्तु दोनों की कार्य प्रणालियों में भिन्नताएँ हैं। जहाँ तक सामाजिक नियंत्रण का सम्बन्ध है,

पुरस्कार का इस क्षेत्र में निम्नलिखित महत्व है -

(1) सकारात्मक नियंत्रण दो भागों में विभाजित किया है- समाज में नियंत्रण स्थापित करने वाले कारकों को विद्वानों ने निम्नलिखित

(a)सकारात्मक, और

(b) नकारात्मक।तनिमा (1)

पुरस्कार सकारात्मक सामाजिक नियंत्रण का साधन है। यह साधन समाज में दण्ड की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होता है। समाज को नियंत्रित करने में सकारात्मक साधनों का क्या महत्व है, इसकी विवेचना करते हुए रोज ने लिखा है कि "दण्ड" अधिक स्फुट होते हैं, परन्तु यह अक्सर होता है कि पुरस्कार अधिक संख्या में, अधिक व्यापक तथा लम्बे अर्से में अधिक प्रभावशाली होते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि सामाजिक नियन्त्रण के सकारात्मक साधन अत्यन्त ही व्यापक, प्रभावशाली और शक्तिशाली होते हैं।

(2) मानव प्रकृति के अनुकूल पुरस्कार सामाजिक नियन्त्रण का वह साधन है, जो मानव प्रकृति से पूरी तरह मेल खाता है। मानव स्वभाव कुछ इस प्रकार का होता है कि वह अपनी प्रशंसा सुनना चाहता है।

उसे अपनी निन्दा से भय लगता है। यदि व्यक्ति की निन्दा की जाती है, तो उसके अहम् को चोट पहुँचती है और वह समाज से प्रतिशोध लेना चाहता है। इसके विपरीत यदि उसकी प्रशंसा की जाती है, तो उसका अहम्

सन्तुष्ट होता है और वह समाज के साथ सामन्जस्य स्थापित करने का प्रयास करता है और इस प्रकार सामाजिक सन्तुलन बना रहता है। इससे समाज में नियन्त्रण की स्थापना में मदद मिलती है।

(3) सामाजिक प्रगति पुरस्कार किसी समाज की प्रगति का प्रतीक है। पुरस्कार समाज की प्रगति की ओर संकेत करता है। कोई भी देश या समाज तब तक प्रगति नहीं कर सकता, जब तक कि सभी नागरिक उस प्रगति में सहयोग न करते हों। सहयोग आत्मिक तत्व है और शक्ति या बल द्वारा समाज में सहयोग की स्थापना संभव नहीं है। सहयोग के लिए पारस्परिकता की भावना अनिवार्य है। पुरस्कार के द्वारा स्वयं ही व्यक्ति सामाजिक नियमों को आदर के भाव से देखते हैं। इस प्रकार समाज में नियंन्त्रण बना रहता है।

(4) सामाजिक सुधार पुरस्कार सामाजिक सुधार में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। समाज को नियन्त्रित करने के लिए भगवान ने दण्ड की सृष्टि की। सामाजिक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप दण्ड समाज को नियन्त्रित नहीं कर सका। बल्कि इसका समाज पर उल्टा ही प्रभाव पड़ा। दण्ड देने से व्यक्ति समाज को घृणा की दृष्टि से देखता है। इसलिए दण्ड के स्थान में पुरस्कार का जन्म हुआ। पुरस्कार की सहायता से समाज विरोधी व्यक्तियों के सुधार में मदद मिलती है। इस प्रकार सामाजिक नियन्त्रण बना रहता है।

16.9 दण्ड (Punishment)

सृष्टि मनुष्यों का अजायबघर है। इनमें कुछ व्यक्ति बुद्धिमान होते हैं तो कुछ मूर्ख, कुच्छ बलवान होते हैं, तो कुछ निर्बल। मानव-समाज की इस भिन्नता के परिणामस्वरूप उनमें भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियों का जन्म होता है। भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियाँ मनुष्यों को भिन्न-भिन्न कार्यों की प्रेरणा देती हैं, जिनके आधार पर मनुष्यों के कर्मों का निर्धारण होता है। स्वभाव-भिन्नता के कारण सभी व्यक्ति अपने कर्मों का स्वभावानुकूल भोग नहीं कर पाता है। जैसे एक बलवान व्यक्ति से पीड़ित निर्बल व्यक्ति अपने भोग को नहीं भोगने पाता और वह बलवान व्यक्ति भी अपने से बलवान किसी दूसरे व्यक्ति से पीड़ित होकर अपने भोग को अच्छी तरह से नहीं भोग पाता है। अपने-अपने फलों को न भोग सकने का परिणाम यह होता है कि सर्वत्र अव्यवस्था का साम्राज्य छा जाता है। समाज की प्रगति के लिए समाज में न्याय और व्यवस्था की स्थापना अनिवार्य हो जाती है। समाज से अव्यवस्था को समाप्त कर न्याय और व्यवस्था की स्थापना और अपने-अपने कर्मों के सम्पादन के लिए ईश्वर, समुदाय और राज्य ने जो व्यवस्था की है, उसे दण्ड कहते हैं।

दण्ड की परिभाषा

(Definition of Punishment)

प्रत्येक समाज में कुछ नियम और कानून होते हैं, चाहे ये नियम परम्परा के रूप में हों या कानून की पुस्तिका के रूप में। समाज के सभी सदस्यों से इन नियमों के पालन की आशा की जाती है। इन नियमों का पालन न करना

अपराध कहलाता है। संक्षेप में दण्ड अपराध की प्रतिक्रिया है, जो समाज या राज्य के द्वारा अपराधी के आचरण के विरुद्ध प्रदर्शित की जाती है। दण्ड की कुछ परिभाषाएँ इस प्रकार हैं-

(1) सदरलैण्ड - सदरलैण्ड ने दण्ड का विश्लेषण किया है। उनके अनुसार दण्ड में दो बातें आवश्यक रूप से पाई जाती हैं -

(i) यह (दण्ड) समूह द्वारा अपनी समस्त क्षमता के रूप में उस व्यक्ति को दिया जाता है जो उसी समूह का सदस्य माना जाता है।

(ii) दण्ड अपने से पीड़ा अथवा कष्ट को सम्मिलित करता है, यह पीड़ा सामाजिक मूल्य द्वारा न्यायपूर्ण ठहराई जाती है, जो कि उस पीड़ा में निहित होता है।

(2) सैथना सैथना के अनुसार एक व्यक्ति दण्ड प्राप्त तभी कहा जाएगा जबकि उसके ऊपर किसी न किसी प्रकार का कष्ट लादा गया हो। यह कष्ट किसी भी रूप में हो सकता है। सैथना के ही शब्दों में, दण्ड एक प्रकार की सामाजिक निदा है, और इसमें आवश्यक नहीं है कि पीड़ा या कष्ट सम्मिलित हो।

(3) रैंकलैस दण्ड एक प्रतिक्रिया है जो राष्ट्र संघ के अपराधी सदस्य के विरुद्ध की जाती है।

(4) टैफ्ट "हम दण्ड की परिभाषा उस जागरुक दबाव के रूप में कर सकते हैं, जो समाज की शान्ति-भंग करने वाले व्यक्ति को अवांछनीय अनुभवों वाला कष्ट देता है, यह कष्ट हमेशा ही उस व्यक्ति के हित में नहीं होता है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है सामाजिक व्यवस्था की रक्षा के लिए भय के रूप में जो भी शारीरिक, आर्थिक अथवा मानसिक कष्ट पहुँचाया जाता है, उसे ही दण्ड कहते हैं।

सामाजिक नियंत्रण में दण्ड का महत्व

(Importance of Punishment in Social Control)

दण्ड आदिकाल से सामाजिक नियंत्रण का महत्वपूर्ण साधन रहा है। दण्ड का अस्तित्व आदिकाल में था, आज भी है और भविष्य में भी रहेगा। इतना

निश्चित है कि देश, काल और परिस्थितियों के सन्दर्भ में दण्ड के स्वरूप में भिन्नताएँ पाई जाती हैं। सामाजिक नियन्त्रण में दण्ड की भूमिका या महत्व को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) कानून का ज्ञान प्राप्त कराना दण्ड की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके द्वारा व्यक्ति को कानूनों की जानकारी प्राप्त होती है। दण्ड व्यक्ति में इस प्रकार की चेतना को जागृत करता है कि व्यक्ति कानून को जानने के लिए प्रयत्नशील होता है। कानून को जानने का यही प्रयत्न समाज में एकता की स्थापना करता है, जिससे समाज में नियंत्रण रहता है।

(2) कानून को लागू करना दण्ड की दूसरी महत्वपूर्ण उपयोगिता समाज में कानून को प्रभावशाली ढंग से लागू करने से सम्बन्धित है। प्रत्येक देश और समाज में शान्ति और व्यवस्था करने के लिए कानून नितान्त ही आवश्यक होते हैं। कानून व्यक्तियों को प्रभावित करते और व्यक्तियों की प्रवृत्तियों और कार्यों में भिन्नताएँ पाई जाती है। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि व्यक्ति इन कानूनों का उल्लंघन करे। कानून व्यक्ति को नियंत्रित करता है और उल्लंघनकारी प्रवृत्तियों को दण्ड देता है। इस प्रकार दण्ड समाज में नियंत्रण समाजशास्त्र बी. ए.

(3) सामाजिक निन्दा सेथना ने दण्ड का परिभाषा करते हुए लिखा है कि 'दण्ड एक प्रकार की सामाजिक निन्दा है।' (Punishment in some short of social censure) अपराध समाज-विरोधी कार्य है और इनसे जन-कल्याण को हानि पहुँचती है। राज्य और कानून का मौलिक कर्तव्य यह है कि व्यक्ति के समाज विरोधी कार्यों पर अंकुश लगाए। इसके लिए शारीरिक पीड़ा अनिवार्य नहीं है, बल्कि समाज के आगे व्यक्ति की निन्दा न की जाये। यदि समाज के सामने व्यक्ति की निन्दा की जाएगी, तो वह समाज विरोधी कार्य नहीं करेगा। यदि व्यक्ति समाज विरोधी कार्य नहीं करेगा, तो समाज संगठित रहेगा और इसमें एकता का विकास होगा। इस प्रकार दण्ड व्यक्ति को सामाजिक निन्दा का भय दिखाकर समाज में एकता स्थापित करने का प्रयास करता है और इस प्रकार समाज नियंत्रित रहता है।

(4) भय उत्पन्न करना दण्ड के सुखवादी सिद्धान्त (Hedonistic Theory) के समर्थक विद्वानों का विचार है कि व्यक्ति अपराध इसलिए करता है कि उसे ऐसा करने में सुख की प्राप्ति होती है, अर्थात् दुख की तुलना में उसे सुख अधिक मिलता है। इसी आधार पर इन विद्वानों का कहना है कि व्यक्ति को दण्ड से इतना कष्ट पहुंचाया जाये जो अपराध से प्राप्त सुख की मात्रा से अधिक हो। अर्थात् व्यक्ति को कठोर दण्ड दिए जाएँ तभी वह अपराध नहीं करेगा अन्यथा समाज में निरन्तर अपराधों की संख्या में वृद्धि होगी। इसी आधार पर हम्मुराबी ने 'एक आँख के लिए एक आँख और एक दाँत के लिए एक दाँत के सिद्धान्त' का प्रतिपादन किया था। दण्ड के सिद्धान्त के समर्थकों का विश्वास है कि समाज में अपराधों की संख्या में कमी हो, इसके लिए आवश्यक है कि दण्ड की समुचित व्यवस्था हो। समाज व्यक्ति को दण्ड का भय दिखाकर एक सूत्र में बाँधने का प्रयास करता है। अपराधी के मन में दण्ड का भय उत्पन्न हो जाने से वह दुबारा अपराध नहीं करेगा। इस प्रकार समाज संगठित रहेगा।

(5) सामाजिक मूल्यों की रक्षा दण्ड समाज के मूल्यों और आदर्शों की रक्षा करता है। साथ ही व्यक्ति को सामाजिक परम्पराओं और मान्यताओं के प्रति आदर भाव दिखाने के लिए मजबूर करता है। दण्ड के भय से व्यक्ति न चाहते हुए भी परम्पराओं और मूल्यों का आदर करता है तथा उन्हें मानता है। इसका परिणाम यह होता है कि समाज में एकता और नियन्त्रण स्थापित रहते हैं।

(6) सामाजिक व्यवस्था की स्थापना दण्ड समाज में कानूनों, मूल्यों और मान्यताओं की रक्षा करता है तथा इन्हें एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित करता रहता है। व्यक्ति इन मूल्यों का आदर करता है तथा अपनी सन्तान को ऐसा करने कि शिक्षा देता है। इसका परिणाम यह होता है कि समाज में व्यवस्था बनी रहती है तथा यह व्यवस्था निरन्तर भी रहती है।

(7) विघटनकारी व्यवहारों पर नियंत्रण समाज में अनेक प्रकार के व्यक्ति होते हैं। ये व्यक्ति अनेक प्रकार की प्रवृत्तियों वाले भी होते हैं। समाज में अनेक व्यक्ति ऐसे होते हैं जो विचलनकारी व्यवहार करते हैं। इस प्रकार के व्यवहारों में सामाजिक एकता शिथिल होती है। दण्ड का भय व्यक्ति के विचलनकारी

व्यवहारों पर नियन्त्रण रखता है। उसे यह ज्ञान रहता है कि यदि वह समाज विरोधी कार्य करेगा, तो उसे ऐसा करने के लिए दण्ड प्राप्त होगा। इस दण्ड के भय से व्यक्ति विचलनकारी व्यवहारों का सम्पादन नहीं करता।

(8) सुधारात्मक कार्य दण्ड समाज में अनेक प्रकार के सुधारात्मक कार्यों को भी सम्पादित करता है। आधुनिक युग में में मात्र दण्ड देने से अपराधी में सुधार संभव नहीं है और यह माना जाने लगा कि मात्रक दण्ड देकर अपराधियों में सुधार नहीं किया जा सकता है। साथ ही दण्ड के लिए नहीं दिया जाता है, अपितु इसका एक निश्चित उद्देश्य होना चाहिए। कष्ट देकर समाज में अपराधों की संख्या में कमी करना संभव नहीं है। इसलिए दण्ड अपराधियों के सुधार का इस प्रकार प्रयास करता है कि समाज में दुबारा अपराधों की पुनरावृत्ति न हो। इस प्रकार समाज नियंत्रित रहता है।

(9) सामाजिक मेरूदण्ड दण्ड का समाज में उसी प्रकार महत्व है जिस प्रकार मानव शरीर में रीढ़ का महत्व है। रीढ़ के बिना मनुष्य का खड़ा होना नितान्त ही असंभव है। ठीक इसी प्रकार कोई भी समाज दण्ड के बिना नहीं चल सकता है। इसीलिए कहा जाता है कि "दण्ड सामाजिक नियंत्रण का मेरूदण्ड है।" दण्ड के बिना समाज में नियंत्रण के साधन अपना प्रभाव खो देते हैं। कानून सामाजिक नियंत्रण का सशक्त साधन हैं, किन्तु दण्ड के बिना कानून प्रभावहीन हो जाता है। झेरिंग ने इसीलिए कहा है कि "कानून बिना शक्ति के एक खोखला नाम है।"

(e) शिक्षा (f) राजनैतिक शक्ति या पद (g) धार्मिक ज्ञान (h) व्यवसाय।

स्वप्रगति परीक्षण

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. निम्नलिखित में से किस समाजशास्त्री ने स्तरविहीन समाज को एक रहस्य माना है-

(अ) दुर्खीम ने (ब) सोरोकिन ने

(स) हर्बर्ट स्पेन्सर ने (द) दुर्खीम ने

2. "सामाजिक स्तरीकरण समाज की विभिन्न स्थायी समूहों और श्रेणियों में विभाजन है, जो कि उच्चता और अधीनता के सम्बन्धों से परस्पर जुड़े रहते है।"

सामाजिक स्तरीकरण की उपर्युक्त परिभाषा किस विद्वान की है-

(अ) गिसवर्ट की (ब) सदरलैण्ड की

(स) रेमण्ड मूरे की (द) दुखर्जीम की

3. "समाज की उच्च एवं निम्न इकाइयों में किये की उपर्युक्त परिभाषा किस विद्वान ने की है- जाने वाले विभाजन को स्तरीकरण कहते हैं।" स्तरीकरण

(अ) सदरलैण्ड एवं वुडवर्थ की (ब) रेमण्ड मूरे की

(स) मुकर्जी की (द) गिन्सबर्ग की

4. निम्नलिखित में कोन-सी विशेषता सामाजिक स्तरीकरण की नहीं है-

(अ) सामाजिक स्तरीकरण समाज के विभिन्न स्तरों और श्रेणियों से सम्बिन्धत है,

(ब) सामाजिक स्तरीकरण में विभिन्न स्तर एवं श्रेणियाँ अस्थायी होती हैं,

(स) सामाजिक स्तरीकरण के विभिन्न स्तरों में उच्चता एवं निम्नता की भावना पायी जाती है।

(द) सामाजिक स्तरीकरण का तात्पर्य विभिन्न स्तरों एवं श्रेणियों से है।

5. निम्न में से कौन-सा कथन सही है-

(अ) सामाजिक स्तरीकरण व्यक्ति की उन्नति एवं प्रगित का आधार है,

(ब) सामाजिक स्तरीकरण व्यक्ति को कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करता है।

(स) सामाजिक स्तरीकरण के परिणामस्वरूप सामाजिक सदस्यों में उत्तरदायित्व की भावना का विकास है।

(द) उपर्युक्त सभी कथन सही हैं।

6. निम्नलिखित में से कौन-सा महत्व सामाजिक स्तरीकरण का है-

(अ) सामाजिक स्तरीकरण व्यक्तियों के कार्यों एवं पदों को निर्धारित करता है,

(ब) सामाजिक स्तरीकरण की व्यवस्था समाज में सदस्यों को मानसिक संतोष प्रदान करती है,

(स) सामाजिक स्तरीकरण समाज में व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति का भी साधन है,

(द) उपर्युक्त सभी महत्व सामाजिक स्तरीकरण के हैं।

7. जमींदार, तालुकेदार एवं महत्व किस वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं-

(अ) कर्मठ वर्ग का ब) निम्न वर्ग का

(स) विलासी वर्ग का (द) अमुक्त वर्ग का

8. मुक्त वर्ग का आधार निम्न में से क्या होता है-

(अ) कर्म (ब) जन्म

(स) पैतृक (द) धार्मिक

16.10 सार संक्षेप

1. समाज की संरचना को समझना: समाज में विभिन्न समूहों, वर्गों और उनके कार्यों को समझना।

2. संस्कृति का विश्लेषण: संस्कृति के तत्वों जैसे मान्यताएँ, परंपराएँ, और व्यवहारों का अध्ययन करना।

3. समाज और संस्कृति के आपसी संबंध को पहचानना: समाज और संस्कृति के बीच तालमेल और प्रभाव का विश्लेषण करना।

16.11 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जाँच

उत्तर

(1) व (2)अ (3) ब (4) ब (5)द (6) द (7)स (8) अ

16.12 मुख्य शब्द

1. सामाजिक नियंत्रण: समाज द्वारा अपने सदस्यों के व्यवहार को नियंत्रित करने की प्रक्रिया।

2. आदर्श: समाज के लिए आदर्श और सर्वोत्तम जीवन की दिशा, जो समाज को प्रेरित करती है।

3. मूल्य: समाज के द्वारा स्वीकार किए गए नैतिक सिद्धांत और व्यवहार जो जीवन के विभिन्न पहलुओं को दिशा देते हैं।

4. संस्थान: समाज की संरचनाएँ (जैसे परिवार, धर्म, शिक्षा) जो सामाजिक नियंत्रण और आदर्शों को बनाए रखती हैं।

16.13 संदर्भ ग्रन्थ

- बालकृष्णन, पी. (2022)। *भारतीय अर्थव्यवस्था की पुनर्प्राप्ति: राजनैतिक अर्थव्यवस्था दृष्टिकोण*। नई दिल्ली: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
- बसु, के. (2018)। *विश्वासों का गणराज्य: कानून और अर्थशास्त्र के लिए एक नया दृष्टिकोण*। प्रिंसटन, एनजे: प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।
- घोष, ए. (2021)। *भारत की उभरती अर्थव्यवस्था: 21वीं सदी में प्रदर्शन और संभावनाएं*। नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- पनगढ़िया, ए. (2020)। *भारत असीमित: खोई हुई महिमा की पुनः प्राप्ति*। न्यूयॉर्क: हार्पर कॉलिन्स।
- नगराज, आर. (2019)। *भारत में आर्थिक वृद्धि और विकास: नए दृष्टिकोण*। नई दिल्ली: रूटलेज।.

16.14 अभ्यास प्रश्न

परीक्षाओं के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न (Important Questions for Examinations)

1.सामाजिक नियन्त्रण की व्याख्या कीजिये। समाज में नियन्त्रण की आवश्यकता को समझाइये । Define social control. Explain the need of control in society.

2. सामाजिक नियन्त्रण की प्रमुख विधियों की विवेचना कीजिये । Describe the major agencies of Social Control.

3. सामाजिक नियंत्रण के प्रकारों की विवेचना कीजिये । Discuss the major forms of Social Control.

4. सामाजिक आदर्श की व्याख्या कीजिए। इसकी प्रमुख विशेषताएँ एवं स्रोत लिखिए। Define social norms. Write its chief characteristics and sources.

5.सामाजिक आदर्श की व्याख्या कीजिए और इसके महत्व की विवेचना कीजिए। Define social norms and discuss its importance.

6. सामाजिक मूल्य की व्याख्या कीजिए। इसकी विशेषताएँ लिखिए। Define social values. Write its characteristics.

7. सामाजिक जीवन में सामाजिक आदर्शों और सामाजिक मूल्यों के महत्व को समझाइए। Explain the importance of social norms and social values in social life.

8. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए। Write short notes on the following:

(अ) सामाजिक आदर्श (Social Norms),

(आ) सामाजिक मूल्य (Social Values)

(इ) सामाजिक अभिमति

(Social Sanction)

9.पुरस्कार की व्याख्या कीजिए।

Define Reward.

अपनी प्रगति की जाँच करें

10. सामाजिक नियंत्रण में पुरस्कार की भूमिका लिखिए।

Write role of Reward in social control.

11. दण्ड की व्याख्या कीजिए तथा इसके प्रमुख सिद्धान्तों को समझाइए।

Define punishment and explain its main theories.

12. सामाजिक नियन्त्रण में दण्ड की क्या भूमिका है।

What is the role of punishment in social control.

13. दण्ड की विवेचना कीजिए। सामाजिक नियन्त्रण में इसके महत्व को समझाइये ।

Discuss punishment. Explain its importance in social control.

14 . सामाजिक स्तरीकरण पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

15. समाज में सामाजिक स्तरीकरण के महत्व की विवेचना कीजिए।

16. सामाजिक स्तरीकरण के समाजशास्त्रीय महत्व को लिखिए।

17. सामाजिक स्तरीकरण के अर्थ को स्पष्ट कीजिए।

18. सामाजिक स्तरीकरण की पाँच प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।

19. "सामाजिक स्तरीकरण समाज का विभिन्न स्थायी समूहों और श्रेणियों में विभाजन है, जो कि उच्चता और अधीनता के सम्बन्धों से जुड़े रहते हैं।" - गिसबर्ट के उपर्युक्त कथन को 100 शब्दों में स्पष्ट कीजिए।